तेलुगु की बीस कहानियाँ

अनुवादक :

बालशौरि रेड्डी

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकेडेमी, हैदराबाद.

प्रकाशक :

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकेडेमी

तिलक रोड

हैदराबाद-१

प्रथम संस्करण-१९६५ ई

मूल्य : ५. ००

मुद्रक :

शिवाजी प्रेस

१७३२, गंज बाजार

सिकन्दराबाद-३

निवेदन

तेलुगु की बीस प्रतिनिधि कहानियों का हिन्दी अनुवाद आपके सम्मुख है। आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी का विश्वास है कि देशकी विभिन्न भाषाओं में सीधे साहित्यिक आदान-प्रदान होना चाहिए। इससे भारतीय भाषाओं की सामर्थ्य बढ़ेगी, साहित्य समृद्ध होगा और एक प्रदेश की जनता दूसरे प्रदेश की जनता को ठीक-ठीक तरह से समझ सकेगी।

पिछले सत्तर-अस्सी वर्षों में तेलुगु के अनेक समर्थ कथाकारों ने एक से बढ़ कर एक अच्छी कहानी लिखी है। कई कहानियाँ संसार के प्रसिद्ध कहानी-लेखकों की कृतियों के साथ पढ़ी जा सकती हैं। तेलुगु की सभी प्रातिनिधिक कहानियों का चयन एक संकलन में नहीं किया जा साकता।

अकादमी की ओर से इन कहानियों का अनुवाद उर्दू में प्रकाशित हो चुका है।

अकादमी उन सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञता अर्पित करती है, जिनकी कहानियाँ इस संकलन में दी गई हैं।

इन कहानियों का हिन्दी अनुवाद श्री बालशौरि रेड्डी ने किया है। श्री बालशौरि रेड्डी आन्ध्र के उन साहित्य-साधकों में प्रमुख स्थान रखते हैं, जो हिन्दी भाषियों को तेलुगु साहित्य से और तेलुगु भाषियों को हिन्दी साहित्य से परिचित करा रहे हैं। श्री श्रीराम शर्मा ने अनुवाद के देखने तथा संकलन की छपाई में अकादमी की सहायता की है।

देवुलपल्ली रामानुज राव
मंत्री
आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी

तिलक रोड,
हैदराबाद-१

भूमिका

इस संग्रह में आप तेलुगु के बीस कथाकारों की श्रेष्ठ कहानियाँ पढ़ेंगे। संग्रह के कहानी-लेखक समकालीन नहीं हैं। ये कहानीकार तीन पीढ़ियों और युगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। संग्रह की पहली कहानी 'मेटिलडा' के लेखक स्वर्गीय गुरुजाड अप्पाराव की जन्म शताब्दी गत वर्ष मनाई गई है। सत्तर-अस्सी वर्ष में हमारा भारत कितना बदल गया है। पारिवारिक जीवन में कितना अन्तर आ गया है। और व्यक्ति इस परिवर्तन से कहाँ अछूता रहा? कहानी के कथ्य में ही नहीं, उसके कहने का ढंग भी कितना बदल गया है!

हिन्दी में देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, प्रेमचन्द, यशपाल और मोहन राकेश की कहानियाँ क्या साहित्य की एक ही विधा से सम्बन्धित हैं?

प्रस्तुत कहानी-संग्रह में इस बात का प्रयास किया गया है कि हिन्दी के पाठक को बीते हुए युग की, बीते हुए कल की और आज की अच्छी से अच्छी कहानी पढ़ने को मिलें। कहानियों का संकलन करते समय यह उद्देश्य भी रहा है कि पाठक बिना किसी प्रयास के तेलुगु कथा-साहित्य के विकास से भी परिचित हो जाये। इन कहानियों के पढ़ने के बाद आप निश्चित रूप से कह सकेंगे कि तेलुगु का कथाकार सदैव जागरूक रहा है। आत्मसात करने के बाद ही उसने अपने युग को शब्दों में व्यक्त किया है।

'गोदावरी हँस पड़ी' तेलुगु की लोकप्रिय कहानी है, और 'तूफान' कहानी ने आन्ध्र से बाहर, देश में ही नहीं, विदेशों में भी प्रशंसा प्राप्त की है। ये दोनों कहानियाँ दो बिन्दुओं को व्यक्त करती हैं। 'गोदावरी हँस पड़ी' कहानी उस बिन्दु को सूचित करती है, जहाँ आधुनिक कहानी ने साहित्य में स्थान प्राप्त किया है और 'तूफान' कहानी उस बिन्दु को सूचित करती है, जहाँ पचास वर्ष की साधना के पश्चात तेलुगु कहानी पहुँची है। दूसरा बिन्दु उस संभावना को भी

प्रकट करता है, जो 'तूफान' के बाद लिखी जाने वाली कहानियों को प्रेरित करती रही है।

तेलुगु के अनेक कथाकार नर और नारी के उस उदात्त प्रेम का चित्रण करते आये हैं जो मानवीय समाज को थामे हुए है और जिसके कारण हम विगत में विलीन होते हुए भी भविष्य का स्वप्न देखते हैं, वर्तमान का स्वागत करते हैं। तेलुगु कथाकारों ने अपनी कहानियों में उदात्तता के लोभ से प्रेम को निर्जीव होने नहीं दिया। नर और नारी के मन में जो द्वन्द प्रतिक्षण चलता रहता है, उसके चित्रण में कही कमी नहीं आई है। इस द्वन्द पर और द्वन्दजनित उत्पीड़न तथा वेदना पर प्रेम धीरे-धीरे विजय प्राप्त करता है और इस प्रयास में ही प्रेम जड़ता अथवा निर्जीवता से सुरक्षित रहता है। इल्लिदल सरस्वती देवी की कहानी 'परिचित-पथ' में पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष पति-पत्नी के सहज स्नेह में बाधा उपस्थित करता है। गुड़िपाटि वेंकटचलम की 'पातिव्रत्य की हत्या' नामक कहानी में ग्रामवधू और ग्रामीण पति की सुन्दर झाँकी देखी जा सकती है। ग्रामवधू अपने पति के साथ-साथ इष्टदेवता पर भी अविचल श्रद्धा रखती है। 'धूप-छाँह' महिला की कलम से लिखी हुई कहानी है, किन्तु उसमें चरित्र की दृष्टि से पति जितना ऊँचा है, पत्नी उतनी ही कमजोर है। सुधा अपनी दुर्बलता पर अन्त तक विजय नहीं प्राप्त कर सकी जब कि सारथी प्रत्येक स्थिति में ईमानदार बना रहता है।

कुछ लेखकों ने उस आधुनिक नारी को चित्रित किया है, जो वर्तमान युग की उपलब्धियों को स्वीकार कर चुकी है। इन उपलब्धियों के कारण पुरुष उनके लिए 'पूज्य' नहीं 'साथी' बन चुका है। नन्दगिरि वेंकटराव की कहानी 'रंभा' इस परिवर्तन को प्रकट करती है किन्तु बेचारी 'नन्दनी' नई उपलब्धियों को पूरी तरह हृदयंगम नहीं कर सकी। इसीलिए एक खास ढंग की कमज़ोरी उसे घेर लेती है और अन्त में 'पागलपन' ही उसकी सहायता करता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कई तेलुगु कथाकार प्रसिद्धि पा चुके हैं। प्रस्तुत कहानी - संग्रह में कुछ कहानियों के पात्र इतने अच्छे ढंग से चित्रित हुए हैं कि उन्हें काल्पनिक मानने को जी नहीं चाहता। वे हमारे संगी-साथी बन जाते हैं। आसपास चलते-फिरते दिखाई देते हैं। इन पात्रों को यदि आप भुलाना चाहें, तब भी नहीं भुला सकेंगे। श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री का अत्तार शुकूरअलीखाँ जीता-जागता

पात्र है। कोडवटिगंटि कुटुम्बराव की पंकज और पंकज का प्रेमी श्रीनिवास, मुनिमाणिक्यम नरसिंहराव का अधेड़ आयु का अनाम व्यक्ति, बुच्चि बाबू की 'बीबी', राचकोंडि विश्वनाथ शास्त्री का नीलमणि और पोतकूचि साम्बशिवराव का 'पापाराव' भुलाये नहीं जा सकते।

'नहले पर दहला' कहानी कुतूहल जागृत करती है।

कुछ कहानियाँ अपने सजीव वातावरण के कारण आपका ध्यान आकर्षित करेंगी। बलूरि शिवराम शास्त्री की 'गाँव की पाठशाला' आपको पुराने ज्ञानदाता से ही नहीं पुराने ज्ञान-आदाता से भी परिचित कराती है। 'अनोखा शिकार' में गाँव के छुटभैयों और प्राचीन युग की बची-खुची अस्तंगत प्रतिष्ठा की कहानी है।

एन. आर. चन्दूर की 'मंगलोर मेल', बुच्चि बाबू की 'बीबी' और पालगुम्मी पद्मराजू की 'तूफान' नामक कहानी में वृत्तात्मकता क्षीण से क्षीणतर होती गई है। इन कहानियों के लेखकों ने जैसे विशेष स्थिति में मन का ग्राफ खींचा है। 'तूफान' कहानी में मूसलाधार वर्षा कहानी कहने वाले के मन के साथ समरस हो गई है। बैलगाड़ी के चलने की आवाज़ हो या राहगीरों की आहट सब कुछ कहानी के नायक से अलग नहीं किये जा सकते।

भारत की सभी भाषाओं में शहरी जीवन पर अधिक संख्या में न तो कहानियाँ लिखी गई हैं और न उपन्यास। गाँव हमें आकर्षित करते रहे हैं और हमारे बहुत से कथाकार गाँवों में ही जनमे, गाँवों में ही बड़े हुए हैं। हमारी भाषाओं के पाठक भी तो अधिक संख्या में गाँव में ही बसते है। शहर के लोग अँग्रेजी पढ़ लेते हैं। तेलुगु की अनेक कहानियाँ और उपन्यास ग्रामीण जीवन पर आधारित हैं। इस संकलन में त्रिपुरनेनि गोपीचन्द की 'मिट्टी', करुण कुमार की 'वेंकन्ना' और भास्कर भट्ल की 'प्रतिष्ठा' नामक कहानी में हम किसान, खेत की मिट्टी और किसान के बैल से भी परिचय पाते हैं।

इन कहानियों का अनुवाद श्री बालशौरि रेड्डी ने किया है। अपने मौलिक ग्रंथों और तेलुगु से हिन्दी में अनुवादित पुस्तकों के कारण श्री बालशौरि रेड्डी बहुत प्रसिद्धि पा चुके हैं। एक भाषा की कृतियों को दूसरी भाषा में रूपान्त-रित करना सरल कार्य नहीं है। कहानी के अनुवाद पर भी यह बात लागू होती है। उदाहरण के लिए इस कहानी संग्रह में बुच्चिबाबू की 'बीबी' और पालुगुम्मि

पद्मराजू की 'तूफान' नामक कहानी को लीजिए। दोनों कहानियों में मानसिक स्पन्दन और वातावरण की कम्पनशीलता को बड़ी कुशलता से अंकित किया गया है। यह अंकन शब्दों के द्वारा हुआ है। शब्द ही रेखा खींचते हैं और शब्द ही रंग भरते हैं और शब्द ही चित्र को स्पन्दित करते हैं। शब्द के इस तिहरे कार्य को अनुवादित करना सरल नहीं है। इसीलिए इन दोनों कहानियों में तथा अन्यत्र मूल लेखक के भाव कहीं-कहीं व्यक्त नहीं हो सके। श्री बालशौरि रेड्डी तेलुगु भाषी हैं। यह आवश्यक है कि उनकी भाषा पर तेलुगु का प्रभाव लक्षित हो। सम्पादन में इस बात का भरसक प्रयत्न किया गया है कि हिन्दी का पाठक ऐसे स्थलों पर कठिनाई अनुभव न करे।

आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकेडेमी ने भाषा के क्षेत्र में अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। तेलुगु भाषा और उसके साहित्य की समृद्धि में लगी हुई यह संस्था उर्दू और हिन्दी के विकास में भी यत्नशील है। अकेडेमी हिन्दी की कालजयी रचनाओं को तेलुगु में और तेलुगु के श्रेष्ठ और अमर वाङमय को हिन्दी में अनुवादित करा रही है। यह कहानी-संग्रह इसी प्रयत्न का परिचायक है।

-श्रीराम शर्मा

क्रम

गुरजाड अप्पाराव,

मेटिलडा

उन दिनों मैं वनस्पति शास्त्र में एम. एस-सी., परीक्षा की तैयारी के लिए मद्रास के मैलापुर नामक मुहल्ले की मुख्य सड़क के किनारे एक मकान में रहता था। मेरे साथ दस-बारह तेलुगु-भाषी विद्यार्थी भी उसी मकान में थे।

इस मकान में आये मुझे तीन दिन ही हुए थे कि रामराव ने इशारा करके मुझे अपने पास बुलाया। उसने मुझसे पूछा – "तुमने मेटिलडा को देखा है ?"

'नहीं तो' – मैंने उत्तर दिया।

'देखो, सामने दिखाई दे रही है।' रामराव ने एक लड़की की ओर उँगली से संकेत किया।

मैं उस ओर देखने लगा।

'अब बस भी करो, चलो न।" रामराव ने कहा।

मेटिलडा की ओर से आँखें हटाये बिना मैंने कहा "चलूँ क्यों ? भगवान ने आँखें दी हैं तो उनका लाभ भी उठाना चाहिए। ईश्वर की इस अनुपम सृष्टि में मनोहरतम वस्तु है–सुन्दर स्त्री। यदि हमारे मन में वासना नहीं है तो किसी युवती को देखने में कोई पाप नहीं है।" मैंने रामराव से कहा।

'चलो भी यार। तुम्हारे जैसे उपदेशक बहुत देखे हैं। नये नये हो, इसीलिए मैंने दिखा देना आवश्यक समझा। इसके बाद कभी उस ओर भूल कर भी आँख न उठाना।' रामराव मुझे खींच कर ले गया।

मैंने पूछा – 'वह युवती अच्छी है या खराब ?'

'अच्छी हो चाहे खराब, उसके अच्छे होने या बुरा होने से हमें क्या पड़ी है? इतना याद रखो कि आज के बाद तुमने मेटिलडा की ओर ललचाई आँखों से देखा तो हमारी मित्रता टूट जाएगी।' रामराव ने मुझे चेतावनी दी।

रामराव मेरा पक्का मित्र है, उसकी इस चेतावनी के बाद मैं विवश था। मन के घोड़े को लगाम लगानी पड़ी और कई दिनों तक मैंने मेटिलडा के घर की ओर झाँक कर भी नहीं देखा।

जब कभी वह उबटना लगाकर स्नान करने के पश्चात अकेली पानी भरने आती है तो उसकी कंचन जैसी काया और भुजाओं पर लहराने वाली मयूर-पंख जैसी उसकी केशराशि मुझे आकर्षित करती है। कुएँ से पानी निकालते समय जब वह अपनी दृष्टि इधर-उधर फेंकती है तो उसकी वे चमकती आँखें तथा प्रफुल्ल आकृति मेरी आँखों में बस जाती है। मैं उन आँखों और उस आकृति को भुलाने का लाख प्रयत्न करता हूँ, किन्तु भूल नहीं पाता।

अपने मन पर आठ-दस दिन ही नियंत्रण रख सका। इसके बाद जब कभी मैं रामराव को कमरे में न देखता, तो पढ़ने के बहाने पुस्तक हाथ में लेकर छत पर चला जाता और वहाँ इधर से उधर टहलते हुए मेटिलडा के मकान पर दृष्टि डालता रहता।

मैंने देखा, जब कभी मैं छत पर टहलता था मेटिलडा उस ओर नहीं आती थी। अकस्मात् दो-तीन बार किसी काम से अपने घर के पिछवाड़े आई भी तो बिजली की भाँति तुरन्त अदृश्य हो गई।

कालेज जाते समय मैं मेटिलडा के घर के सामने चींटी की चाल से चलने लगता था। आशा भरी दृष्टि से मेटिलडा के घर की ओर देखता जाता। कभी-कभार वह खिड़की से दिखाई दे जाती थी, जैसे चौखटे में जड़ी प्रतिमा अथवा चित्र हो।

[२]

इधर-उधर पूछ-ताछ करके मैंने मेटिलडा के सम्बन्ध में बहुत सी

बातें जान लीं। कुछ बातें मुझे मित्रों के बताये बिना ही मालूम हो गईं।

मेरे मित्रों ने मेटिल्डा के पति के दो नाम बताये हैं – शेर, और बूढ़ा शेर। उसका पति पूरी तरह बूढ़ा न हो, किन्तु उसने आयु के पचपन-छप्पन वर्ष पूरे कर लिये हैं। रंग गोरा, क़द नाटा, बड़ी-बड़ी आँखें, भरी हुई मूछें, चेचक के दाग़ों वाला चेहरा। दो वर्ष पहले वह हमारे मैलापुर वाले मकान के पड़ौस वाले बँगले में आया। किसी को पता नहीं था ! कि वह मद्रास कहाँ से आया है और क्यों आया है। सड़क की ओर उस बँगले का एक बड़ा कमरा है। उस कमरे में किताबों से भरी तीन आलमारियाँ हैं। मेटिल्डा का अद्धड़ पति उस कमरे में सदैव पढ़ने-लिखने में लगा रहता है। उसने अपने बँगले के आँगन और पिछवाड़े में फुलवारी लगा रखी है। सुबह–शाम वह पौधों को निराता है और मेटिल्डा पानी देती है। पौधों का निराना और सींचना, यही इन दोनों का शारीरिक श्रम है। अँग्रेज लोग इन दोनों कामों से ही तो व्यायाम करते हैं। इन दोनों कार्यों के अतिरिक्त पति–पत्नी कभी घर की देहली से बाहर नहीं आते थे, इनके मित्रों और सबंधियों की बात मत पूछिये ! वे इस घर में कभी आते-जाते देखे नहीं गये। बूढ़े शेर ने अपनी पत्नी को आदेश दे रखा था कि वह कभी घर के दरवाजे पर खड़ी न हो। इस आदेश के रहते हुए भी वह यदा-कदा दरवाजे पर देखी जाती थी। उस युवती के चेहरे पर सदा उदासी की परत जमी रहती थी। इस बात पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं थी कि बूढ़ा शेर किसी न किसी बहाने से उसे डाँटता–डपटता रहता था। तरह–तरह से तंग किया करता था। मेटिल्डा के पति की बहन तो बूढ़े मगरमच्छ जैसी थी। वह पति-पत्नी में किसी न किसी उपाय से झगड़ा कराती रहती थी। इन तीन प्राणियों के अतिरिक्त इस घर में एक बूढ़ा ब्राह्मण रसोइया भी था।

हम लोग मेटिल्डा के पति को 'शेर' कहते हैं किन्तु उसका वास्तविक नाम कोई नहीं जानता। डाकिये को आदेश था कि वह उस

'शेर' के नाम की डाक किसी को न दिखाये। लोगों में यह प्रवाद फैला हुआ है कि उस 'शेर' और पोस्ट मास्टर में अच्छा परिचय है।

पोस्ट मास्टर और 'शेर' के इस परिचय नें भी रहस्य को बनाये रखने में सहायता दी है।

[३]

एक दिन मैं तेल-मालिश के बाद स्नान करके कालेज जा रहा था। सिर के बिखरे बालों पर टोपी रख ली थी। शुभ्र स्वच्छ वस्त्र धारण कर रखे थे। मेटिल्डा के घर के सामने पहुँचते ही मेरी चाल धीमी हो गई। उस मकान के ठीक दरवाजे पर मैं रुक गया और बिना पलक झपकें उस युवती को देखने लगा। एक क्षण भी नहीं बीता था कि बूढ़ा शेर जैसे मुझ पर झपटा हो, अन्दर से ही बोला – 'देखो भाई, इधर आना।'

उसकी अकस्मात् उपस्थिति से मैं भयभीत हो गया। सोचा—कहीं मार न बैठे। एक बार तो मन में आया कि भाग चलूँ, किन्तु तत्काल मेरे मन में यह बात आई कि इस तरह भागने से मेटिल्डा अपराधी मानी जाएगी। उस बेचारी पर न जाने क्या बीते! चाहे जो हो, उसकी रक्षा करनी होगी। यह सोच कर मैंने उस घर में प्रवेश किया।

बूढ़ा शेर मुझे उस कमरे में ले गया जहाँ पुस्तकों की आलमारियाँ रखी हुई थीं। कुर्सी पर बैठते हुए उसने अपनी क्रोध भरी आँखें मेरे नेत्रों से गड़ाई और अँग्रेजी में प्रश्न किया – "तुम मेरी पत्नी की ओर देख रहे थे न?"

"खिड़की से आपका पुस्तकालय दिखाई दिया था। उसे देखकर मेरे मन में प्रश्न उठा कि आप यहाँ क्या करते हैं? आपके व्यक्तित्व के बारे में भी जानने की लालसा उत्पन्न हुई थी।" मैंने उत्तर दिया।

'तो मेरी पत्नी की ओर नहीं देखा था?'

'क्यों नहीं देखा था! सामने खड़े होने पर क्या कोई दिखाई नहीं देता?'

बूढ़ा शेर गरजा – 'अरी ओ, इधर आना।'

इस गरज को सुनकर भी मेटिल्डा कमरें में नहीं आयी।

बूढ़े शेर ने ललकारा – 'छिनाल कहीं की, आती है या नहीं?'

सिर झुकाये, काँपती हुई मेटिल्डा उस कमरे में आई और खड़ी हो गई।

बूढ़े ने अँग्रेजी में मुझसे दुबारा प्रश्न किया – 'मूर्ख, तुम इस राँड़ की ओर जितनी देर देखना चाहते हो, देखो। मेरी ओर क्या ताकते हो? उसे देखो न, क्या मेरा मुँह इस राँड़ के मुँह से अच्छा लगता है?'

मैं कुछ बोला नहीं, कुछ अच्छा नहीं हुआ था। मैंने वहाँ से खिसक जाने के लिए दरवाजे की ओर पग उठाया ही था कि बूढ़ा भाँप गया। शान्त स्वर में बोला – 'ठहरो।'

मैं खड़ा रह गया।

इस समय बूढ़े की आँखों से आग बरस रही थी।

'भाई मेरे!' बूढ़ा बोला।

'तुमने कभी सच बोलना सीखा है? अपने माता, पिता और गुरुजनों के सामने भी सच बोलते हो?''

मुझे मेरें माता-पिता का स्मरण हो आया।

'मुझे सच बोलने की सीख किसी से लेनी नहीं है। सत्य बोलना मैंने जन्म के साथ ही सीखा है।' मैंने उत्तर दिया।

'यह बात है! तब तो मुझे तुम्हारे जन्मजात सत्य की परीक्षा लेनी होगी। बताओ, मेरी पत्नी सुन्दर है या नहीं?'

'मेरे विचार से वह सुन्दर है।'

'उसकी सुन्दरता में कुछ सन्देह तो नहीं है?'

'जी, नहीं।'

'रास्ता चलते तुम हमेशा उसकी ओर देखते हो?'

'आपने मुझसे सच कहने के लिए कहा है। मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि मैं उसे देखता हूँ; किन्तु भगवान की शपथ खा कर कहता हूँ कि उसके प्रति मेरे मन में किसी प्रकार की वासना नहीं है।'

'शपथ क्यों खाते हो? केवल इतना बताओ कि उसे देख कर तुम्हें प्रसन्नता होती है या नहीं?'

'जी, होती है।'

'तो इस राँड़ को अपने साथ ले जाओ। मैंने दान कर दिया इसे, ले जाओ। मेरा पिंड छूट जाएगा।'

मैं चुपचाप बाहर चला आया। आँखों के आगे अँधेरा-सा छाया हुआ था। मुझे न तो रास्ता चलते लोग दिखाई दे रहे थे और न मार्ग के दोनों ओर के घर। इस अपमान के कारण मन ही मन अपनी निन्दा करता हुआ चल पड़ा।

मैंने घर बदलने का निश्चय कर लिया। मैंने इस बात का संकल्प भी कर लिया कि इस मुहल्ले की ओर मुँह उठाकर देखूँगा भी नहीं।

मेरी आँखों के आगे कमरे का दृश्य घूम गया। मेटिल्डा का झुका हुआ मुँह, आँसू की गरम—गरम बूँदें। साँस के साथ काँपता हुआ उसका वक्षस्थल। इस प्रकार के करुण दृश्य का वर्णन मैंने किसी महाकवि की रचना में नहीं पढ़ा था। अगाध करुण रस का साक्षात्कार हुआ था मुझे।

[४]

जैसे ही मैं अपने डेरे पर लौटा, उस बूढ़े के रसोइये ने मेरे हाथ पर चिट्ठी रख दी और वहाँ से तुरन्त चम्पत हो गया। मैंने उस चिट्ठी को देख कर सोचा, इसका सम्बन्ध उसी घटना से होगा। कमरे में पहुँच कर मैंने अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

'सुन्दर, सुडौल, गोल-गोल अक्षरों में लिखा हुआ था —तुम और तुम्हारे मित्र क्या मेरी गृहस्थी को मिटाने पर तुले हुए हैं? मैंने तुम लोगों का कौन-सा अपराध किया है? तुम दोनों सिर झुकाये रास्ते से गुजरोगे तो ही मेरी जिन्दगी की गाड़ी आगे चलेगी अन्यथा जो मेरे भाग्य में लिखा है, वही सही।'

मैं क्या करूँ? इस मकान को छोड़ने से मेरा पिंड छूट सकता है

किन्तु इस पत्र से तो नई बला गले पड़ गई। मेटिल्डा की विनती की रक्षा किस प्रकार हो? मेरे मित्र के कारण भी उसे किसी प्रकार की हानि न हो, क्या इस बात का भार मैं ले सकता हूँ?

यदि मैं मेटिल्डा की रक्षा न कर सका तो मेरे जीवन की सार्थकता क्या है? मेरा पौरुष किस काम का? इस सुन्दर युवती की रहस्य-भरी कथा का क्या मैं भी एक पात्र बन गया हूँ? यदि मैं उस युवती का दु:ख दूर करके उसकी हार्दिक प्रशंसा प्राप्त कर सका तो मेरा जन्म सफल हो जाएगा। इस पत्र पर यह सुन्दर लिखावट क्या मेटिल्डा के हाथ की है? मैं कितना भाग्यवान हूँ। मेटिल्डा ने जो कुछ लिखा है, उसकी पूर्ति किये बिना क्या मैं रह सकता हूँ? यदि मेरे पास तीनों लोकों का राज्य हो और मेटिल्डा उस राज्य की इच्छा करे, तो क्या मैं अपना अधिकार उसे नहीं सौंप दूँगा?

किन्तु प्रश्न तो यह है कि मैं अब क्या करूँ? मुझे व्यावहारिक ज्ञान कम ही है, गणेश की मूर्ति बनाते-बनाते बन्दर की मूर्ति घड़ बैठा तो? रामराव अनुभवी युवक है, सच्चरित्र है। उसमें कुशलता की कमी नहीं है। मैंने उसकी बात नहीं मानी। अब चार खरी–खोटी भी सुनाएगा तो सहन कर लूँगा। उसके पाँव पकड़ कर सहायता माँगूँगा।

मैंने रामराव को अथ से लेकर इति तक पूरी कहानी सुना दी। अपने निश्चय से भी उसे अवगत करा दिया। साथ ही मेरे निश्चय में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न करने की प्रार्थना भी कर दी।

रामराव ने कहा – 'तुम्हारा निश्चय तोड़ा जा सकता है, यदि इस बात का विश्वास होता तो मैं बाधा अवश्य उपस्थित करता। मेरी बात तुमने सुनी कहाँ?'

'अब उलहना देने से क्या लाभ? यदि मैं अपने मन की बात तुम्हें न बताता तो मित्र के प्रति कपट करने का अपराधी सिद्ध होता।'

'बड़े लोगों का कहना है कि पति-पत्नी के झगड़े में किसी को नहीं

पड़ना चाहिए। पति-पत्नी का सम्बन्ध दृढ़ होता है। दूसरे लोग मध्यस्थता करने की इच्छा से दोनों के बीच में उपस्थित होते हैं, किन्तु वे उनके जीवन को बर्बाद करके ही वापिस आते हैं। पहिली बात—हम लोग उस बूढ़े को शेर—शेर कहते हैं, वह शेर गुर्राना जानता है, पंजा नहीं मार सकता। दूसरी बात—उसने क्या कभी मेटिल्डा को पीटा है? नहीं। क्या उसके खाने—कपड़े में कमी की है? नहीं। जब यह बात है तो मेटिल्डा को उस बूढ़े की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना चाहिए। इसी ढंग से उसका जीवन अच्छी तरह बीत सकता है। तीसरी बात—मेटिल्डा तुम्हारे मन में बस गई है। यह अनुचित बात है। तुम यह बात कह सकते हो कि हमारे मन में बुरी भावना न हो तो किसी के देखने से क्या बनता—बिगड़ता है? कोई बुरा भाव, पहले सूचना देकर पैदा नहीं होता। बुरी वासना कहीं बाहर से नहीं आती। वह दिखाई भी नहीं देती। चुपके—चुपके आँखों से मन में पहुँचती है और घात लगा कर बैठ जाती है। हम उस वासना को देखते हुए भी न देखने का अभिनय करते हैं। हम इस बात का प्रयत्न करते हैं कि वह वासना खूब उभरे। जंगल में एकाकी रहने वाले व्यक्ति के मन में स्त्री के लिए कोई बुरी भावना नहीं होती। सुन्दर युवतियों के सम्पर्क में रहनेवाले व्यक्ति में अवसर पाकर वासना उभरेगी या नहीं? इस प्रकार के सम्पर्क से बचनेवाला ही बुद्धिमान है।'

[५]

'तुमने और तुम्हारे मित्र रामराव ने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है। तुम्हारी बातों और कार्यों से मैं जान गया कि मेरी पत्नी बहुत योग्य स्त्री है। बहुत कुछ सोच—विचार कर मैंने उस दिन से उसके सारे बन्धन ढीले कर दिये हैं। उसकी लगाम निकाल दी है। मेरी पत्नी बुद्धिमान है। मैंने उसे स्वतंत्रता दी, किन्तु उसने उस स्वतंत्रता का उपयोग नहीं किया। मैंने उससे कहा था—जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो। जिसे देखना चाहो, उसे देख सकती हो। उसने कहीं

जाने की इच्छा नहीं की। उसने किसी को देखा नहीं। उसने मुझसे इतना ही कहा – तुम मेरे सर्वस्व हो। 'तुम मेरी दुनिया हो, तुम मेरे जीवन हो। मुझे किसी और से क्या काम? मेरी पत्नी ने आचरण भी इसी कथानक के अनुरूप किया है .... ।'

वृद्ध नें घंटी बजाई तो मेटिल्डा पुतली की भाँति द्वार पर आ खड़ी हुई।

'काफ़ी लाओ।'

मेटिल्डा ने मेज पर दो प्याले लगा दिये।

'अपने लिए भी तो प्याला रखो।'

मेटिल्डा ने पति की ओर इस तरह देखा जैसे वह कहना चाहती हो – पराये पुरुष के साथ बैठकर काफ़ी पीना क्या उचित होगा?

'कोई बात नहीं, तुम भी पिओ, ये हमारे मित्र हैं।' वृद्ध ने कहा।

मेटिल्डा ने प्याले में अपने लिए काफ़ी नही डाली। बगल में चुपचाप खड़ी रही। मुझे पति-पत्नी का यह प्रेम भरा व्यवहार अच्छा लग रहा था। इस प्रेम का मूल कारण मैं ही था, इसलिए मुझे अधिक संतोष हो रहा था।

काफ़ी पीते समय जो बातचीत हुई, उससे मुझे ज्ञात हुआ कि वृद्ध महाशय आजकल अपनी पत्नी को पढ़ाते हैं। वह या तो रामायण पढ़ा करती है या महाभारत। उन्होंने मुझे बताया कि आजकल अमुक–अमुक स्थानों पर अपनी पत्नी को ले गये हैं। वृद्ध महाशय ने मेरी पढ़ाई के बारे में भी पूछा। मुझे ज्ञात हुआ कि वे बहुत बड़े विद्वान हैं।

मैं चलने को हुआ तो वृद्ध ने कहा – 'अब तुम जा सकते हो।'

चिन्ता दीक्षितुलु

गोदावरी हँस पड़ी

सन्ध्या का समय, सूर्य सुहागिन स्त्री की भाँति हल्दी-कुंकुम लगाये गोदावरी में डुबकी लगाने जा रहा है। पक्षी घोंसलों में आश्रय लेने जा रहे हैं। चौपाये घर लौट रहे हैं। आधुनिक सभ्यता से अछूते ग्रामीण भी अपने अपने घरों को आ रहे हैं। ऐसे समय सभ्य शहरी लोग क्लबों के लिए चल पड़े। मैं सभ्य भी हूँ और शहरी भी, किन्तु क्लब को न जाकर सैर के लिए जा रहा हूँ।

गोदावरी के किनारे-किनारे मैं पैदल चलने लगा। वायु का प्रवाह नगर की ओर से गोदावरी की तरफ था। इसीलिए मैंने देखा कोई वयोवृद्ध पुरुष किसी स्त्री को समझा रहा है – 'स्वास्थ्य के लिए काफ़ी के स्थान पर दूसरा पेय ठीक रहेगा।' एक जगह दो व्यापारी तेजी-मंदी को लेकर अपने नफ़े-नुकसान पर गंभीरता से विचार कर रहे थे। एक स्थान पर कोई दरिद्र विद्यार्थी जापानी रेशमी पेंट और पोलो कालर वाले कमीज का स्मरण करते हुए आत्म-विभोर हो रहा है।

मैं किनारे-किनारे आगे बढ़ रहा हूँ। नगर से आने वाली दुर्गंध कम हो गई है। अब नये ढंग की गन्ध आने लगी है। यह गन्ध समीप के गाँव से आ रही है।

वृक्ष हिलने लगे। उन वृक्षों की हवा गोदावरी के जल को छू कर बहुत सुखद लगती है। पेड़ों के हरे, चिकने, सुन्दर पत्ते सान्ध्य प्रकाश में खेल रहे हैं। उन पत्तों पर मोटरों के कारण उड़ने वाली धूल दिखाई नहीं देती। गोदावरी के किनारे हरी दूब स्वच्छन्दता से फैली हुई है। इस दूब पर बालिकाएँ चल रही हैं। आस-पास के पेड़ों पर पक्षी

गा रहे हैं। गोदावरी में उठने वाली लहरें भी धीरे-धीरे ताल देकर गा रही हैं। चलने वाली बालिकाएँ फटे-पुराने कपड़े पहनी हुई हैं। उनके शरीर पर कोई जापानी कपड़ा नहीं था। आजकल की शिक्षा-प्राप्त युवतियों के भड़कीले कपड़ों को देखने वाले मेरे नेत्र इन फटे-पुराने कपड़ों से परेशान नहीं हुए। दरिद्रता प्रदर्शित करने वाले ये कपड़े मेरी आँखों को अच्छे लगे। अपने और माँगकर लाये हुए कपड़ों में अन्तर होता है। विदेशी कपड़ा माँगा हुआ लगता है।

उन किशोरियों की सुन्दर आकृतियाँ पाउडर से ढकी हुई नहीं हैं। उनके केश भी जापान अथवा इग्लैंड की युवतियों की तरह सजाये नहीं गये हैं।

गोदावरी के तट पर विकसित होने वाले हरे-भरे पलाश पर खिलने वाले लाल फूल की भाँति वे बालिकाएँ अपनें अकृत्रिम सहज सौन्दर्य से शोभायमान हैं।

आधा सूर्यमंडल गोदावरी में डूब गया।

लकड़ियों से भरी टोकरियाँ लादे वे लड़कियाँ किनारे पर आईं और घर का रास्ता पकड़ा। मैं उस समय उन तीनों लड़कियों से छिपा नहीं रह सका।

गाँव के चौपाये, नगर-निवासियों को देख कर कितने भयभीत होते हैं! वे तीनों लड़कियाँ मुझे देख कर उसी भाँति डर गई थीं। घबराईहुई वे अपने घरों को चली गईं।

यदि मुझ पर नगर की सभ्यता का नशा चढ़ा होता, तो मैं उन्हें अंग्रेजी में पशु अवश्य कहता। कुछ समय पश्चात् मैंने सोचा तो मुझे प्रतीत हुआ कि वे किशोरियाँ पौधों पर खिलने वाले पुष्प के समान हैं और मेरी श्रेणी के लोग तो सबके सब कागज़ के फूल हैं।

थोड़ी दूर तक मैं भी उन किशोरियों के पीछे-पीछे चलता रहा। उस दिन मकर-संक्रान्ति थी। इसीलिए तीनों लड़कियाँ गीत गाती जा रही थीं। गीत सुनने के लिए मैं भी उनके निकट पहुँचा। मेरें

निकट पहुँचने से पहले ही गीत बन्द हो गया। उनकी आँखों में आश्चर्य का भाव दिखाई दिया। मैं पीछे की ओर हट गया।

तभी गाय-भैंस चराने वाले ग्वाले घर लौट रहे थे। मैंने उनसे पूछा "ये चौपाये तुम्हारे हैं?"

ग्वालों ने बहुत ही विचित्र ढंग से एक बार मेरी ओर देखा और सिर हिलाते हुए अपने जानवरों को हाँकने लगे।

शहर में किसी न किसी कार्य से आये हुए नर-नारी गाँव लौट रहे हैं। कुछ स्त्रियों के कंधों पर खाली टोकरियाँ हैं। कुछ लोग नगर से सौदा खरीद-कर ला रहे हैं-इंग्लैंड में छपने वाले अखबारों से बँधे पुड़ों में।

केवल मैं ही ऐसा व्यक्ति था जो गोदावरी के तट पर यों ही निरुद्देश्य घूम रहा था। बाकी सब लोग काम से आ-जा रहे थे।

सूर्यमंडल अभी पूरी तरह गोदावरी में डूबा नहीं है। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणों से बादल अपने आपको सजाने लगे। गोदावरी की लहरें उत्तरोत्तर बढ़ती गईं।

तीनों लड़कियाँ बातचीत करती जा रही थीं। लकड़ियों के बोझ के कारण उनकी सुन्दर गर्दन झुकी जा रही थी।

तीनों लड़कियाँ अपने-अपने घर पहुँच गईं। उनकी माताएँ अभी-अभी घर लौटी थीं, बाजार में चाँवल खरीदने गई थीं। उन तीनों लड़कियों के पिता, भाई तथा अन्य सम्बन्धी भी इसी समय मजदूरी लेकर घर आये हैं।

लड़कियों ने अपनी-अपनी माताओं को वे लकड़ियाँ सौंप दीं, जो वे जंगल से चुनकर लाई थीं। माताएँ उन लकड़ियों से पानी गरम करके उन लड़कियों के पिता तथा भाइयों को नहलाने लगीं। फिर उन्हीं लकड़ियों से घर भर के लिए भोजन बनने लगा। भाई तथा पिता की लाई मजदूरी और मां के लाये चाँवल पर्याप्त रहे, दूसरे दिन पूर्ववत् लड़कियाँ लकड़ी बीनने, मां चावल लेने और पिता तथा भाई मजदूरी करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

उन लड़कियों और लड़कियों के माता-पिता तथा चिड़ियों में मुझे कोई

अन्तर दिखाई नहीं दिया। देहाती लोग और चिड़ियाँ दोनों समान रूप से अपने जन्मदाता ईश्वर पर पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं।

किसी चिड़िया के पास जाकर यदि हम उससे प्रश्न करें—चिड़िया, चिड़िया! तू नित्य प्रति अपने खाने-दाने के लिए इतनी परेशान क्यों होती है? जिस दिन अधिक मिले, उसी दिन अन्न इकट्ठा क्यों नहीं कर लेती, जिससे कई दिन आराम करती रहे?" आप जानते हैं, चिड़िया इस प्रश्न का उत्तर क्या देगी? वह कहेगी भगवान ने सभी प्राणियों के लिए संसार में अभीष्ट पदार्थों की व्यवस्था की है। तब मैं पृथक रूप से और क्या व्यवस्था करूँ? चिड़िया के इस प्रकार के उत्तर में मुझ जैसे सभ्य नागरिक के लिए कोई सचाई दिखाई नहीं देगी।

मैंने गोदावरी की ओर मुड़ कर देखा, सूर्यदेव पूरी तरह अस्त हो चुके थे। गाँव के लोग अपना-अपना भोजन करके सोने की तैयारी में लग गये।

[२]

मैं गोदावरी के किनारें पर चला आया हूँ। पक्षी घोंसलों में सो चुके हैं। पेड़ भी सो रहे हैं। किसी तरह डग भरता मैं नदी के किनारे-किनारे नगर में लौट आया। इस नगर के निवासी अब तक घरों में बन्द नहीं हुए थे। शहरी-जीवन से मुझे घृणा हो आई। मेरे मन में आया कि मैं भी गाँव में रहने लगूँ तो कितना अच्छा हो। कितना आनन्द रहेगा यदि मैं भी सवेरे ग्वालों के साथ चौपायों को हाँकता-हाँकता दूर जंगल में पहुँच जाऊँ और छाया में बैठ प्रकृति से बातचीत करूँ! किसी पेड़ की छाया में कलेवा करके अपने चौपायों के साथ गोदावरी का पानी पीऊँ और फिर किनारे पर ही पेड़ों की छाया में खेलता रहूँ। वहीं प्रकृति की गोद में सो जाऊँ!

—अथवा उन लड़कियों के साथ मैं भी टोकरा उठाये, चप्पल पहने लकड़ी-कंडे बीनता फिरूँ तो कितना अच्छा हो! उन लड़कियों के साथ मैं भी गीत गाऊँ, हम लोगों के साथ वे चिड़ियाँ भी अपना गान छेड़ें

उस गान को गोदावरी सुने तो कितना अच्छा हो। किन्तु कठिनाई यह है कि मैं नगर-निवासी हूँ। क्या वे लड़कियाँ मुझे अपने पास आने देंगी? कहा जाता है, यदि किसी पक्षी को मनुष्य छू ले तो दूसरे पक्षी उस पक्षी को अपने दल में सम्मिलित नहीं करते। वे लड़कियाँ क्या मुझे अपने साथ लकड़ियाँ बीनने देंगी?

उन ग्रामीणों के साथ मैं भी उस गाँव में निश्चिंतता का जीवन व्यतीत कर सकूँ तो कैसा रहेगा! इस प्रश्न पर विचार करते समय मुझे ज्ञात हुआ कि मैं इसके योग्य नहीं हूँ। मजदूरी करते हुए हाथों में छाले पड़ जायें, इसका अभ्यास मुझे कहाँ है? मेरे पाँव कँटीले झाड़-झंखाड़ों और खेत की मेड़ों पर नहीं चल सकते। मेरी देह सर्दी-गर्मी को एक भाव से कहाँ सहन कर सकती है! मुझ में इतनी समबुद्धि कहाँ है कि जैसी स्थिति आये, उसी में संतुष्ट रहूँ। अपने आपको विश्व की एक साधारण इकाई मानने के लिए मैं कहां प्रस्तुत हूँ? मेरा शरीर शीत और ऊष्ण दोनों का प्रभाव तुरन्त ग्रहण करता है और मेरे पाँव धरती के कृमियों को आकर्षित करते हैं। मैं अपने हाथों से चट्टान तो नहीं उठा सकता।

मैंने अपने मन को समझाया, मैं पढ़ा-लिखा आदमी हूँ। ग्रामीणों को पढ़ा कर जीविका उपार्जित कर सकता हूँ। कुछ काल गाँव में रहकर ग्रामीणों की कृतज्ञता क्यों न प्राप्त करूँ? मेरे शिक्षित हृदय की भावना तो देखिये! मैं पढ़ाऊँगा तो ग्रामीणों को मेरे प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए! लकड़ी बीननेवाली वे लड़कियाँ क्या अपनी माताओं से कृतज्ञता की उपेक्षा रखती हैं? मैं हूँ कि अध्यापन के बदले ग्रामीणों की कृतज्ञता का आकांक्षी हूँ!

कुछ समय पश्चात गाँव में छोटा-सा घर बना कर अपनी गृहस्थी बसा लूँ, लकड़ी बीननेवाली एक लड़की के साथ विवाह करके ....

[३]

प्रतिदिन गोदावरी के तट पर टहलने की आदत मैं डाल चुका हूँ। मैंने

निश्चय किया है कि उस ग्राम के निवासियों के साथ घनिष्टता बढ़ाऊँ और फिर उनकी समति लेकर वहाँ बसूँ। मैंने उस गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से परिचय पाकर एक पाठशाला खोलने का संकल्प किया। इस पाठशाला में तेलुगु, अँग्रेजी, गणित, नागरिक शास्त्र आदि विषयों की शिक्षा देने का निर्णय भी मन ही मन कर लिया।

उन तीन किशोरियों में से एक के साथ मित्रता स्थापित करके उस मित्रता को प्रणय में परिवर्तित करने का निश्चय भी कर चुका।

एक सन्ध्या को मैं गोदावरी के किनारें खड़ा था। हर रोज पत्ते देखते थे, अतः मुझे पेड़ों के पत्ते ऐसे प्रतीत हुए, जैसे वे मुझे अच्छी तरह जानते हों।

चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। उन झाड़ियों में मेरें नेत्र किसी को खोजने में लगे थे। पाठक समझ गये होंगे कि मैं किसे ढूँढ़ रहा था? दूर्वादलों और पेड़ों ने खाली हाथ घुमा-घुमा कर मुझे उत्तर दिया—

सामने गोदावरी है। गोदावरी के परले पार आकाश छोटे-छोटे मेघ-खंडों से भरा है। उस किनारे का एक गीत लहरों पर लहराता हुआ मेरे कानों से आ टकराया। मैंने चौंक कर उस ओर देखा तो एक काली सी छाया दिखाई दी, लकड़ी बीनने वाली लड़की ही संभवतः गीत गा रही है।

मुझ से थोड़ी ही दूर खेत की क्यारी है, क्यारी में एक किशोर काम कर रहा है। गीत सुनकर किशोर ने कमर सीधी की और गोदावरी के दूसरे किनारे पर दृष्टि डाली। उसने भी उस ग्रामीण लड़की को एक ग्राम-गीत भेजा। किशोरी और किशोर के बीच का अन्तराल दोनों के गीतों का मार्ग बन गया। उस मार्ग से दोनों के हृदय यात्रा करने लगे। गीतों के मार्ग से यात्रा करने वाले किशोरी के हृदय को किशोर ने अपने में छिपा लिया है और इसी मार्ग से किशोरी ने भी किशोर का हृदय पाया है। इस लुकाछिपी को देख गोदावरी हँस पड़ी और मेरा मन उदास हो गया।

दोनों निकट आने लगे। किशोरी गोदावरी पार कर सिर पर लकड़ी का टोकरा लादे युवक की ओर बढ़ने लगी। दोनों मिले। एक दूसरे का हाथ पकड़ खेत के किनारे आये और तब अपने घर की ओर चल दिये। लड़की ने फटे-पुराने कपड़े पहन रखे हैं। किशोरी की आँखों से किशोर का हृदय झाँक रहा है। किशोर के हाथ में लाठी, सिर पर पगड़ी, कमर में कोपीन। उसका गहरा श्याम रंग चमक-चमक जाता है, किशोर की आँखों में भी किशोरी का हृदय झाँक रहा है।

किशोर तथा किशोरी ने मुझे देखा, देखते ही दोनों ने हाथ छुड़ाया और अलग होकर दूर-दूर चलने लगे। धीरे-धीरे दोनों मेरे निकट आ गये। मुझे देखकर लड़की हँस पड़ी। और दिन मैं लकड़ी बीनकर लड़की को देता था, तो वह ले लेती थी, किन्तु आज उसने मेरी दी हुई लकड़ियाँ टोकरी में नहीं डाली। मैं उस लड़के को जानता हूँ, फिर भी वह मुझसे कहे-सुने बिना चला गया। मैं कुछ देर तक वहाँ खड़ा रहा।

[४]

मैंने गाँव के मुखिया लोगों से बात की। सबने यही कहा कि बच्चों को पढ़ने-लिखने के लिए समय ही नहीं मिलता। उन बालकों के लिए भगवान ने जीविका का साधन जुटा रखा है, फिर पढ़कर नौकरी करने की उन्हें क्या जरूरत? मैंने उन्हें समझाया कि पढ़ने का उद्देश्य केवल जीविकोपार्जन नहीं है, ज्ञानार्जन .... आदि भी है। जिस समय मैं ग्रामीणों को समझा रहा था, मेरी अन्तरात्मा ने मुझे स्मरण कराया-मैंने स्वयं रोजी पाने के लिए पढ़ा है, सारा संसार कमा खाने के लिए पढ़ता है। इस गाँव में पाठशाला खोलने का विचार भी मेरी जीविका से जुड़ा हुआ है।

ग्रामीणों ने पूछा कि मैं बालकों को क्या पढ़ाऊँगा? मैंने उत्तर दिया-'अँग्रेजी, तेलुगु, गणित, इतिहास इत्यादि।' गाँव के मुखिया लोगों ने मुझे बताया कि गाँव की एक लड़की पढ़ने के लिए शहर गई

थी। कोई उसे ले गया था, माँ-बाप नहीं थे, इसीलिए वह जा सकी। उसने शहर में जाकर खूब पढ़ा-लिखा किन्तु इस पढ़ाई से उसे क्या मिला? बन-ठन कर घूमती है, ईश्वर के प्रति उसे विश्वास नहीं रहा, ग्रामवासियों को देख कर घृणा करती है। और अनोखी बात यह कि उसने विवाह नहीं कराया। विवाह न कराने में उसका अपना दोष नहीं है, कहीं से बात ही नहीं चली। भगवान को भुला देने वाली शिक्षा व्यर्थ है, ऐसी शिक्षा का क्या महत्व! जो शरीर को सजाने में ही जीवन बिताने की प्रेरणा दे और विवाह से दूर रखे।

जब मैंने इस पर भी अपना आग्रह बनाये रखा तो उन लोगों ने पूछा "क्या तुम रात के समय रामायण, महाभारत और भागवत पढ़ा सकते हो?"

अँग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति से यह प्रश्न किया गया था। मैं मौन रहा। बहुत परिश्रम से मैं तेलुगु में साढ़े तेंतीस अंक प्राप्त कर सका था। क्या तो महाभारत पढ़ाता और क्या रामायण? उन लोगों से बिदा माँग कर लौट पड़ा।

साँझ का समय, गोदावरी के किनारे-किनारे आ रहा था। गाँव लौटने वाले नर-नारी मेरे सामने से गुजरे, अभ्यास के कारण मैंने धरती पर गिरी सूखी लकड़ियों की ओर देखा। लकड़ी के टुकड़े मुझे देख कर हँस रहे थे। उस लड़की को देखने की उत्कट अभिलाषा थी मेरे मन में, इसीलिए नदी के तट पर जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी, मैंने नज़र दौड़ाई, मुझे दिखाई दिया, वह लड़की एक डाल पर बैठी सूखी लकड़ी तोड़ रही है और जमीन पर फेंक रही है, फिर मैंने युवक को ढूँढ़ा। वह कुछ दूर अपने चौपायों को हाँक कर घर के रास्ते पर लगा रहा है। मैं खड़ा हो गया। वह युवक उस पेड़ के नीचे आया, जिसकी डाल पर लड़की बैठी थी। उसने वे लकड़ियाँ टोकरे में भरीं, लड़की पेड़ से नीचे उतरने लगी। युवा उसकी ओर देखने लगा—पीछे की ओर कस कर बँधा आँचल, गाँठ वाला बड़ा जूड़ा, पाँवों में कड़े, अधरों पर हँसी, आँखों में चमक।

आपने डाल पर फुदकनेवाला पक्षी देखा है? पेड़ से सटकर छिपे-

छिपे बढ़नेवाली बेल देखी है? वह किशो एकरी छोटी-सी डाल से नीचे कूदी। युवक हँसा, उसने टोकरा उठाकर किशोरी के सिर पर रख दिया।

दोनों गीत गाते चल दिये। उन पर पेड़ों से झर-झर कर फूल गिर रहे थे। किशोर ने टेसू के दो फूल तोड़े, उनसे किशोरी के कान सुसज्जित हो उठे। पक्षी संगीत छेड़े हुए थे। सूर्य की अरुण-अरुण किरणों ने सारी धरती को रंग दिया था किन्तु उन दोनों पर अरुण किरणों की आभा बहुत गहरी थी। गोदावरी ने वायु के मिस उन्हें आशीर्वाद भेजा। जब वे ऊपर आ गये तो उन्होंने मुझे देखा।

मैंने कहा-'मै जा रहा हूँ।' 'अच्छा भैया, फिर कब आओगे?' किशोरी इतना कहकर हँस पड़ी थी।

'जा रहा हूँ' मैंने युवक से कहा।

'अच्छा बाबूजी।' युवक ने उत्तर दिया, वे मुझे वहीं छोड़ आगे निकल गये। मैंने गोदावरी पर दृष्टि डाली। मुझे आभास हुआ जैसे गोदावरी मेरी ओर ताक रही थी।

श्री श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री

गुलाब का इत्र

एक क़दम आगे बढ़ने पर दीवनजी के दर्शन होंगे।

नजी की कृपा के संपादन के लिए राजधानी के प्रतिष्ठित नागरिक, राजा के परिचारक और राजवंश से संबन्धित बहुत से व्यक्ति से उपस्थित थे।

थत लोगों में से कुछ ने उस नवागंतुक व्यक्ति को देखा। ने खड़े होकर कमरे में एक दृष्टि डाली और फिर इत्मीनान के हाथ फैलाये। इसके बाद उसने बड़ी तेजी से शीशी की डाट पना सिर पीछे हटा कर उसने शीशी का खुला मुँह हवा की या। नवागंतुक का नाम शुकूरअलीखाँ था।

अलीखाँ ने तत्काल शीशी के मुँह पर डाट लगा दी, शीशी का र ही खुला रहा होगा किन्तु इसी बीच ऐसी गंध निकली कि मने लगे, जैसे खुमारी में हों।

में बैठे हुए लोग भी इस सुगन्ध से चौंक पड़े।

ार साहब दीवानजी की बगल में कुछ पीछे खड़े हुए दीवानजी र नजर गाड़े हुए थे, सुगन्ध के आते ही चकित दृष्टि से सिंह-द्वार की ओर देखा और फिर अपना सिर झुका लिया। थानेदार मन ही मन गुनगुनाया- 'आ गया।'

इसी समय दीवान ने इधर-उधर तीक्ष्ण दृष्टि दौड़ाकर खाँसते हुए गरज कर कहा- 'यह दुर्गन्ध कैसी है?' दीवानजी के इस प्रश्न से लोगों ने अनुभव किया, जैसे शुभ्र चाँदनी में अंधकार की रेखा खिंच गई है।

गंध तीव्र अवश्य थी, किन्तु इतनी मनमोहक महक को दीवानजी ने

दुर्गंध बताया तो उपस्थित लोग चकित रह गये वे अपनी आँखों में कुछ हास्य लिये हुए एक-दूसरे को देखने लगे।

'अरे, रे!' थानेदार के मुँह से इतना ही निकला था कि उसने मुँह मोड़ कर अपने ओठ काट लिये।

चपरासियों को भी कम आश्चर्य नहीं हुआ।

शुकूरअलीखाँ पथराई आँखों से ताकता रह गया। दीवानजी का दुर्गंध शब्द सभी को स्तब्ध कर गया था।

शुकूरअलीखाँ ने अपनी पचास वर्ष की आयु में पहली बार ऐसे बार यक्ति को देखा था, इत्र की सुगंध को दुर्गंध बता रहा था।

दो वर्ष पूर्व शुकूरअलीखाँ लाख यत्न करके गोलकुंडा दुर्ग में प्रवेश पा सका था। डेढ़ महीने तक उसने प्रतीक्षा की थी किन्तु वजीर के दर्शन नहीं हुए थे। वह तंग आकर घर लौटने ही वाला था कि एक दिन अकस्मात् उसे वजीर के दरबार में जाने की अनुमति मिल गई। खश के साधारण इत्र से ही वजीर के दरबारी उछल पड़े थे और वजीर साहब कम प्रसन्न नहीं हुए थे।

वहाँ के नवाब ने भी कितनी प्रशंसा की थी!

यहाँ, पेद्दापुरम में पहुँचते ही वजीर से मिलने का प्रबन्ध हो गया। दूसरे दिन ही थानेदार को पटा लिया था। तीसरे दिन वजीर के दरबार में जानें की अनुमति मिल गई, लेकिन परिणाम यह हुआ! शुकूरअलीखाँ जानता है कि मुसलमान सरदारों की भाँति हिंदुओं में लीला-विलास के साधनों का अधिक महत्व नहीं है। जो आदमी इत्र की सुगंध को दुर्गंध कहे वह राज्य में राजा के पश्चात् सबसे अधिक महत्वपूर्ण पद-मंत्रिपद-पर कैसे रह सकता है! बड़े लोगों के वैभव-विलास से दीवानजी निरपेक्ष तो नहीं हैं? हो सकता है यहाँ के महाराज में भी विलास-सामग्रियों के प्रति अरुचि हो।

कुछ भी हो, दीवानजी का आचरण शुकूरअलीखाँ को बहुत असंगत प्रतीत हुआ। वह मन ही मन सोचने लगा कि मेरे इत्र का न जाने क्या फल निकले। इतना सब होते हुए भी वह निराश नहीं हुआ।

इसी बीच थानेदार ने द्वार की ओर देख कर जोर से आवाज दी- 'चपरासी।'

'श्रीमन' चपरासी ने कमरे में पहुँच कर कहा - 'श्रीमन, दिल्ली से एक इत्र बेचने वाला आया है। आपके दर्शनों का अभिलाषी है।'

थानेदार बोल उठा - 'अन्नदाता, जिसके बारे में मैंने निवेदन किया था, वही आया है।'

दीवानजी ने सिर ऊपर नहीं उठाया। बोले - "वह इत्रवाला क्या इस दरबार में ही अपनी दूकान लगाना चाहता है?" दीवानजी के स्वर में कड़ाई थी।

यह उत्तर सुनकर चपरासी और थानेदार दोनों स्तब्ध रह गये। शुकूरअलीखाँ का मुँह तो सफेद पड़ गया था।

'मंत्रिप्रवर, मेरी प्रार्थना सुनिये। नवागन्तुक का आशय अच्छा ही दिखाई देता है। थानेदार ने इस व्यक्ति का परिचय दिया था, किन्तु उस परिचय से इस व्यक्ति के गुणों की पूरी-पूरी जानकारी नहीं मिल सकती थी। इत्र की सुगंध को शब्दों से व्यक्त नहीं किया जा सकता, इसीलिए उसने एक शब्द भी न कहा। अपने इत्र की विशेषता प्रकट की है। दिल्ली निवासी के लिए यह आचरण बहुत साधारण ही कहा जाएगा। वहाँ बड़े-बड़े अमीर-उमराव रहते हैं। उन अमीर-उमरावों को इत्र बेचने वाला साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। उससे आपको अवश्य मिलना चाहिए।' शास्त्रीजी ने थानेदार की ओर देखते हुए दीवानजी से निवेदन किया।

दीवानजी ने न तो सिर उठाया और न इधर-उधर देखने का प्रयत्न किया। केवल लिखना रोक कर कलम नीचे रख दी और सुँघनी की डब्बी हाथ में ले ली।

[२]

'उपस्थित करो।' थानेदार ने कहा।

सुनते ही दीवानजी की भौंहें तन गईं। आँखों में झलक दिखाई दी, जैसे उनके मस्तिष्क में कोई गंभीर विचार चल रहा है।

एक ही छलांग में कमरे के बीचों-बीच पहुँच कर शुकूरअलीखाँ ने झुक झुक कर तीन बार अभिवादन किया। फिर बोला — 'बन्दा आपकी खिदमत में लाखों सलाम पेश करता है। आपके क़दम ढूँढ़ता-ढूँढ़ता मैं दिल्ली से आया हूँ।'

शुकूरअलीखाँ के अभिवादनों को आँखों से स्वीकार करते हुए दीवानजी दर्प के साथ बोले — 'क्या करते हो?'

'इत्र बनाता हूँ। मैंने सुना था दक्षिण में गोलकुंडा के बाद पेद्दापुरम ही देखने लायक है। इसीलिए मैं पंख लगा कर हजूर के दरबार में हाजिर हुआ हूँ। आपकी मेहरबानी चाहिए।' शुकूरअलीखाँ ने बहुत ही नम्रता के साथ निवेदन किया।

'पंख होते तो कहीं न कहीं उड़ जाते, इस तरह सिकुड़ कर थोड़े ही बैठते!' दीवानजी ने डाँट बताई।

शुकूरअलीखाँ डाँट को पहचान गया किन्तु प्रसंग बदलने के लिए उसने कहा — 'आपने बजा फरमाया, हुजूर, पंख होनें का लाभ यह है कि जहाँ रसिक हों वहीं पहुँच सकता हूँ। इसीलिए तो चार पीढ़ी पहले मेरे पूर्वज ईरान छोड़कर दिल्ली उड़ आये थे। सेना में अच्छा पद मिल रहा था, किन्तु मेरे पूर्वजों ने अपना हुनर नहीं छोड़ा और इत्र बना कर दिल्ली के शासकों का आदर पाते रहे।'

'ठीक है।' दीवानजी ने रूखा-सा उत्तर दिया।

'मैं अपने पिता की आज्ञा लेकर दक्षिण के नवाबों, राजाओं और मंत्रियों की सेवा करने आया हूँ। गोलकुंडा के नवाब और वजीर दोनों हमारी मेहनत से बहुत खुश हुए।' शुकूरअलीखाँ ने कहा।

'मुझ से क्या चाहते हो?'

शुकूरअलीखाँ ने निवेदन किया, 'केवल आपकी कृपा चाहिए।' उसने एक छोटी-सी पेटी खोल कर दीवानजी के सामने रख दी। पेटी का भीतरी भाग लाल रंग के सुन्दर मखमल से सजा हुआ था। मखमल से ढँकी एक छोटी-सी शीशी थी। शीशी पर नक्काशी का काम था। देखने

में सुन्दर थी। आधी से अधिक शीशी को हाथ में लेकर शुकूरअलीखाँ बोला – "सरकार, यह चमेली का इत्र है। दो वसंत ऋतुओं में केवल दो तोला तैयार हुआ है।"

'ओह!' दीवानजी ने कहा।

'अपनी चीज की प्रशंसा करना अच्छी बात नहीं है, हुजूर! आप स्वयं अपना मुँह दूर रख कर इसकी डाट हटाइये।' यह सुनकर उपस्थित लोगों ने अपनी चेतना शक्ति नासिका में केन्द्रित कर ली, किन्तु दीवानजी वैसे ही बने रहे। उन्होंने रूखे स्वर में कहा - 'डाट खोलना ही मेरा काम रह गया है!'

शुकूरअली मन ही मन क्रुद्ध हो उठा। वह अच्छी तरह जानता है कि अधिकार का मद मनुष्य को अंधा बना देता है। जिस दिल्ली में अनगिनत अमीर-उमराव रहते हैं, उस दिल्ली में ही उसने पहले-पहल इस तथ्य का साक्षात्कार किया था। इस प्रकार के मदांध लोगों को ठीक ठीक उत्तर देना उसे आता है।

यदि किसी अन्य कार्य से वह पेद्दापुरम आया होता तो ठीक-ठीक उत्तर देता भी, किन्तु जिस काम से वह आया है, उसमें ठीक ठीक उत्तर देने से बाधा पड़ती। वह किसी पुरस्कार के लिए प्रयत्नशील नहीं था। अपने इत्र का प्रचार करना चाहता था। जब तक राजा के दर्शन न हों, उसके इत्र को आदर नहीं मिल सकता था।

राज-सभा में काँटे बिछे रहते हैं, वह हिंस्र-पशु के समान आचरण करनेवाले व्यक्तियों से घिरी रहती है।

ऐसी स्थिति में अपने पित्ते को मार कर सहनशीलता का परिचय देना पड़ता है। व्यवहार-कुशलता ही ऐसी सभा में सहायक हो सकती है। यह बात ध्यान में रख कर शुकूरअलीखाँ ने विनय के साथ कहा - 'हुजूर की इज़ाज़त हो तो....।'

थानेदार ने बीच में टोका - 'दीवानजी तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। पहले तुम अपने आगमन के उद्देश्य से दीवानजी को परिचित कराओ।'

'जी हाँ, आपने ठीक फरमाया' - शुकूरअलीखाँ ने आँखों ही आँखों में थानेदार की प्रशंसा करते हुए एक दूसरी पेटी खोलकर दीवानजी के सामने रख दी। इस पेटी का भीतरी भाग हरे रंग के मखमल से मँढ़ा हुआ था।

सुन्दर नक्काशी के कारण इत्र की शीशी अगणित रत्नों की कान्ति से जगमग-जगमग कर रही थी। इस शीशी में लाल रंग का इत्र भरा हुआ था।

सभी सभासद शीशी देख कर मंत्रमुग्ध हो गये। किन्तु, दीवानजी ने सिर उठाकर उस शीशी की ओर देखा तक नहीं। उनके इस आचरण से सब लोग निराश हो गये। शुकूरअलीखाँ ने चेहरे पर बनावटी भोलापन लाकर कहा-'हुजूर, सब कुछ जानते हैं। पेद्दापुरम के महाराज को यह इत्र भेंट देना चाहता हूँ। गोलकुंडा के नवाब को जिस तरह खस का इत्र पसंद है उसी तरह पेद्दापुरम के महाराज गुलाब का इत्र बहुत पसंद करते हैं। इस शीशी में केवल एक तोला इत्र है। इस इत्र के लिए काश्मीर से फूल मँगाये गये थे और इसकी तैयारी में पूरे दो साल लगे।

दरबारी लोगों ने इस प्रकार के इत्र पर आश्चर्य प्रकट किया। दीवानजी ने धीरे से कहा-'आश्चर्य की क्या बात है? अच्छी चीज़ कुछ क्षणों में तैयार नहीं हो सकती।' फिर कृत्रिम दया दिखाते हुए बोले-'इस इत्र की तैयारी में न जानें बेचारें का कितना खर्च हुआ होगा!'

शुकूरअलीखाँ स्तब्ध रह गया। उसकी इस स्तब्धता और दीवानजी की उपेक्षा पर सब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ।'

शुकूरअलीखाँ को अनेक राजसभाओं में जाने का अवसर मिल चुका है। बड़े-बड़े नवाबों, वजीरों और सरदारों की प्रशंसा पाकर वह फूला नहीं समाया। उसने कई लोगों से सुना था कि पेद्दापुरम के महाराज बड़े रसिक और सहृदय हैं इसीलिए वह बड़ी बड़ी आशाएँ लिये यहाँ आया था और महाराज से मिलने के लिए दीवानजी की सहायता माँग रहा था। उसका विचार था कि किसी तरह राजा के दर्शन हो गये तो निहाल हो जाएगा,

ए उसने अपनी स्तब्धता तथा क्रोध पर काबू पाकर विनीत स्वर में कहा - 'मैं यह इत्र दक्षिण देश के शासकों के शिरोमणि पेद्दापुरम के महाराज को भेंट देने के लिए लाया हूँ, उन्हीं के लिए तैयार किया गयाहै। मैं इसकी कीमत नहीं लेना चाहता।'

शुकूरअलीखाँ की आँखों में व्यथा झलक रही थी।

दीवानजी ने अपने भोलेपन का परिचय देते हुए कहा - 'हमें इस बात का पता कैसे चले कि तुम हमारे महाराज का कितना आदर करते हो?'

'हुजूर, मैं यह नहीं मान सकता कि पेद्दापुरम की राजसभा में कोई व्यक्ति नहीं है, जो महाराज के लिए भेंट में लाई गई ऐसी वस्तु का मूल्य न आँक सके।'

'जो वस्तु हमारे स्वामी के लिए लाई गई है, उसे हम स्वामी की आज्ञा के बिना खोल कर नहीं देख सकते।'

'तब फिर हुजूर की सेवा में ....।'

'तुम्हारा कहना उचित है, किन्तु हम लोग अपने महाराज के सेवक मात्र हैं। हमें अपना कर्त्तव्य निभाना है।'

'हुजूर, मैं भी तो आप से अर्ज करता हूँ।'

'अर्ज करना और किसी वस्तु की भलाई-बुराई परखना दो भिन्न बातें हैं। दिल्ली का वजीर गुण-दोष का विचार किये बिना ही किसी भी व्यक्ति को बादशाह की सेवा में भेंट देने की अनुमति प्रदान करता है।'

दीवानजी की बात सुनकर शुकूरअलीखाँ पानी-पानी हो गया।

थानेदार ने परिस्थिति को गंभीर होता देख कर प्रसंग बदलना चाहा। उसने शुकूरअलीखाँ को संबोधित किया - 'दीवानजी इस समय आवश्यक कार्य में व्यस्त हैं, फिर कभी दर्शन के लिए आना।'

सभी दरबारियों ने गहरी साँस ली। अपने प्रति सब दरबारियों की सहानुभूति देख कर शुकूरअलीखाँ बहुत प्रसन्न हुआ। सब को झुक-झुक कर अभिवादन किया और पीछे हटता गया। जब वह द्वार पर पहुँचा तो परिचारक ने उसकी दोनों पेटियाँ लाकर सँभला दीं।

[३]

शुकूरअलीखाँ को रात भर नींद नहीं आई। उसका दिमाग परेशान था। आँखें खुली हों चाहे बंद, दीवानजी की क्रुद्ध दृष्टि दिखाई देती रहीं। उसे अनुभव हुआ, जैसे किसी ने उसके हृदय में छुरी घोंपी है।

यह सत्य है कि स्वभाव सब का समान नहीं है, और यह भी सत्य है कि मनुष्य अपने मन की बात साफ़-साफ़ नहीं कह पाता।

जीवन की सफलता इस बात में है कि मनुष्य विरोधी शक्तियों पर विजय प्राप्त करे। किसी व्यक्ति में हृदय की प्रधानता होती है तो किसी में मस्तिष्क की। जिस व्यक्ति में मस्तिष्क की प्रधानता होती है, उसे अनुभूति नहीं होती। जब अनुभूति न हो तो सहानुभूति कहाँ?

जिस व्यक्ति में हृदय की प्रधानता होती है, वह कला से प्रेम करता है। वही व्यक्ति कला से आनंद प्राप्त कर सकता है। सहृदय को कला द्वारा आनंद प्रदान करने के लिए कलाकार को तपस्वी बनना पड़ता है। कला की साधना में वह अपना जीवन बिता देता है।

शुकूरअलीखाँ ऐसा ही कलाकार है जिसने कला की साधना में जीवन बिताया है। उसका इत्र सुन्दर कला का परिचायक है। यदि कोई उससे कह दे कि हमें तुम्हारा इत्र नहीं चाहिए, तो वह बात को समझ सकता है। बिना किसी चिन्ता और दुःख के अपने घर लौट सकता है। किन्तु ....।

उसके इत्र का मूल्य केवल धन है तो उसे इतनी दूर आने की क्या आवश्यकता थी। दिल्ली नगर स्वयं एक देश है। वहाँ धनी लोगों, राजा-महाराजाओं तथा सरदारों की क्या कमी थी। उनमें अनेक लोग रसिक भी हैं। उसके इत्र के प्रशंसकों की संख्या कम नहीं है—दिल्ली में।

किन्तु, पेद्दापुरम के अधिपति श्री श्री श्रीवत्सवायि चतुर्भुज तिम्म जगपति महाराज की रसिकता दिल्ली में भी प्रसिद्धि पा चुकी है।

दिल्लीश्वर की रसिकता भी शुकूरअलीखाँ के हृदय को तृप्त नहीं कर सकी। इसीलिए वह दिल्ली से चल दिया। पेद्दापुरम के महाराज के दर्शन के लिए उसका हृदय उद्विग्न हो उठा था।

वह दिल्ली से जैसे उड़ कर आया हो। उसके जीवन का अधिकांश भाग कुसुमों के साथ बीता था, किन्तु पेद्दापुरम में महाराज के दर्शन आकाश-कुसुम बन गये।

उसनें अनुभव किया, एक अमूल्य हीरा कंकड़ों में दबा हुआ है। शुकूर ने सोचा, मैं यहाँ आकर कँटीली झाँड़ियों से आवृत्त गढ़े में गिर गया हूँ।

पेद्दापुरम के नाम ने दिल्ली में अनेक आशाओं का संचार किया था, किन्तु यहाँ पहुँच कर उसने अपनी सभी आशाओं को निराशा में परिणत होते पाया। उसने अनुभव किया, दक्षिण हिंस्र पशुओं से भरा हुआ है। वह पश्चाताप करने लगा कि अपरिचितों में पहुँचकर उसने भारी मूर्खता की है।

किन्तु महाराज को इस बात का ज्ञान कहाँ है कि एक अच्छा कलाकार उनके सेवकों के कारण किस प्रकार क्षुब्ध हो उठा है। इस संसार में इस प्रकार की घटनाएँ घटित होती ही रहती हैं।

उदार और धर्मनिष्ठ शासकों के राज्य में भी विप्लव होता है, प्रजा में असंतोष फैलता है! अधिकारियों की असावधानी ही इस विप्लव और असंतोष का मूल कारण बनती है।

शुकूरअली खाँ रात भर सोचता रहा कि सम्मन पाना तो दूर वह बिना अपमानित हुए यहाँ से जा पायेगा या नहीं। रात भर वह इसी तरह की उधेड़ बुन में लगा रहा।

मुर्गे ने बाँग दी।

कौओं ने मुर्गे की बाँग में अपना स्वर मिलाया।

[४]

दिन निकलते ही शुकुरअलीखाँ थानेदार के यहाँ पहुँचा। वह थानेदार के पाँवों में लेट गया। थानेदार अच्छी तरह जानता है कि इतना उत्तम इत्र अब तक पेद्दापुरम के महलों में नहीं पहुँचा है। थानेदार यह भी जानता है कि दीवानजी शुकूर को सम्मानित नहीं देखना चाहते।

अपना सिर दे सकता है, किन्तु अपने इत्र का मूल्य नहीं बता सकता। महाराज यदि इस इत्र को देख पायें तो खरीदे बिना नहीं रहेंगे। दीवानजी के पास जो लोग बैठे थे, उन सब का यही विचार था।

थानेदार चिन्ता में डूब गया। कुछ देर बाद बोला — 'साहस कर सकते हो?'

'जब आदर ही नहीं मिला तो प्राण किस काम के? आज्ञा दीजिये।' शुकूर गिड़गिड़ाया।

'तुम किले में नहीं पहुँच सकते। किसी तरह पहुँच भी गये तो तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं होगी।'

'तब कोई उपाय बताइये।'

'महाराज प्रतिदिन सन्ध्याकाल पंचकल्याणी घोड़े पर चढ़ कर पहाड़ियों की ओर सैर के लिए जाते हैं।'

'जी!'

'महाराज दुर्ग की चारदीवारी पार करें, उससे पहले ही उनके दर्शन करने होंगे। ऐसा उपाय करो कि खश का इत्र उनका ध्यान आकर्षित करे।'

'जी, आज्ञा दीजिये।'

'दीवानजी ने इस बात का भी कोई न कोई उपाय किया होगा, किन्तु उन्होंने अब तक इस विषय में आदेश नहीं दिया है। यदि तुम भाग्यशाली हो तो दीवानजी तुम्हारी बात अवश्य भूल गये होंगे। उन्हें इत्रवाली बात याद है, तब तो दुर्ग में प्रवेश पाना तुम्हारे लिए संभव नहीं है। मैं तुम्हारी इससे अधिक सहायता नहीं कर सकता।'

शुकूरअलीखाँ ने ठंडी साँस ली।

'कल मैंने चंदन के इत्र की शीशी खोली थी। दीवानजी मुझ पर प्रसन्न नहीं हुए। अब खश के इत्र पर क्या विश्वास होगा। फिर भी आपके बताये हुए अंतिम उपाय को अवश्य काम में लाऊँगा। जीवित रहा तो आपके उपकार को भूलूँगा नहीं।'

अली ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए तीन बार झुक-झुक कर अभिवादन किया।

[५]

शुकूरअलीखाँ किले में घुसा ही था कि चार सिपाही ओठ काटते, चिल्लाते उसके पास आ धमके, उसे रोक कर बोले 'कहाँ जाते हो?'

शुकूर का खून खौलने लगा। आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया, फिर भी उसने अपने आपको सँभालते हुए कहा 'दीवानजी के दर्शन करने जा रहा हूँ। मुझे आप लोग क्यों रोकते हैं?'

'इस समय तुम अन्दर नहीं जा सकते।' सिपाहियों ने कहा।

'मैं नया आदमी नहीं हूँ, कल शाम आवश्यक कार्य से मिल चुका हूँ। आज वही काम पूरा करना है।'

'तब उनकी ड्योढ़ी पर तुम्हें प्रतीक्षा करनी चाहिए।'

'अच्छा भाई, तब मुझे थानेदार की कचहरी में ले चलो।'

'वे इस समय दीवानजी के पास हैं। तुमसे नहीं मिल सकते।'

'वे जब तक लौटते है, मैं यहीं उनकी प्रतीक्षा करूँगा।'

सिपाहियों ने कहा-'यदि आपको दीवानजी या थानेदारजी से काम है, तो आप उनके घर जाइये। किले में कोई काम नहीं होता।'

इसी प्रकार जवाब–सवाल होते रहे। समय बीतता गया। थानेदार ने शुकूरअलीखाँ को परामर्श दिया था कि तुम किसी तरह किले में रुके रहे तो काम बन जाएगा। शुकूर मन ही मन थानेदार को धन्यवाद देता रहा।

दीवानजी ने सिपाहियों को आदेश दे रखा था कि शुकूरअलीखाँ किले में कदम न रखने पाये।

सिपाहियों और शुकूरअलीखाँ में वाद–विवाद चल रहा था कि आसपास काम करनेवाले बहुत से लोग इकट्ठे हो गये। आने-जाने वाले लोग भी रुक गये। लोगों ने शुकूर से पूछा–'क्या बात है?'

शुकूरअलीखाँ ने स्थिति समझा कर किले में अन्दर जाना चाहा,

किन्तु सिपाहियों ने अपनी विवशता प्रकट की। इस तरह आधा घंटा बीत गया। शुकूर को कहीं से सुनाई पड़ा - 'बस पन्द्रह मिनट और।'

सिपाही मन ही मन खुश थे कि उन लोगों ने शुकूर को अन्दर जाने से रोक दिया। इसी बीच एक आदमी ने आकर सिपाहियों के कान में न जाने क्या कहा कि वे शुकूर को किले से बाहर जाने के लिए विवश करने लगे।

शुकूरअलीखाँ समझ गया कि अब महाराज महलों मे निकलने ही वाले हैं। इसीलिए सिपाही मुझे बाहर खदेड़ना चाहते हैं। यदि मैंने इनकी बात न मानी तो मेरी गर्दन नापेंगे।

शुकूर को इस बात का दुःख था कि उसकी इतनी मेहनत व्यर्थ जा रही थी। उसने हिम्मत करके वहाँ एकत्रित प्रतिष्ठित लोगों मे पूछा - क्या पेद्दापुरम में कलाकारों का स्वगत इसी प्रकार होता है?'

उत्तर मिला - 'हाँ।'

शुकूरअलीखाँ का पूरा शरीर काँप गया। उसकी आँखें लाल हो गई। इस स्थिति में उसने तत्काल गुलाब का इत्र निकाला। उपस्थित लोगों की दृष्टि इत्र की शीशी पर केन्द्रित हो गई।

'यह इत्र मैंने पेद्दापुरम के महाराज के लिए खींचा है।' इतना कह कर शुकूरअलीखाँ ने पेटी तो नीचे पटक दी और शीशी अपने हाथ में उठा ली।

'मैंने रात-दिन बिना खाये-पिये पूरी शक्ति लगाकर बूँद-बूँद करके यह इत्र इकट्ठा किया है, इस आशा से कि इस इत्र को लेकर एक बार दक्षिण जाऊँगा। मैं जितनी प्रतिष्ठा दिल्ली के बादशाह की करता हूँ उतनी ही पेद्दापुरम के महाराज की भी। खून-पसीना एक करके इसीलिए मैंने यह इत्र तैयार किया, किन्तु यहाँ आकर मुझे ज्ञात हुआ कि महाराज जितने रसिक हैं, उनके अधिकारी उतने ही नीरस और शुष्क हैं। गुलाब के फूल की सुगन्ध दूर-दूर तक फैलती है, किन्तु वह खिलता है काँटों में। आज मेरा या मेरे इत्र का अपमान नहीं हुआ है। इस इत्र को महाराज

तक पहुँचाने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है और इसे मैं दिल्ली वापिस ले जाऊँ, यह मेरे लिए ही नहीं मेरे वंश के लिए लज्जाजनक है। अब मुझे यही बात अच्छी लगती है कि अपने आसपास के लोगों को न पहचाननेवाले पेद्दापुरम के महाराज की शुभ्रकीर्ति दिल्ली निवासी शुकूर-अलीखाँ के गुलाब के इत्र की सुगन्ध में सदा के लिए महकती रहे। इतना कहकर शुकूरअलीखाँ ने लम्बी साँस ली और इत्र की शीशी किले की दीवार पर जोर से दे मारी।

शीशी फूट गई।

जो लोग वहाँ जमा थे, उनके हृदय विकल हो उठे।

आसपास का भू-प्रदेश इत्र की सुगन्ध से महक उठा। महक से लोग खुमारी में आ गये।

कुछ क्षण पश्चात् लोग होश में आये। शुकूरअलीखाँ ने घूम कर देखा तो उसका चेहरा सफेद पड़ गया।

शुकूरअलीखाँ के साथ सभी लोगों ने देखा पंचकल्याणी अश्व पर श्री श्री श्रीवत्सवायि चतुर्भुज तिम्म जगपति महाराज बैठे हैं। नेत्र अर्द्ध-निमीलित, सुध-बुध भूले हुए। और पंचकल्याणी अश्व सिर उठाये प्रयत्न पूर्वक साँस ले रहा है।

पेद्दापुरम को देखकर लौटने वाले लोग आज भी कहते हैं कि किले का वह क्षेत्र गुलाब के इत्र की महक से महकता रहता है।

बेलूरि शिवराम शास्त्री

गाँव की पाठशाला

[प्रभात]

प्रातः दही मथते समय ज्यों ही नृत्य, गीत और वाद्य का संयोग हुआ, तिरुमलाचारी 'श्री' *प्राप्त करने के लिए पाठशाला की ओर वेग से दौड़ पड़ा। रेड्डी साहब के चबूतरे पर पाठशाल लगती है।

बालक तिरुमलाचारी ने चबूतरे पर चढ़ कर देखा तो इधर-उधर कुछ दिखाई नहीं दिया। तब तक उजाला नहीं हुआ था। उसने दीवर भी टटोल डाली, कोई लड़का उस समय तक नहीं आया था। उसे यह जान कर बहुत सन्तोष हुआ कि आज की 'श्री' उसे ही मिलेगी। उसने रेड्डी साहब के बेटे को बुलाया, किन्तु उत्तर नहीं मिला। वह बैठ गया। शाबाशी पाने का नशा और चढ़ गया। थोड़ी सी देर में निद्रा देवी ने उसे अपनी गोद में ले लिया।

गाँव के कोने में एक घर है। इस घर का बालक जनार्दन चौंक कर उठा। उसने देखा दुनिया को छोड़ते समय अन्धकार इधर-उधर घूम-घूमकर देख रहा है। जनार्दन 'श्री' पाने के लिए उतावला हो गया। उसने जल्दी-जल्दी बस्ता उठाया, दवात में पानी डाला और पाठशाला की ओर

---

* आन्ध्र प्रदेश की चटसालों में सब से पहले पहुँचने वाले छात्र के हाथ में गुरु उंगली से 'श्री' लिखता है। दूसरे के हाथ में 'तारा' लिखा जाता है और देर से आने वाले छात्रों के हाथ पर छड़ी पड़ती है। 'श्री' पाने वाला छात्र छड़ी मारता है। देर से आने वाले छात्र को क्रमशः अधिक छड़ियाँ लगती हैं।

भाग खड़ा हुआ। उसने पाठशाला में देखा, उसकी 'श्री' लूटकर पहले से ही वहाँ लेटा हुआ है।

जनार्दन ईर्ष्या से जलने लगा। तिरुमलाचारी को मारने के लिए जनार्दन का पाँव गज भर ऊपर उठा, किन्तु वह मार न सका। लात ऊपर ही रुक गई। उसने मन ही मन धर्म-युद्ध करने का निश्चय किया। चुप-चाप बैठ कर वह दतौन करने लगा।

दतौन करते समय मन में कई प्रकार के विचार उठते हैं। जनार्दन भी एक के बाद एक उठनेवाले विचारों में डूब गया। वह सोचने लगा कि तिरुमलाचारी को मिलने वाली 'श्री' कैसे लूटी जा सकती है।

जनार्दन की आयु थोड़ी ही थी, किन्तु गुणों के कारण वह प्रशंसा का पात्र था। इसी लिए तो उसने सरकार की पाशविक शक्ति से काम न लेकर वकीलों की तर्क-शक्ति से काम लेने का निश्चय किया।

तभी रंगम्मा हाँपती-काँपती पाठशाला पहुँची। उसने देखा, दो भूत वहाँ पहले ही उपस्थित हो चुके हैं। नानी के सिखाये हुए दो-चार मन्त्र पढ़ कर वह बैठ गई। जनार्दन ने मुँह धो कर रंगम्मा से कहा – "रंगी, कल तुमने चुड़वा नहीं दिया था। आज छड़ी से हथेली की चमड़ी उधड़ दूँगा। आज की 'श्री' मुझे मिलेगी। वह जो सो रहा है, उसे 'तारा' मिलेगा और तुम्हें मिलेगी छड़ी।"

जनार्दन की बात सुनते ही रंगम्मा का कलेजा काँप गया। रोनी सूरत बना कर उसने कहा – "मैं अब पाठशाला आऊँगी ही नहीं।" वह उठ कर घर की ओर चल दी।

जनार्दन ने समझौते के स्वर में कहा – 'अच्छा तुमको नहीं पीटूँगा; किन्तु तुम्हें गुरुजी से कहना पड़ेगा कि जनार्दन सब से पहले पाठशाला पहुँचा है।'

रंगम्मा तेजी से घूमी। बोली – 'तो क्या आज तुम्हें 'श्री' नहीं मिल रही है?'

जनार्दन ने रंगम्मा को अपनी मित्र-मंडली में सम्मिलित करते हुए

कहा - 'यदि तुमने मेरा साथ दिया तो, आज ही नहीं, सदा के लिए छड़ी तो जोर से उठाऊँगा, किन्तु हथेली को धीरे से छुआ कर छड़ी हटा लूँगा — समझी ?'

'अच्छा, तब तो मैं तुम्हारे पहले आने की ही बात कहूँगी।'

एक-एक करके बालक आने लगे। रंगम्मा प्रत्येक विद्यार्थी से कहने लगी – "जनार्दन के हाथ में 'श्री', तिरुमलाचारी की हथेली में 'तारा' और मेरी हथेली पर एक छड़ी।"

सभी छात्र कलियुग को कोसते हुए जात-पाँत की उपेक्षा करके सिलसिले से बैठने लगे। जनार्दन पट्टी पर लिखने लगा - जनार्दन - श्री, तिरुमलाचारी - तारा, रंगम्मा - एक छड़ी, उलक्कि - दो छड़ी।

[सूर्योदय]

सूरज निकल आया। पंडित रावुलपाटि राजय्या तालाब पर एक फुट लंबी दतौन करने लगे। दतौन करने के पश्चात् बालिश्त-भर ऊँचे लोटे से पानी लेकर अपने मुख-मंडल का अभिषेक करने लगे। सूर्य नमस्कार समाप्त करके हाथी की चाल से चटसाल की ओर चले।

इधर चटसाल में तिरुमलाचारी ने जनार्दन के हाथ से पट्टी छीन कर सारे नाम मिटा दिये। इस आचरण से उत्तेजित हो कर जनार्दन ने हाथों के साथ-साथ दाँतों का प्रयोग भी किया, तो तिरुमलाचारी हस्त-दंत के साथ तख्ती-कलम से भी प्रहार कर बैठा। रंगम्मा जनार्दन को बढ़ावा दे रही थी। शेष विद्यार्थी दो दलों में विभक्त होकर अपने-अपने नेता का जय-नाद करनें लगे। चटसाल ने साप्ताहिक हाट का रूप धारण कर लिया।

गुरुजी चटसाल में आकर खजूर की चटाई पर बैठ गये। उन्होंने अपनी लाल-लाल आँखें एक बार चारों ओर घुमाईं, तो हाट मसान में बदल गई। गुरुजी की आँखें चटसाल के बालकों के लिए ही नहीं, गाँव के बड़े-बड़े लोगों के लिए भी धूमकेतु के समान थीं।

'ला ऐंड आर्डर' के स्थापित होते ही विद्यार्थियों के नेता एल्लमंद ने प्रार्थना प्रारंभ की —

सरस्वती, नमस्तुभ्यं वरदे कामरूपिणी,
विद्यारंभं करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा।

सभी विद्यार्थियों ने यह श्लोक दुहराया।

उस समय तक राज-भक्ति अथवा राष्ट्रभक्ति से सम्बन्धित गीतों का प्रचलन नहीं हुआ था। गुरुभक्ति से सम्बन्धित स्तोत्र भी प्रचलित थे किन्तु उनका उल्लेख किसी पुस्तक में न हो कर गुरुजी की छड़ी में रहता था।

पंडितजी ने अपने दुपट्टे की गाँठ खोली, उससे ताड़पत्रों की एक थैली बाहर निकाली, इस थैली से ऐनक लेकर उन्होंने आँखों पर जमाई।

पाठशाला में जब कोलाहल शान्त हो गया तो पड़ोस में रहनेवाले पोन्नाड नागैया को पता चला कि गुरुजी ने अपना कार्य प्रारंभ कर दिया है। वह भी अपना बस्ता लेकर पहुँच गया।

पाठशाला में पहुँचते ही गुरुजी सब से पहले 'रामकोटि' लिखते हैं, जिस तरह महर्षि व्यास को लिखने में गणेशजी से सहायता मिलती थी, उसी तरह गुरुजी लेखन-कार्य में नागैया से सहायता लेते थे।

बंड सुब्बैया रामकोटि का बस्ता लाता था। आज वह अनुपस्थित था, अतः यह कार्य जनार्दन ने सम्पन्न किया।

नागैया ने रामकोटि के कागज निकाले और वह लिखने में व्यस्त हो गया।

जनार्दन खजूर की छड़ी लाया तो तिरुमलाचारी ने छड़ी छीन ली। जनार्दन चिल्ला उठा।

जनार्दन के चिल्लाने से 'रामकोटि' पर अनायास ही हनुमान जी की पूँछ की भाँति एक लंबी लकीर खिंच गई। गुरुजी का मुँह मारे क्रोध के लाल हो गया। छात्रों ने गुरुजी का मुँह देखा तो भविष्य की कल्पना से स्तब्ध रह गये।

गुरुजी अपनी मूँछों में उलझी हुई ऐनक अच्छी तरह निकाल भी नहीं पाये थे कि जनार्दन अपनी जगह से चिल्लाया - 'गुरुजी, आज 'श्री' मुझे मिलनी चाहिए। तिरुमलाचारी व्यर्थ ही मेरे हाथ से छड़ी छीन रहा है।'

रंगम्मा तुरंत अपनी जगह से उठ खड़ी हुई। उसने जनार्दन का समर्थन किया। पंडितजी ने चश्मा नीचे रख कर रंगम्मा को अपनी ओर बुलाया। वे गरज कर बोले - 'तुमसे किसने पूछा था ? इधर आओ।'

रंगम्मा का कलेजा धक-धक करने लगा। वह जहाँ खड़ी थी वहीं खड़ी रही। इंच भर भी न हिली। पंडितजी फिर गरज पड़े—'तुम्हीं को बुला रहा हूँ। तुम आती क्यों नहीं ?'

रंगम्मा जोर से रोने लगी और धम से अपनी जगह बैठ गई।

कुछ बालिकाओं ने सहारा देकर रंगम्मा को पंडितजी के सामने ला खड़ा किया। पंडितजी का क्रोध से लाल चेहरा देख कर रंगम्मा स्तब्ध रह गई। उसने अन्य बालिकाओं के बंधन से छूटने का प्रयत्न किया तो वे बालिकाएँ नाँगया पर गिर गईं और 'रामकोटि' पर स्याही फैल गई। नाँगया ने लड़कियों को ऐसी-ऐसी गालियाँ दीं जो उसके मुँह से पहले कभी सुनाई नहीं दी थीं। रामकोटि की अपवित्रता के भय से नाँगया उसे उठाये तालाब की ओर दौड़ा।

पंडितजी ने छड़ी चलाई। मार लगने से पहले ही रंगम्मा चीखती हुई पीठ के बल गिर पड़ी। दूसरी लड़कियाँ उसे खींच कर गुरुजी के सम्मुख ले जाने का प्रयत्न करने लगीं तो रंगम्मा पुकारी 'जनार्दन ने कहा था।'....

जनार्दन तब दूर खड़ा, रंगम्मा को घूर रहा था।

'क्यों रे जनार्दन, तूने कहा था!' पंडितजी ने तमक कर पूछा।

'झूठ है गुरुजी, बिल्कुल झूठ है।'

'तब 'श्री' किसे मिलेगी ?'

'मैं सब से पहले आया। जिस समय मैं मुँह धो रहा था, तिरुमलाचारी पाठशाला में आकर सो गया।'

'पाठशाला में आते ही मैंने क्या किया, यह तो बताओ।' तिरुमलाचारी पूछ बैठा। जनार्दन अपनी बुद्धि को तेज करने लगा। तिरुमलाचारी के प्रश्न से सभी छात्र प्रसन्न थे।

'श्री' तुम्हें मिलेगी। - पंडितजी ने इतना कह कर सब को कलेवा

करने की छुट्टी दे दी। और स्वयं 'रामकोटि' लिखने बैठे। पंडितजी ने गली में दो-तीन बार झाँक कर देखा, नागैया का कहीं पता-ठिकाना नहीं था।

[मध्याह्न]

बालक-बालिकाएँ दल बाँध कर पाठशाला की ओर चले। कोई-कोई अकेला भी आ रहा था। आज की 'श्री' और 'तारे' का रहस्य जानने के लिए सभी उत्सुक थे।

बालक-बालिकाओं के हाथों में कम सामान नहीं था। बाँये हाथ में तख्ती के साथ 'बाल-शिक्षक' नामक पुस्तक। दाँये हाथ में दाल-सेव चुड़वा तथा अन्य खाद्य सामग्री। इस सामग्री में से कुछ पाने की आशा बाँधे साथ-साथ चलने वाले चार-पाँच कुत्ते और दस-पन्द्रह कौए।

भिखारिन नागम्मा भीख माँग कर लाठी टेकती घर लौट रही थी। वह अस्सी की रही होगी। कुछ समय पूर्व ही नागम्मा ने अपना सिर मुँड़वा लिया था। इसीलिए बालक नारियल कह-कह कर मजाक करते थे। विद्या तथा विनय प्राप्त करने के लिए जो बालक-बालिकाएँ पाठशाला जा रहे थे, उन्हें देख कर नागम्मा ने अपना सिर ढँक लिया। वह तेजी से आगे बढ़ने लगी।

नागुलु और पानकालु ने भिखारिन को टोका - "हमें नारियल का टुकड़ा न दोगी?"

नागम्मा ने गालियों की बौछार शुरु की। ये गालियाँ किसी शब्द कोष में नहीं पाई जा सकतीं। बच्चे चिल्ला कर अपने काव्य-प्रेम का परिचय देने लगे।

नागम्मा, नागम्मा, नागम्मा, नागम्मा,
नागम्मा का सिर-नारियल का फल!

नागम्मा भी चुप नहीं रही। उसने ढेला, पत्थर जो हाथ आया, लड़कों पर फेकना शुरू किया। लड़के पाठशाला की ओर भाग खड़े हुए। पंडितजी ने रामकोटि लिखना बन्द करके पूछा-'बण्ड सुब्बैया कहाँ है?'

बण्ड सुब्बैया अनुपस्थित था। अतः उसका काम पानकालु को सौंपा गया। पानकालु को गुरु भक्ति-का अवसर मिला तो वह मारे खुशी के फूला न समाया। गुरुजी के लिए तमाखू लाने के लिए दौड़ा।

बालक एक-एक करके गुरुजी के सामने खड़े होने लगे। पंडितजी ने लड़कों का गृह-कार्य देखा। जब गृह-कार्य देख चुके तो जनार्दन और तिरुमलाचारी को अपने पास बुला कर प्रश्न किया-' सच-सच बताओ, आज की ' श्री ' किसे मिलनी चाहिए? '

डरते-डरते जनार्दन ने कहा - ' मुझे '

तिरुमलाचारी ने कहा-' मुझे। '

' अबे, तुझे ' श्री ' किस तरह मिल सकती है? तुझे सोता देख तेरी ' श्री ' तो जनार्दन हड़प कर गया। '

पंडितजी ने इतना कह कर जनार्दन की हथेली में कभी न मिटनेवाली ' श्री ' अंकित कर दी। तिरुमलाचारी से पूछा-' क्यों बे! तुझे भी ' श्री ' चाहिए? ' तिरुमलाचारी ने गर्दन हिलाकर अस्वीकार किया तो रंगम्मा के हाथ ने भी ' श्री ' का आधा आनन्द उठाया। अन्य लड़कों को छड़ी मारने का अधिकार तिरुमलाचारी को मिला।

पानकालु को मार से छुटकारा मिला। वह तमाखू ला कर पंडितजी का चुट्टा (चुरुट) बनाने लगा। जब चुट्टा बन चुका तो उसने वह पंडितजी के कर - कमलों में सौंप दिया। पंडितजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पूछा - ' तमाखू कहाँ से लाया? ' पानकालु ने अपने हस्त कौशल का परिचय देने के लिए कहा —

' हमारी दूकान से चुरा कर लाया हूँ गुरुजी! '

' माल कहाँ का है? '

' किष्टैया के बगीचे का। '

' अच्छा, लेकिन बंड सुब्बैया तो कुम्हडेवाले खेत की तमाखू लाता है। थोड़ी तुमने अपने लिए तो तमाखू नहीं बचा ली है? '

' नहीं गुरुजी! ' पानकालु उठ खड़ा हुआ और अपने कपड़े झाड़ने

लगा। पंडितजी ने चुट्टा अपने मुँह में पकड़ा। रेड्डी जी का लड़का घर से आग ले आया।

पानकालु पीतल का लोटा ले आया तो पंडितजी भोजन करने चले गये।

[सायंकाल]

पाठशाला के सब से छोटे लड़के बापुलु ने अन्दर झाँक कर हाथ से इशारा किया। इस इशारे का मतलब सभी विद्यार्थी तत्काल समझ गये। इशारे का मतलब था-पंडितजी पाठशाला में आ रहे हैं। पाठशाला में शान्ति छा गई।

गुरुजी लोटे के पानी से कुल्ला करके अन्दर आये। पानकालु ने चटाई साफ करके बिछा दी, और सिरहाने की ओर चटाई के नीचे घास जमा करके तकिया लगा दिया। पंडितजी ने चटाई पर जैसे ही अपना दुपट्टा बिछाया, सब लड़के घरों को चले गये और पंडितजी शीघ्र ही खर्राटे भरने लगे।

गाढ़ निद्रा में पंडितजी के पेट से ऐसी ध्वनि निकल रही थी जैसे कोई चरखा चल रहा हो। कुछ लोगों ने इस ध्वनि से अनुमान लगाया कि रेड्डीजी के घर धुनिया आया है, चलो अपनी रुई भी पिनवा लें, किन्तु रेड्डीजी के यहाँ रुई ले गये तो बहुत निराशा हुई।

थोड़ी देर बाद पंडितजी ने करवट बदली। इस बार एक विचित्र प्रकार की ध्वनि होने लगी।

रेड्डीजी के घर में दूध के बर्तन पर डाका डालने के लिए जो बिलाव आया था वह पंडितजी पर हमला कर बैठा। पंडितजी की नाक से निकलनेवाली विचित्र प्रकार की ध्वनि से अनुमान लगाया था कि उसका कोई प्रतिद्वन्दी आ गया है। संयोग से रेड्डीजी के घर पहरा देंने वाला विश्वासी कुत्ता घटना-स्थल पर पहुँच गया। कुत्ते को देख कर बिलाव ने छलाँग लगाई और दीवार पर जा बैठा। इधर कुत्ता पंडितजी के स्वर में स्वर मिला कर जोर-जोर से भोंकने लगा।

एक-एक करके विद्यार्थी पाठशाला में आने लगे। उन्होंने कुत्ता भगा दिया। जागते ही पंडितजी ने पूछा - 'सब लड़के आ गये ?'

पाठशाला का सरदार एल्लमंदा उठा। बोला बंड सुब्बैया, नत्ति नागुल्ल, उलक्कि पातालंगाड्डु, पर्वताल्लु, जनार्दनजी, रंगम्माजी, चुकम्मा सुब्बि ये सब अनुपस्थित हैं।'

पंडितजी ने इन बच्चों को पकड़ लाने का आदेश दिया। अबद्धाल्लु, सत्यम, गन्नैया आदि योद्धाओं को लेकर एल्लमंदा हमला करने चला।

इन लड़कों से जनार्दन के पिता ने कहा - 'जनार्दन ही नहीं मैं भी पाठशाला चलता हूँ। मुझे तुम्हारे गुरुजी की खबर लेनी है।'

बाल योद्धाओं को यह घोषणा बहुत अच्छी लगी, किन्तु अबद्धाल्लु बोला - 'ये बड़े लोग इसी तरह कहते हैं। पंडितजी के पास क्या जाता है ?'

वहाँ से लोग बंड सुब्बैया की खोज लगाते उसकी दूकान पर पहुँ दूकान पर बंड सुब्बैया के पिता गुरिवि सेट्टी बैठे थे। बालकों ने अपनी तथा बंड सुब्बैया की प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए पूछा - 'सुब्बि सेठ कहाँ है, जी ?'

'अरे ! मैं तो सोच रहा था गुरुजी ने दंड देने के लिए उसे पाठशाला में ही रोक लिया है। वह तो घर आया ही नहीं। अब तक उसने भोजन भी नहीं किया। तुम लोग उसका पता तो लगाओ जरा।'

सब लड़कों को इस कथन से आश्चर्य हुआ। सबने विचार-विमर्श के बाद निश्चय किया कि हो न हो सुब्बैया रेड्डीजी के बगीचे में मिलेगा। वे इस बगीचे में पहुँचे। बगीचे में माली नहीं था। कैरियाँ कुछ बड़ी हो रही थीं। सब लड़के आम के पेड़ पर चढ़ बैठे।

एल्लमंदा बोला – 'देखो, बंड सुब्बैय्या वहाँ है।' एक साथ कई लड़कों के मुँह से निकला – 'कहाँ ?'

एल्लमंदा ने उत्तर दिया – 'कुम्हड़े के खेत में देखो।'

सब लड़के बन्दरों की तरह पेड़ से नीचे उतर आये। झुक-झुक कर,

बैठ-बैठ कर कुछ दूर चले ! नाम तो कुम्हड़े का खेत है लेकिन उगाई जाती है तमाखू। गुरुभक्त बंड सुब्बैया चुन-चुनकर तामाखू के पत्ते तोड़ रहा था। एक साथ पाँच – छह लड़कों का बोझ ऊपर पड़ा तो वह घबरा गया। उसने सोचा माली ने हमला किया है। बंड सुब्बैया ने दूसरे क्षण ही ऐसा झटका दिया कि सब लड़के जमीन पर चारों खाने चित्त ! लड़कों ने उसे धमकी दी – 'हम लोग पंडितजी से कहेंगे।'

पंडितजी का नाम सुनते ही वह लड़कों के अधीन हो गया।

बंड सुब्बैया ने तमाखू के पत्ते ताड़ के पत्ते में बाँध लिये और वह भी उस दल में सम्मिलित हो गया। इन लोगों ने उलक्कि आदि अनुपस्थित रहने वाले विद्यार्थियों को अपने साथ लिया और फिर सबके सब पाठशाला

इन बच्चों के पहुँचते ही पंडितजी ने पढ़ाना बन्द किया। बंड सुब्बैया से तमाखू लेकर अनुपस्थित रहने वाले लड़कों को यथोचित दंड दिया।

सारे बालक महारानी के लिए उठ खड़े हुए। पहाड़े बोलने लगे। उसी समय गाँव के कई प्रतिष्ठित लोग चिट्ठी तथा दस्तावेज लिखाने के लिए आ पहुँचे। जब पंडितजी इन लोगों का काम कर चुके तो खड़े होकर

दीपं ज्योतिः परब्रह्म दीपं ज्योतिः परायणम्
दीपं हारतु मे पापं संध्यादीप, नमोस्तु ते।

सभी छात्रों ने यह श्लोक दुहराया। रेड्डी साहब के यहाँ बही–खाता लिखने का समय हो चुका था। सब बच्चे घर को चल दिये। कुछ लड़के बार-बार मुड़-मुड़ कर देख रहे थे कि जनार्दन को लिये उसके पिता अब तक आये या नहीं।

गुडिपाटि वेंकटचलम्

पातिव्रत्य की हत्या

उस वर्ष फसल अच्छी हुई थी, इसलिए वीरारेड्डी को गत वर्ष की अपेक्षा तीन हज़ार रुपये अधिक मिले। पूरे परिवार ने बड़ी खुशी से दुर्गा माता का उत्सव मनाया। वीरारेड्डी ने मद्रासी फैशन का एक चन्द्रहार अपनी पत्नी रंगाम्मा के लिए बनवाया। इस हार के लिए सुनार को पचास रुपये मजदूरी अधिक दी थी! अपनी पत्नी और बहन जनकम्मा के लिए बहुमूल्य रेशमी साड़ियाँ भी खरीदी थीं। दूध-दही के लिए एक अच्छी गाय ली गई। वीरारेड्डी नेल्लूर के मेले में प्रतिवर्ष जाता था। उसने इस वर्ष मेले में चलने के लिए पत्नी को भी विवश किया। स्त्रियाँ, स्वभावतः गाँव छोड़ कर शहर जाने से कतराती हैं। रंगम्मा कई बार इस मेले में जाने से इन्कार कर चुकी थी। उसके विचार में पीहर और ससुराल के दो गाँवों के अलावा संसार में तीसरा गाँव नहीं था। गाँव में रंगम्मा ने शहर की बहुत-सी दुर्घटनाओं के बारें में सुन रखा था। आये दिन चोरी-चपाटी, विधवा-विवाह, धोखा-धड़ी, मोटर-साइकिल की टक्करें, खून-खराबी आदि।

किसी तरह रंगम्मा मेले में जाने के लिए तैयार हुई। पति-पत्नी दोनों दस मील का कच्चा रास्ता पैदल पार करके सड़क के किनारे बस की प्रतीक्षा में खड़े थे। वीरारेड्डी के लिए शहर आना-जाना कोई नई बात नहीं थी, किन्तु रंगम्मा पहली बार किसी नगर में जा रही थी। उसका मन उत्साह और उमंगों से भरा था। भर-भर की आवाज करती मोटर वहाँ आई और खड़ी हो गई। औरत को मोटर में सवार होता देखा तो ड्राइवर ने कुछ नम्रता दिखाई। औरत के लिए अपने पास की सीट खाली कराई। रंगम्मा ने आदर के साथ पति की ओर देखा, जैसे कह रही हो, आप इस सीट

पर बैठिये। वीरारेड्डी उस सीट की ओर बढ़ा तो कंडक्टर ने उपेक्षा पूर्वक कहा – 'कहाँ चले आ रहे हो? पीछे चले जाओ। तुम्हारी औरत को कोई उठा नहीं ले जाएगा।'

रंगम्मा की धमनियों में रेड्डियों का खून खौल उठा। उसने मन ही मन सोचा यदि नौकर या अन्य कोई व्यक्ति मेरे पति का इस तरह अपमान करता, तो मेरा पति उसे जीवित न छोड़ता। इस कंडक्टर का भी वह खून पी जाएगा। आश्चर्य, उसका पति कंधे पर अपनी गठरी रखे दुम दबा कर भागनेवाले कुत्ते की तरह मोटर के पिछले हिस्से में स्थान पाने के लिए चल दिया। रंगम्मा की आँखों में खून उतर आया। शत्रुओं में फँसी हुई वीर वनिता के समान दिखाई दे रही थी वह। रंगम्मा के तिरस्कार भरे नेत्रों से ड्राइवर सहम गया। कुछ व्यंग के स्वर में धीरे से बोला - 'संभवतः तुम अपने पति के बिना मोटर पर सवार नहीं होना चाहती हो।'

फिर ड्राइवर ने रंगम्मा के पति के लिए भी जगह खाली कराई। पति-पत्नी दोनों सामने की ओर बैठे।

रंगम्मा ने पहली बार देखा कि इतने सारे लोगों के सामने उसका कंधा पति के कंधे से सटा हुआ है। वह मारे लज्जा के गड़ी जा रही थी। उसकी व्याकुलता भी देखने लायक थी। आँखें लज्जा से झुक गईं। दोनों हाथों को जाँघों के बीच समेट कर वह चुपचाप बैठ गई। पों-पों करती मोटर चल दी। रंगम्मा नें अनुभव किया कि उसके नीचे की जगह सरकती जा रही है। वह चौंक पड़ी। उसने पति से पूछा - 'यह घिर-घिर की आवाज कैसी है? मोटर इतनी तेज कैसे चल रही है?' पति ने उत्तर दिया - 'मोटर को पहिये जो लगे हुए हैं!' पति भी कुछ अधिक नहीं जानता था। क्या उत्तर देता?

थोड़ी देर बाद रंगम्मा का ध्यान ड्राइवर की ओर गया। मोटर की गति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। जादूगर की भाँति ड्राइवर शैतान जैसी मोटर को दौड़ाता जा रहा है। सामने से एक बैलगाड़ी आती दिखाई दी।

रंगम्मा ने सोचा बैलगाड़ी मोटर से टकरा जाएगी। वह तत्काल ड्राइवर के कंधे पर हाथ रख कर चिल्लाई - 'रोक दो मोटर।'

मोटर के सभी यात्री खिला खिलाकर हँस पड़े। ड्राइवर भी अपनी हँसी नहीं रोक सका। मोटर बैलगाड़ी से बच कर आगे बढ़ी। रंगम्मा ने पीछे की ओर देखा। बैलागाड़ी धूल में दौड़ी जा रही है। रंगम्मा चकित रह गई। यात्रियों के हँसने से उसे लज्जा भी कम नहीं हुई। वह एक धनी-मानी रेड्डी-वंश की पुत्री है। उसके पिता लक्ष्मारेड्डी इस वंश के मुखिया माने जाते हैं। गाँव के सभी लोग रंगम्मा के निर्मल और पवित्र आचरण की चर्चा करते हैं, किन्तु मोटर के यात्रियों ने उसकी तो क्या उसके पति की भी परवाह नहीं की। उसके और उसके पति के प्राण इस समय ड्राइवर के हाथ में थे - कैसी विडंबना ....।

मोटर रुकी। लंबी पगड़ी और काला कोट पहने हुए एक बूढ़ा आदमी सामने आ खड़ा हुआ। बड़ी-बड़ी मूँछें थीं उसके। उसने कहा - 'मेरी रोज की सीट दो।'

कंडक्टर ने वीरारेड्डी से कहा - 'तुम पीछे चले जाओ।'

वीरारेड्डी चुपचाप उतरने लगा तो रंगम्मा भी उठ खड़ी हुई।

बहनजी, तुम्हारे लिए पीछे जगह नहीं है। तुम यहीं बैठो, ड्राइवर ने कहा।

रंगम्मा हिली-डुली नहीं। यात्री उत्सुकता से उसकी ओर देख रहे थे। रंगम्मा लज्जा से गड़ी जा रही थी। सिर ऊपर नहीं उठ रहा था। कई क्षण बीत गये। मोटर खड़ी रही।

'तुम बस पर चढ़ो' वीरारेड्डी ने कहा। पतिदेवकी अनुचरी रंगम्मा अपनी सीट पर जा बैठी। वीरारेड्डी पीछे की सीट पर बैठने के लिए आगे बढ़ा।

'गठरी, लाठी, कैसा विचित्र मनुष्य है यह!'

'गँवार है गँवार!'

सब यात्री हँस पड़े।

रंगम्मा का मस्तक चकराने लगा। खून जम-सा-गया। वह पीछे की ओर घूम गई। कहना चाहती थी-अरे, अंट-संट मत बको। क्या समझ रखा है हम लोगों को! हम लोग तुम्हारे दाँत तोड़ देंगे!

न जाने कितनी पीढ़ियों से रेड्डी-रमणी अपनी आज्ञा का विरोध सहन नहीं करती आ रही है। इसीलिए रंगम्मा प्रयत्न करके भी अपना रक्त ठंडा नहीं रख सकी। उसने पति की ओर देखा। कौरवों की ध्यूत-सभा में द्रौपदी जिस तरह लज्जा के मारे मरी जा रही थी, वही हाल रंगम्मा का था। लज्जित द्रौपदी की भाँति उसे अपनी स्थिति पर क्रोध आ रहा था। उसने सिर झुका लिया। मोटर आगे बढ़ी। रंगम्मा ने अनुभव किया-इस संसार में दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उसने अपनी स्थिति के सम्बन्ध में अनुभव किया, जैसे वह उस स्नेह-पालित बछड़े के समान है, जिसे अचानक हिंसक पशुओं से भरे जंगल में छोड़ दिया गया हो। रंगम्मा आँख बन्द करके निर्विकार बैठी रह गई।

मोटर रुकी। रंगम्मा ने इस आशा से आँख खोलकर देखा कि संभवत: नेल्लूर आ गया है। किन्तु उसकी संभावना ठीक नहीं निकली। लोग उतर कर इधर-उधर टहलने लगे। यात्रियों को कुछ सुविधा मिले इसीलिए मोटर ठहराई गई थी। रंगम्मा उतरने लगी तो उसका आँचल कीले में फँस गया। पास कें खड़े हुए एक व्यक्ति ने आँचल निकाला। आँचल निकाल कर वह व्यक्ति हँस पड़ा। उसे हँसता देख, कुछ अन्य यात्री भी हँस दिये। रंगम्मा का स्त्रीत्व आहत हो गया। वह जल्दी-जल्दी पास ही खड़े इमली के पेड़ के नीचे आड़ में जा खड़ी हुई। वीरारड्डी भी वहाँ आ गया। रंगम्मा बड़ी दीनता से बोली-'हम लोगों को अब घर चलना चाहिए!'

'क्यों?' वीरारेड्डी ने पूछा।

'यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'नेल्लूर बहुत पसंद आएगा।'

'नहीं।'

'अब हम घर कैसे जा सकते हैं?'

'पैदल।'

'चालीस मील है यहाँ से अपना घर! जानती हो?'

'कोई बात नहीं!'

'रास्ते में रात हो जाएगी।'

'हो जाने दीजिये।'

'रास्ते में चोर - लुटेरे मिल सकते हैं।'

'हमें उनका डर नहीं!'

'यह बात है तो तुम आई ही क्यों? अकारण ही लौटना चाहती हो। औरतों को साथ लाने में यही बखेड़ा है!' खीज भरे स्वर में वीरारेड्डी ने कहा।

वीरारेड्डी नेल्लूर के मेले में सम्मिलित हुए बिना नहीं रह सकता। साल भर मेहनत करके एक दिन तो आनन्द करता है।

पति उसके प्रस्ताव से दुःखित हुआ है, यह जानकर रंगम्मा चुप हो गई। नारी न जाने कब से अपने पति की आज्ञा को पूरा करना अपना कर्त्तव्य मानती आई है। पति की इच्छा चुपचाप पूरा करने के अतिरिक्त उसके पास दूसरा उपाय क्या है?

मोटर फिर चल पड़ी। हार्न की आवाज़, और वेग से मोटर का दौड़ना, रंगम्मा के लिए सब कुछ विचित्र था। उसने अपने सहज भोलेपन के साथ ड्राइवर से पूछा - 'यह कौन सा गाँव आ रहा है भैया? मोटर कैसी तेज चल रही है! एक बार पों-पों बजाओ न।'

रंगम्मा अपने आसपास बैठे यात्रियों को भूल कर स्वाभाविक भोलेपन के साथ कहती गई —

'मोटर चलाने के लिए क्या करते हैं? इसमें आग तो कहीं दिखाई नहीं देती, फिर भी किसी चीज के जलने की दुर्गन्ध आ रही है! कितने रुपये मिलते हैं? तुम बड़े हो या वकील?'

मोटर रुकी तो वीरारेड्डी ने मोटर से उतर कर रंगम्मा को आवाज़ दी। पति की आवाज सुनकर रंगम्मा ने आँखे खोलकर देखा। वह भी मोटर से नीचे आ गई। उसनें देखा ड्राइवर कितनी अच्छी धोतीं पहने है, उसके कपड़े कितने साफ़-सुथरे हैं। मूँछें कितनी सुन्दरता से काटी गई है। वह ड्राइवर किस चतुरता से मोटर चलाता है। इन सब बातों पर वह चकित रह गई। उसने अपने पति की ओर देखा। पति कितना भोला-भाला है, कितने मोटे कपड़े हैं उसके? पति की असहाय स्थिति पर उसे दया आ गई। गहरी साँस लेकर वह वीरारेड्डी के पीछे हो ली।

गाड़ियाँ, आने-जाने वाले लोग, दूकानें, इन सब चीजों से पूरा शहर खचाखच भरा है। यहाँ का प्रत्येक निवासी, प्रत्येक दूकानदार और पुलिस का सिपाही, फकीर, गाड़ीवान सभी तो बड़े हैं। लोग किस तरह अंग्रेजी- तेलुगु और हिन्दी बोल रहे हैं! सभी लोग प्रसन्न दिखाई देते हैं। रंगम्मा ने अनुभव किया कि नेल्लूर का मामूली से मामूली आदमी भी उसके पति से बड़ा है।

रगम्मा ने बड़ी जिज्ञासा से पूछा-' लोग हमें इस नगर में रहने देंगे?'

' क्यों नहीं? क्यों नहीं रहने देंगे? पगली देख तो यहाँ कितने लोग रहते हैं! ये लोग भी तो हमारी ही तरह मनुष्य हैं।'

' तब तो हम लोग भी इसी नगर में....!'

रंगम्मा को इस कल्पना से रोमांच हो आया कि वह घर के दरवाजे पर बैठी बिजली का प्रकाश देखते हुए अपना जी बहला सकेगी। उसका कुतूहल बढ़ता गया।

' यहाँ के लोग किस तरह जीवन व्यतीत करते हैं?'

' जैसे हमारे गाँव के लोग करते हैं।'

' यहाँ खेती-बाड़ी कौन करता है?'

' खेती-बाड़ी की जरूरत क्या है? यहाँ लोगों को काम मिल जाता है। काम करके लोग जीवन-यापन करते हैं।

' मुझे तो कोई काम आता नहीं है।'

रंगम्मा की यह धारणा बहुत दृढ़ हो गई कि उसका पति खेती के अतिरिक्त कोई दूसरा काम नहीं जानता। रंगम्मा अपने पति को साहसी और सर्वश्रेष्ठ मनुष्य समझती रही है। गाँव के लोग उसके पति का सम्मान करते हैं। नौकर-चाकर उसके पति के आगे थर-थर काँपते हैं। किन्तु उसका वही पति, यहाँ भीड़ में, सड़क पर या मोटर में कितना असहाय बन गया है। बाजार में जब पति-पत्नी कपड़ा खरीदने गये, तो एक कपड़े की दूकान पर रेशमी कपड़े का भाव-ताव होने लगा। दूकानदार ने एक रुपया गज कहा तो वीरारेड्डी ने चार आने गज भाव लगाया। इस पर दूकानदार ने व्यंग से कहा-'कभी रेशमी कपड़ा देखा है?' रंगम्मा ने तब अनुभव किया रेड्डी वंश के एक प्रतापी सदस्य का अपमान हो रहा है।

होटल में जाने पर रंगम्मा ने देखा कि सभी लोगों को टेबुल के पास कुर्सियों पर बैठाया गया है, किन्तु उसके प्राणेश्वर को एक कोने में जमीन पर जगह दी गई। वहीं उसे नाश्ता दिया गया। रंगम्मा ने अनुभव किया विवाह के अवसर पर उसका पति फूलों से सजे रथ पर आया था। तब उसके पीहर के लोगों ने उसकी कीर्ति का बखान किया था। वास्तव में रंगम्मा को धोखा दिया गया था। रंगम्मा को यह याद ही नहीं रहा कि जिन दिनों विवाह हुआ था, वीरारेड्डी की छाती चालीस इंच चौड़ी थी। उसकी आँखों में कितनी सरलता थी। खेल-खेल में वह दस आदमियों को पछाड़ देता था। वह सच्चरित्र होने के साथ-साथ प्राणियों पर कितनी दया करता था। यहाँ नगर में उसने मुँह में पान दबाये धीरे-धीरे सिगरेट का धुआँ छोड़ने वाले नायडू को तिरछी नज़र से अपनी ओर ताकते देख कर मन ही मन सोचा – नायडू की पत्नी कितनी सौभाग्यशाली है।

रंगम्मा की आँखों के सामने उसके गाँव का जीवन घूम गया। ग्राम-वासी उसके प्रति कितनी श्रद्धा रखते हैं, किन्तु यहाँ उसे कोई जानता तक नहीं। इस शहर का एक व्यक्ति भी तो यह नहीं जानता कि रंगम्मा बहुत पतिव्रता स्त्री है, सास-ससुर पर उसकी अगाध भक्ति है, व्रत-उद्यापन

में उसकी दृढ़निष्ठा है और उसके पास दो सौ एकड़ जमीन है। हाँ, नगर का प्रत्येक व्यक्ति केवल उसके सौंदर्य पर मुग्ध दिखाई देता है। रंगम्मा ने पहली बार यह अनुभव किया कि उसमें आकर्षण की शक्ति हैं। एक–दो बार उसने भी देखने वालों की आँख से आँख मिलाकर देखा तो एक प्रकार की पुलक-सी हुई, उसके होठों पर मुस्कान नाचने लगी। वह अपने पति के पीछे इस तरह चलने लगी, जैसे अहल्या गौतम के पीछे चलती थी।

[३]

अचानक बत्तियाँ जल उठीं। इंपीरियल सिनेमा घर का पहला शो समाप्त हो गया। दो-ढाई घंटे तक रंगम्मा खेल की नायिका के सुख-दुःख में डूबी रही। खेल समाप्त होते ही वह आँखें मलती बाहर आई। उसे आरंभ में इस बात पर आश्चर्य हुआ था कि सिनेमा-घर की बत्तियाँ एक साथ जलीं और एक साथ बन्द हो गईं! पर्दे पर किस तरह ऐसी तस्वीरें नाचती हैं! किन्तु कुछ ही देर बाद वह खेल में तल्लीन हो गई थी। उसने अनुभव किया जैसे चल-चित्र में दिखाई देनेवाली मोटरें, बड़े-बड़े बँगले, नहर, बाग बगीचे, रेल-गाड़ी, सुन्दर युवतियाँ सब नेल्लूर नगर से संबन्धित हैं।

जब धोखा देकर चोर नायिका को उठा कर ले चला तो रंगम्मा बीच में ही चिल्ला उठी - 'चोर के हाथ से छुरा छीन लो, और उसका यह छुरा उसी की छाती में घुसा दो।' जिस समय नायक ने अपनी प्रेमिका को आलिंगन में जकड़ा, रंगम्मा का रोम-रोम पुलकित हो गया। उसने अनुभव किया था कि वह भी आलिंगन में बँधी हुई है। खेल समाप्त होने पर पति ने चलने के लिए कहा था तो वह चौंक पड़ी थी। उसने प्रश्न किया....

'कहाँ चलना होगा ?'

'अब नाटक देखने चलेंगे!' रंगम्मा के पति ने उत्तर दिया था।

[४]

रात में एक बजे रंगम्मा अपने पति के साथ नाटक - घर से बाहर

बीस वर्ष की आयु में रंगम्मा पहली बार नगर में आई थी। न जाने फिर कब इस शहर में आने का सौभाग्य प्राप्त हो! गाँव लौटते ही उसे देहाती जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। उसनें जो नाटक देखा था, उसमें भगवान कृष्ण की कहानी थी। उस नाटक में जो अभिनेता कृष्ण बना था, उसका स्मरण करते ही रंगम्मा का हृदय भारी हो गया। पाँव काँपने लगे। रंगम्मा बचपन से भगवान कृष्ण को अपना आराध्य देवता मानती आई थी। उसने कभी कृष्ण को अपना पति माना था। कृष्ण के चित्र के सामने न जाने कितनी बार उसने अपने मन की गुप्त बात प्रकट की थी। उसने पोतन्ना की भागवत के कई अंश और क्षेत्रय्या के पद याद कर लिये थे। कृष्ण के संमुख रंगम्मा अपनी इच्छाएँ खोल कर रख देती थी। आज नाटक में जो अभिनेता कृष्ण बना हुआ था, वह रंगम्मा को आराध्य दिखाई दिया। इससे पहले जब कभी उसका पति रात मे घर आता, रगम्मा उसे कृष्ण मानकर आँख बन्द कर लेती थी और इस तरह अपने को धोखा दिया करती थी।

कृष्ण रसिक शिरोमणि हैं, वीरों के वीर हैं, करुणा के सागर हैं। वे रंगम्मा का तिरस्कार नहीं करेंगे। उसने नाटक में देखा था कि कृष्ण ने फटी-फटी आँखों वाली सत्यभामा को प्रेम के साथ देखा था। कृष्ण ने सत्यभामा की गालियाँ सही थीं। तब क्या भगवान कृष्ण उसका अपमान करेंगे! रंगम्मा इतना तो जानती थी कि एक मनुष्य कृष्ण का अभिनय कर रहा है, वह वास्तविक कृष्ण नहीं है किन्तु वह अपना भ्रम दूर करना नहीं चाहती थी। भ्रम टूटने पर सारा माधुर्य, सारी भावुकता समाप्त हो जाती, इसीलिए वह अभिनेता को कृष्ण समझ रही थी, उसने कृष्ण को नमस्कार किया, कृष्ण ने, हाँ कृष्ण ने ही उसकी ओर देखा है, उसी के लिए तो कृष्ण ने गीत गाया है। कृष्ण नें इतनी औरतों में उसे पहचान लिया है। गाँव के लोगों से उसका क्या संबन्ध है? वह कृष्ण के चरणों में आश्रय लेगी। मानों उस समय मीरा रंगम्मा के हृदय में विराजमान हो गई थी।

उस दिन रंगम्मा के हृदय में क्रान्ति मच गई। प्राचीन गौरव का

अभिमान लुप्त हो गया था और नये जीवन का आनन्द उमड़ पड़ा था। आज तक रंगम्मा एक छोटे से घोंसले में पंख समेटे बैठी थी, किन्तु आज वह पंख खोल कर अन्तहीन आकाश में उड़ने के लिए प्रस्तुत थी।

नये जीवन का यह उद्वेग उसके अभिनेता कृष्ण में मूर्तिमान हुआ। उसके लिए हृदय कमल पर वह कृष्ण विभिन्न रूपों में नृत्य कर रहा था। इस जगत से रंगम्मा का कोई संबन्ध नहीं था। कृष्ण साक्षात् परमेश्वर हैं, वे भक्तवत्सल हैं। कुछ भी हो, भगवान कृष्ण की सेवा में गये बिना उद्धार नहीं है। रंगम्मा अपनी जगह से उठ खड़ी हुई और रंगमंच पर पहुँच कर बगल के पर्दे की आड़ में खड़ी हो अन्दर ताकने लगी।

भगवान कृष्ण वैकुण्ठ में रहते हैं। उनकी नगरी कितनी सुन्दर होगी! वे वहाँ लक्ष्मी के साथ विहार करते होंगे!

रंग-मंच के नेपथ्य में अनेक कक्ष दिखाई दिये। उन कक्षों में दर्पण लगे हुए थे। रंगम्मा ने सोचा कृष्ण इन्हीं कक्षों में तो गोपियों के साथ शयन करते होंगे। यदि वह भी चुपचाप अन्दर चली जाए तो कृष्ण के निकट पहुँच जाएगी, इस कल्पना से ही रंगम्मा को रोमांच हो आया।

रंगम्मा का हृदय कह रहा था - 'कृष्ण तेरी प्रतीक्षा में यमुना के किनारे बिरहा गा रहे हैं। चल, शीघ्रता कर।' किन्तु दूसरें क्षण उसके मन में विचार आया - मेरे पति का क्या होगा?

इतने में वीरारेड्डी ने उसे आवाज़ दी। वह आवाज़ सुनकर भी चुप रही। तब वीरारेड्डी गरज कर बोला - 'तुम्हारा चन्द्रहार कहाँ गया?' रंगम्मा ने पति की ओर नेत्र उठाये। उसने उल्टा प्रश्न किया। 'कैसा चन्द्रहार?'

'सोने का चन्द्रहार। अभी तो तुम्हारे गले में था।'

रंगम्मा कल्पना–लोक से धरती पर उतर आई। बोली - 'क्या चीज नहीं है? क्या कह रहे थे?'

वीरारेड्डी को आश्चर्य हुआ! 'तुम्हें कुछ पता नहीं? जरा अपना गला तो देखो।'

'कहीं गिर गया होगा?'

'पाँच सौ रुपये का हार कहाँ गिर गया?'

'मैं कुछ नहीं जानती। सच कहती हूँ, कुछ भी नहीं जानती।'

'अपने शरीर की सुध-बुध भी खो बैठी। चल अभागिन कहींकी!'

रंगम्मा को कुछ भी सुनाई नहीं दिया। कुछ सुनने की स्थिति में उसका मन था भी नहीं। यन्त्र चालित सवारी की तरह वह अपने पति के पीछे चलने लगी। मार्ग के दोनों ओर पंक्ति-बद्ध बड़े-बड़े भवन, मार्ग पर चलने वाली गाड़ियाँ, आने-जानेवाले मनुष्य सब कुछ नदी के प्रवाह की भाँति बहे चले जा रहे हैं। रंगम्मा के पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। वह किसी अनिर्वचनीय सुख के लिए छटपटा रही थी। पति-पत्नी नाट्यशाला की बगल में जा खड़े हुए। वीरारेड्डी ने कहा - 'तुम यहीं खड़ी रहो, मैं चन्द्रहार की खोज करता हूँ।'

रंगम्मा को वहाँ खड़ा करके वीरारेड्डी चन्द्रहार ढूँढ़ने लगा।

[५]

'किससे मिलना चाहती हो?'

रंगम्मा ने घूम कर देखा। कोई आदमी उससे पूछ रहा है। रंगम्मा ने सोचा - मैं रंग-मंच के पास हूँ और इस रंग-मच के नेपथ्य में ही तो उसके कृष्ण हैं। यदि इस समय कृष्ण बाहर आ जाएँ तो? उसे इस तरह अँधेरे में खड़ा देख कर वे क्या करेंगे? रंगम्मा का धड़कने लगा।

उसने मन ही मन निश्चय किया, किन्तु इस निश्चय पर उसे स्वयं भय लगने लगा।

'कृष्ण से मिलना चाहती हूँ।'

'कृष्ण! कौन कृष्ण?' उस आदमी ने आश्चर्य से पूछा।

रंगम्मा ने सोचा - कितना मूर्ख है? कृष्ण को नहीं जानता? फिर उसके मन में आया, संभवतः कृष्ण का अभिनय करने वाला किसी दूसरे नाम से सम्बोधित किया जाता होगा। यह सोच कर बोली - 'जिसने अभी कृष्ण का अभिनय किया था उसी से मिलना चाहती हूँ।'

'तो तुम नारायण से मिलना चाहती हो?'

रंगम्मा चुप रही।

उस आदमी ने दूसरा प्रश्न किया - 'उसे जानती हो?'

रंगम्मा उसे अच्छी तरह जानती है। रंगम्मा ने अभी उत्तर नहीं दिया था कि वह आदमी बोला 'इस ओर आओ।'

रंगम्मा के पाँव काँपने लगे। क्या सचमुच कृष्ण के दर्शन होने जा रहे हैं? और इसी समय?

'यहाँ खड़ी रहो' - उस आदमी ने रंगम्मा को आदेश दिया। वह स्वयं भीतर चला गया। रंगम्मा ने चारों ओर दृष्टि डाली। रंगमंच के भीतरी भाग में रस्से, पर्दे, अन्धकार। उसने सोचा यह क्या है? क्या कृष्ण यहीं रहते हैं? फिर उसने स्वयं उत्तर दिया, नहीं कृष्ण ऐसी जगह नहीं रह सकते। उससे कुछ भूल हुई है। फिर उसने मन में सोचा, यदि कृष्ण उसके सामने आ खड़े हों तो वह क्या कहेगी? वह उनके चरणों पर गिर कर आँसुओं से उन्हें धो डालेगी। इसीसे वह अपने को धन्य मानेगी। उसके बाद?....कृष्ण के मुख कमल की ओर देख कर.... एक बार....।

'अरे भाई, तुम्हारी खोज करता हुआ कोई आया है।'

'कौन है रे, वेंकटराम तो नहीं आया है? मैंने उससे चार आने लिए थे। इन चार आनों के लिए वह मेरी जान खाये जा रहा है!'

'अबे नहीं, कोई आदमी नहीं है।' गोपिका है, गोपिका! बाहर जाकर देख तो सही।'

रंगम्मा को ये बातें ज्यों की त्यों सुनाई दे रही थीं; किन्तु जैसे उसके कान बन्द थे।

आ रहे हैं, कृष्ण आ रहे हैं। रंगम्मा ने मारे लज्जा के मुँह मोड़ लिया और एक कोने में सिमट गई। उसका पूरा शरीर काँप रहा था। कृष्ण का अभिनय करनेवाला नटराज सोंपल्लि नारायणराव वहाँ आ गया। उसने पीताम्बर खोल दिया था, किन्तु मुँह का रंग नहीं धोया था। लाल

रंग से रंगे होठों में बीड़ी थी और धीरे-धीरे बीड़ी का धुआँ बाहर निकल रहा था।

'कौन हो तुम! ... बात क्या है? ... बोलती क्यों नहीं? तुम कौन हो?'

रंगम्मा का स्वप्न भंग हो रहा था। उसे वास्तविकता का ज्ञान होने लगा। उसके मन में आया, संभवत: कृष्ण का अभिनय करनेवाला किसी दूसरे नाम से संबोधित किया जाता होगा।

किन्तु जब अभिनेता प्रश्न कर रहा है, तो उसे उत्तर देना ही होगा। वह यहाँ आई ही क्यों?

'आपने अभी बहुत अच्छा गाया था।' आगे क्या कहना चाहिए रंगम्मा को सूझा ही नहीं। चकित और भीत मृगी की भाँति वह इधर-उधर ताकने लगी।'

'किस गाँव की रहने वाली हो? तुम्हारा परिचय क्या है?'

रंगम्मा ने कोई उत्तर नहीं दिया। क्या यही कृष्ण है? क्या और भीतर चल कर देखा जाए? रंगम्मा का मन विकल होने लगा। यत्न करके उसने साहस बटोरा-'आपके दर्शन करने आयी हूँ।'

'इधर आओ, बैठो।'

'मुझे जाना चाहिए।' रंगम्मा ने कहा।

'इतनी जल्दी!'

'हाँ, वे मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।'

'कौन? वे कौन? कहाँ हैं वे? .... रहने दो .... अभी जा सकती हो।'

रंगमंच पर जलनेवाली बत्तियों के प्रकाश में लज्जा के भार से झुकी उस नारी की पतली कमर, कपोलों की स्निग्धता और सुन्दर केश-राशि ने अभिनेता को आकर्षित किया। 'आओ'-कह कर अभिनेता रंगम्मा के निकट आया। रंगम्मा पीछे हट गई। अभिनेता ने सोचा, यह युवती लौट रही है। इसीलिए उसने हँसते हुए रंगम्मा की भुजा पकड़ ली और उसे

अपनी ओर खींच लिया।

उफ़ यह क्या? यह तो असह्य है! यह कैसा कृष्ण है? यह करने क्या जा रहा है?

'ठहरिये, मेरी बात तो सुनिये।'

'मेरी खोज में आई हो न! फिर इतनी जल्दी क्या है? आओ।'

'आप भूल रहे हैं। मुझे छोड़ दीजिये।'

रंगम्मा का माथा शराब की बू से फटा पड़ रहा था। इतने में अभिनेता ने उसे अपने पास खींचा। पह पसीना, वह दुर्गंध, मैल, बीड़ी की बू, विकट हास, जानवर की आँखें! रंगम्मा सहन नहीं कर सकी। उसे वीरारेड्डी का स्मरण हो आया। उसने सोचा वह चन्द्रहार ढूँढ़ रहा होगा? उसे स्थान पर न पाकर उसका पति कितना घबरा रहा होगा? वीरारेड्डी की आँखों में सदैव दया का भाव रहता है। उसने आज तक भूल से भी पत्नी का मन नहीं दुखाया। रंगम्मा को अपने पति की उदारता, सज्जनता और दया स्मरण हो आई। उसका पूरा शरीर काँप रहा है। इधर वह अभिनेता शैतान की तरह उसे अपनी ओर खींचता जा रहा है।

'रेड्डी जी, वीरारेड्डी जी!'

आज रंगम्मा ने जीवन में पहली बार पति को नाम लेकर पुकारा!

भीतर से कुछ आहट सुनाई देते ही अभिनेता पुकारा - ' कोई बात नहीं, तुम यहाँ आई किसलिए थी। मेरे लिए यहाँ आई और अब यह अभिनय कर रही हो। यदि तेरा पति सुन भी लेगा तो मेरा क्या बिगड सकता है? तुम्हीं तो मेरी खोज में आई हो। भूल तुमने की है।'

रंगम्मा की रही सही आशा जाती रही। वह अपने पति से क्या कहेगी? उसका हृदय विषादमग्न हो गया। पति उसे गालियाँ देंगे? उसे छोड़ देंगे, नहीं, नहीं - किन्तु यह शैतान, उफ़! यह कितना अनर्थ है। इसे मैं कैसे सहन करूँगी? वह छटपटानें लगी। उसने अभिनेता पर लात से प्रहार किया, किन्तु....

उसी रंगमंच पर द्रौपदी की मान रक्षा के लिए न जाने कितनी बार कृष्ण आये थे। हरिश्चन्द्र के सत्य व्रत से प्रसन्न नारायण भी वहाँ कई बार प्रकट हो चुके थे, किन्तु आज रंगम्मा के लिए सारे देवता आँख-कान बन्द किये हुए थे। जिन भगवान पर विश्वास करके रंगम्मा रंगमंच पर चली आई, उसी भगवान का अभिनय करनेवाला व्यक्ति उसके साथ क्या करने जा रहा है? क्या भगवान को रंगम्मा का आर्त्तनाद सुनाई नहीं दे रहा है? संभवतः वे उस समय लक्ष्मी के साथ वार्तालाप में संलग्न हों! संभवतः वे गन्धर्वों का संगीत सुन आँखे बन्द किये, आनन्द में निमग्न हों! यह भी हो सकता है कि इन्द्र का स्वार्थ भरा स्तोत्र सुनकर वे फूले न समा रहे हों?

'मुझे छोड दीजिए। आपके पाँव पड़ती हूँ। मैं मूर्ख हूँ। मुझे छोड़ दीजिए। मैं इस कार्य के लिए यहाँ नहीं आई हूँ। क्या मेरी रक्षा करनेवाला यहाँ कोई नहीं है?'

असहाय रंगम्मा की प्रार्थना सुनने के लिए सचमुच वहाँ कोई नहीं था। अगल-बगल के पर्दों पर लटकनेवाले चित्रों में सरस्वती और पार्वती इस अन्याय को चुपचाप देख रही थीं। रंगम्मा के किसी आराध्य देंव ने रक्षा नहीं की।

शहरी सभ्यता के हाथों ग्रामीण रंगम्मा के पातिव्रत्य की हत्या हो ही गई।

त्रिपुरनेनि गोपीचन्द

मिट्टी

बूढा जोगैया लाठी टेकता-टेकता जामुन के उस पेड़ की छाया में आ खड़ा हुआ जो नाले के किनारे पर था। सूरज की किरणों से बचने के लिए उसने माथे पर हथेली रखी और फिर खेत पर दृष्टि डाली। खेत की मेंड पर खड़े बबूल के पेड़ों से वह चिरपरिचित है। इन बबूल के पेड़ों में बहुत से पेड़ों की आयु वही है जो जोगैया की है। ये पेड़ जोगैया के साथ-साथ बढ़ते रहे हैं। कुछ दिन हुए जोगैया ने हल बनवाने के लिए दो पेड़ कटवाये थे। उन कटे पेड़ों के रिक्त स्थान को देखकर जोगैया को अनुभव हुआ जैसे उसके दो बेटे जाते रहे हैं।

लम्बी सांस लेकर जोगैया ने जामुन की छाया में अपना अंगोछा बिछाया और फिर उस अंगोछे पर वह बैठ गया। उसका बड़ा बेटा नरसैया खेत का काम देखता है, दूसरा बेटा कपड़े की दूकान पर है और तीसरा बेटा वेंकट सुब्बैया अंग्रेजी पढ़ता है। दो बेटियां हैं। पाँचों बेटे-बेटी जोगैया को प्यार करते हैं और बहुत मानते हैं।

जोगैया अपने खेत को सन्तान से अधिक प्यार करता है। खेत को देखे बिना उसकी आँखों में नींद कहाँ? जोगैया चाहता है कि उसके तीनों बेटे खेत का काम करें। उसका विश्वास है कि धरती का प्रत्येक मनुष्य खेती करने के लिए जन्म लेता है। इस विश्वास के कारण जोगैया को यह बात पसंद नहीं है कि उसका दूसरा बेटा कपड़े की दूकान पर काम करे। वह प्रायः कहता है कि उसका मझला लड़का बहुत चतुर है किन्तु अपनी पत्नी की बात मानकर निजी धन्दे को भूल बैठा है।

जोगैया के पास सौ एकड़ भूमि है। इस भूमि का अधिकांश भाग उसने

स्वयं लिया है। इसीलिए उसे खेती से इतना लगाव है। वह अपनी जमीन को प्राणों से अधिक प्यार करता है। एक बार कुछ विरोधी लोगों ने जोगैया के खेत में आने वाले पानी में रुकावट डाली थी। दीवार खड़ी करके पानी रोक लिया था। जोगैया बूढ़ा है फिर भी उसके साहस में कमी नहीं आई है। उसने प्राणों की परवाह किये बिना वह दीवार तोड़ डाली थी और बहुत समय तक लाठी लिए दीवार के पास खड़ा रहा, जिससे फिर कोई दीवार न खड़ी कर दे। उस दिन जोगैया के क्रोध को देख कर पूरा गाँव काँप उठा था। जब पानी खेत में आया और खेत की जमीन में पड़नेवाली दरारों ने तृप्त होकर पानी पिया तो जोगैया ने अनुभव किया, जैसे माँ अपने बच्चों को दूध पिलाते समय सुध-बुध खो बैठी है। लड़कों ने जोगैयाको समझाया था- 'अब तुम बूढ़े हो गये हो, राम-राम जपो और आराम करो। जवान बेटों के रहते बाप को कष्ट नहीं उठाना चाहिए।' किन्तु लड़के यह नहीं जानते थे कि जोगैया को खेती के काम में अपूर्व आनन्द मिलता है।

महीना भर हुआ होगा, जोगैया की पत्नी बीमार हुई थी। खटिया पकड़ने से दस दिन पहले वह कभी-कभी कराहती थी, किन्तु जोगैया ने उस ओर ध्यान नहीं दिया था। उसनें यह कह कर बात टाल दी कि रोग मनुष्य को ही होता हैं, वृक्षों के तो होता नहीं। जोगैया ने यह बात कभी नहीं सोची थी कि छोटी बीमारी उसकी पत्नी के लिए काल बन कर आई है। बड़े बेटे ने बाप से कहा भी, था कि वे घर पर रह कर माँ की देख भाल करें, किन्तु पिता ने यह अनुरोध स्वीकार नहीं किया था। उन दिनों नाले से खेत को पर्याप्त पानी नहीं मिलता था। जोगैया ने सोचा कि कोई नाली के पानी को अपने खेत की ओर मोड़ ले तो बड़ा बेटा मुँह बाये देखता रहेगा। उससे कुछ होगा नहीं। इसीलिए वह पत्नी के पास न रह कर खेत पर जाता था। बड़ा लड़का स्वभाव से अच्छा है, किन्तु जरूरत से ज्यादा दब्बू है। समय पर पानी न मिलने से खेत सूख जाएगा। खेत सूखने पर लाख प्रयत्न करो, सब व्यर्थ। यही सब सोच कर जोगैया ने

अपनी पत्नी को गाँव के वैद्यजी की दवा दिलाई थी। दवा देकर खेत तक भी नहीं पहुँच पाया था कि नौकर दौड़ा-दौड़ा आया। बोला - 'हमारे शत्रु भाला-लाठी लिये खेत पर जमा हैं। लड़ने के लिए तैयार हैं। आपके बड़े बेटे नरसैया साहब खड़े-खड़े मुँह ताक रहे हैं।'

जल्दी - जल्दी डग भर कर जोगैया अपने खेत पर पहुँचा। उसने नहर का पानी अपने खेत की ओर कर दिया। विरोधी लोग देखते के देखते रह गये। अपनी भूमि में, अपनी मिट्टी में कल - कल नाद करती जल - धारा को आते देख कर जोगैया मारे खुशी के नाचने लगा। बडे बेटे ने बीच - बीच में अपने बाप को माँ की बीमारी की याद दिलाई, किन्तु जोगैया तब तक वहाँ से नहीं हिला, जब तक कि पूरे खेतकी सिंचाई नहीं हो गई। बड़ा बेटा माँ की बीमारी की याद कराता कराता जब थक गया, तो स्वयं माँ की सेवा के लिए घर लौट आया।

सवेरा होने पर जोगैया को घर से बुलावा आया। जोगैया समझ गया था कि उसकी जीवन - संगिनी बचेगी नहीं। कई वर्षों का सम्बंध टूटने जा रहा है। और इधर खेत के कुछ भाग की सिंचाई बच गई थी। इस भाग को भी सींच कर वह तेजी से घर पहुँचा। उसकी पत्नी अन्तिम साँस ले रही थी। मरणासन्न होते हुए भी बूढ़ी घर - गिरस्त की बात कर रही थी। कह रही थी — छोटे बेटे का विवाह देखाना चाहती थी, किन्तु तुमने मेरी बात नहीं सुनी। दूसरी बहू मेरी बात नहीं मानती। बड़ी बहू को अब तक छाछ बिलो कर मक्खन निकालना नहीं आया है।

इतना कह कर जोगैया की पत्नी ने उठने का प्रयत्न किया। उसे इस बात का बहुत दुःख था कि उसकी मृत्यु के पश्चात यह घर बिगड़ जाएगा। जोगैया ने बहुत समझाया, किन्तु बूढी की चिन्ता समाप्त नहीं हुई। अन्त तक वह बड़बड़ाती रही। अन्तिम क्षण बूढी ने अपने पति की आँखों में अपनी दीनता भरी दृष्टि डाली, पति की हथेली अपनी हथेली में ली और शांति के साथ इस संसार से बिदा हो गई। सिर नीचे गिर गया।

पत्नी को मरे एक मास बीत गया। पत्नी की बीमारी के समय वह

जिस खेत की सिंचाई में लगा था, आज उसी में निलाई करा रहा है। खेत पर काम करनेवाले मजदूरों में स्त्रियाँ भी हैं और पुरुष भी। निलाई के समय सभी उल्लास स्वर में गा रहे हैं। जोगैया जामुन के पेड़ से सटकर बैठ गया। इन दिनों उसका मन बहुत उद्विग्न रहता है। अपनी मृत्यु के समय उसकी पत्नी ने घर - गिरस्ती के बारे में बहुत ममता बताई थी। जोगैया उस ममता को भुलाने का प्रयत्न करता है, किन्तु भुला नहीं पता। उसकी पत्नी मृत्यु के समय अच्छी तरह जानती थी कि वह थोडी देर की मेहमान है, फिर भी माया - मोह कम नहीं हुआ था। जोगैया ने सोचा उसकी पत्नी की भाँति सभी को इस संसार से जाना पड़ेगा, फिर भी लोगों में इतनी ममता क्यों है ?

खेत में काम करनेवाले लोग गा रहे थे। जोगैया ने आँखें खोलकर चारों ओर देखा। जोगैया का पोता साथ आया था। उसने जिज्ञासा भरे स्वर से पूछा - 'दादा हमारा खेत कहाँ तक है ?' जोगैया ने अपनी भूमि की ओर उँगली से संकेत करते हुए कहा - 'बेटा तुम्हें जहाँ तक दिखाई देता है, सब अपना है।'

पौत्र को अपनी भूमि का विस्तार बताते समय जोगैया को गर्व हुआ था। गर्व क्यों न होगा ? इस गाँव में वह कभी बैल बेचने आया था। जिस आदमी को उसने अपने बैल बेचे थे, बाद में उसी के यहाँ घर - जँवाई बन कर आया। ससुर जोगैया के व्यवहार और चरित्र से बहुत प्रभावित हुआ था, इसीलिए उसने अपनी लड़की का विवाह उसके साथ किया और घर जँवाई के रुप में रहने के लिए अपने घर बुला लिया। जब वह घर जँवाई बन कर आया, उसके ससुर के पास केवल पाँच एकड़ जमीन थी। जोगैया ने मन लगा कर काम किया। ससुर के मरने के समय जोगैया के पास पाँच एकड की जगह सौ एकड़ भूमि थी। जिन दिनों वह नई-नई जमीन खरीदता था, उसे बहुत प्रसन्नता होती थी। अब वह प्रसन्नता कहाँ ? प्रतिदिन वह मजदूरों को निश्चित समय पर एकत्रित करता था, वह सभी मजदूरों से अच्छी तरह काम लेता था, कोई मजदूर ठीक तरह

से काम न करता तो उसे खूब डाँटता था, पूरा खेत वह एक बार अवश्य देख लेता था, इन सब कामों के करते समय उसे बहुत खुशी होती थी, आज वह खुशी कहाँ? किन्तु पुरानी आदत कहाँ जातीं है? काम पहले की तरह किये जाता है।

जोगैया जामुन के पेड़ से उसी तरह सट कर बैठा रहा। सूरज की किरनें छन-छन कर उसके मुँह पर पड़ रही थीं। उसने आँखें खोल कर खेत की ओर देखा तो मजदूर खेत छोड़ चुके थे। पेड़ों की डालों पर लटकनेवाली गठरियाँ ले-लेकर मजदूर लोग खाने की तैयारी कर रहे थे, कुछ मजदूर भोजन समाप्त करके मेंड पर लेट गये।

जोगैया ने गरजते हुए कहा - 'सब लोग उठ जाओ।'

यह आवज़ सुनकर कुछ मजदूरों को हँसी आ गई। कुछ लोग आपस में कहने लगे - 'बुढ़ापे में भी जोगैया कितने फुर्तीले हैं।' एक मजदूर ने नम्रता से उत्तर दिया - 'खाने बैठे ही हैं।' और फिर एक-एक करके सब मजदूर खेत पर चले गये।

जोगैया ने गाँव की ओर देखा। वह प्रतिदिन इसी जामुन के पेड़ की छाया में दोपहार को भोजन करता है। उसकी पोती प्रतिदिन यहीं भोजन लाती है। आज भी उसे दिखाई दिया, उसकी पोती भोजन ला रही है। उसने देखा बादलों के कारण अन्धेरा हो चला है! यदि इस समय वर्षा होने लगे तो? वर्षा से जोगैया को अपनी चिन्ता नहीं थी किन्तु उसकी पोती पानी में भीग जाएगी। उसे याद आया कि पानी जोर पकड़ले तो वह कटहल के नीचे झोंपड़ी में बच सकता है। कटहल के पेड के नीचे की झोंपड़ी आज की थोड़े ही है, उस समय की बनी हुई है, जब उसने यह खेत खरीदा था। तब से लेकर आज तक वह धूप में सूखती है और वर्षा में भीगती है, फिर भी निर्विकार भाव से खड़ी है।

'दादा भोजन आ गया' - पोती ने बरतन नीचे रख कर मुँह पर बँधे कपड़े को हटाया और खेत में भाग गई। भागते समय कह गई - जब तक तुम भोजन करोगे, मैं खेत से लौट आऊँगी।'

जोगैया धीरे धीरे अपने स्थान से उठा। नहर पर जाकर उसने हाथ-मुँह धोया और फिर पोते के साथ भोजन करने बैठा।

मजदूर खेत निला रहे थे। जोगैया की पोती थोड़ी देर तक मेंड पर खड़ी रही। एक मजदूर ने उसे 'छोटी मालकिन' कह कर चिढ़ाया। तब उसने लहँगे के उस हिस्से को कुछ ऊपर उठा लिया, जो पाँवों में अटक रहा था और फिर छलांग मारती दादा के पास लौट आई। मार्ग में लड़की को पिता मिल गया। पिता ने उसके रेशमी लँहगे को देख कर कहा - जरी का लँहगा क्यों पहन आई। खेत में कीचड़ लगेगा न!'

लड़की ने कहा - 'दादा इस लँहगे को बहुत पसंद करते हैं। दादा ने ही इस लँहगे को पहन कर खेत पर आने के लिए कहा था।'

'दादा ने लहँगा देख लिया?'

लड़की ने उत्तर दिया - 'वे तो इस बात को भूल ही गये।'

'दादा जी, भोजन कर चुके?'

'मैं परोस कर खेत में चली आई थी।'

'कहाँ पर हैं, दादा जी?'

'उसी जामुन के पेड़ के नीचे बैठे हैं।'

बाप-बेटी दोनों जामुन के पेड़ के पास आ गये। आकाश में बादल घिरते आ रहे थे। वर्षा के लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। नरसैया इस बात को बिल्कुल पसंद नहीं करता था कि उसका पिता साठ वर्ष की आयु में खेत का काम करें। पिता का खेत पर भोजन मँगाना भी उसे पसंद नहीं था। नरसैया गाँव की पंचायत का मुखिया था। लोगों में उसकी प्रतिष्ठा थी। पिता के इस आचरण से उसकी हेठी होती थी। किन्तु जोगैया बेटे की बात सुनना नहीं चाहता। उसका कहना है कि खेत पर भोजन करने से न तो किसी की प्रतिष्ठा घटती है और न बढ़ती है।

इतने में बादल गरजा, बिजली कड़की और तुरन्त पानी की बूँदें टप-टप की ध्वनि के साथ गिरने लगीं। नरसैया लम्बे-लम्बे डग भरता जामुन के पेड़ के पास आ गया। उसका पिता पेड़ से सटा बैठा था। लाठी

और पगडी एक ओर पड़ी थी। जोगैया आँखें मूँदे ऐसा बैठा था, जैसे किसी समस्या का हल खोज रहा हो। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। सदैव कुछ न कुछ सोचता रहता है। चाहे सोचने की आवश्यकता हो, चाहे सोचने की आवश्यकता न हो, फिर भी मनुष्य सोचे बिना नहीं रह सकता। जोगैया अपनी मुट्ठी में कोई चीज लिये हुए है और उस चीज को सूँघ रहा है। मुट्ठी नाक के पास है। उसकी मुट्ठी में क्या है? फूल?

नहीं। तमाखू? नहीं। फिर क्या है? मिट्टी! बस .... केवल .... धरती माता की काली मिट्टी जामुन के पेड़ के नीचे की काली मिट्टी।

नरसैया ने व्याकुलता से पूछा - 'बाबूजी, ... बाबूजी!'

शिथिल स्वर में उत्तर मिला - 'बेटा!'

मुट्ठी ढीली पड़ गई। हाथ झुकने लगा। मुट्ठी से मिट्टी गिरने लगी। जोगैया की मिट्टी की काया मिट्टी में मिल गई।

कोडवटिगंटि कुटुम्बराव

पंकज

'दादीजी, आप भात पसाती हैं, या बिना पसाया भात ही परोसा जाता है'

'सवेरे हम लोग पसाते हैं, रात को बिना पसाया भात ही खाते हैं। यह तो बताओ बात क्या है?'

'बात कुछ भी नहीं दादीजी! आप लोग माँड का क्या करते हैं? आप लोगों के यहाँ गाय-बैल तो हैं नहीं, जो माँड उन्हें पिला दियाजाये।'

'सवेरे का माँड हम लोग यों ही मोरी में बहा देते हैं। घर पर जानवर जो नहीं हैं।'

'तब एक काम करोगी दादीजी?'

'कौन-सा काम बेटा?

'आज से तुम माँड किसी बर्तन में रख दिया करो। मैं ले लिया करूँगा।'

'तुम क्या करोगे?'

'काम तो कोई खास नहीं है। कुछ समय पहले रायलसीमा में माँड के सम्बन्ध में कई प्रयोग किये गये थे। माँड को अच्छा पेय बनाकर लोग बेचते थे। किन्तु अधिक सफलता नहीं मिल सकी। मेरे अफ़सर का विचार है कि यहाँ माँड के बारे में कुछ अनुसन्धान किया जा सकता है। मैं और मेरे कुछ साथी अध्ययन करना चाहते हैं। इसीलिए मैं माँड के बारे में पूछ रह था।'

'यह बात है! यह कौन सी बड़ी बात है बेटा।'

पंकज अपनी दादी और श्रीनिवासराव की इस बात को सुन रही थी। श्रीनिवासराव पंकज के घर के पिछवाडे एक कमरे में किराये से रहता है।

दादी और श्रीनिवासराव की बातचीत से पंकज कुछ क्रोधित हो उठी थी।

जब कभी पंकज श्रीनिवासराव को देखती है, क्रोधित हो उठती है। क्रोध का कारण क्या है, इसे पंकज नहीं जानती। श्रीनिवासराव ने पंकज अथवा अड़ोसी-पड़ोसी के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। वह तो यथा-संभव सभी की सहायता करता रहता है। उसने पंकज के घर में ही कई बार फ्यूज डाल कर बिजली जलाई है। पढ़ने - लिखने में भी वह पंकज की सहायता करता रहता है। पंकज के परिवार को श्रीनिवासराव के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है। हाँ, वह किराया समय पर नहीं देता है, किन्तु यह बात पंकज के क्रोध का कारण नहीं बन सकती। जिस कमरे में श्रीनिवासराव रहता है, वह कमरा पहले पंकज के परिवार के काम में आता था। उस कमरे में फालतू चीजें रखी जाती थीं। पता नहीं क्यों, पंकज के पिता ने कमरा किराये पर दे दिया। पंकज को इस बात पर क्रोध नहीं आता था कि श्रीनिवासराव से मिलने - भेंटने के लिए उसके कई मित्र उस कमरे में आते थे और कभी कभी तो कोई मित्र दस - बारह दिन तक वहीं टिक भी जाता था।

पंकज के मन में श्रीनिवासराव के प्रति अविश्वास है। इस अविश्वास के कारण ही उसे क्रोध आता है। श्रीनिवासराव पिछले छह मास से उसके घर में किराये से रहता है, किन्तु पंकज उसके बारे में स्पष्ट रूप से एक बात भी नहीं जान पाई। वह किस कार्यालय में काम करता है? उसका गाँव कहाँ है? इन छोटे - छोटे प्रश्नों का उत्तर भी पंकज नहीं जानती थी। इन सब प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए पंकज के पिता में कोई उत्सुकता नहीं थी। जब कभी पंकज ने प्रश्न किया है, श्रीनिवासराव ने कुछ इस प्रकार का उत्तर दिया है कि बेचारी के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। उसके उत्तर का भरोसा किया जा सकता था और नहीं भी किया जा सकता था। श्रीनिवास जब नया-नया आया था, उसने बताया था कि वह किसी दफ्तर में रिकार्ड कीपर का काम करता है। कुछ दिनों बाद बातचीत में उसने कहा था कि वह किसी कार्यालय में यू. डी. सी. है। जब पंकज ने

पूछा कि आप तो रिकार्डकीपर थे तो श्रीनिवासराव ने बताया था कि रिकार्डकीपर का काम दो मास पहले छूट गया। पंकज ने अनुभव किया कि रिकार्डकीपर और यू. डी. सी. दोनों बातें झूठी हैं। पंकज ने एक दिन श्रीनिवासराव को भोजन न बनाने का कारण पूछा तो श्रीनिवासराव ने कहा था, 'हम लोग जिस होटल में भोजन करते हैं, उसमें एक आदमी हैजे से मर गया। इस मृत्यु के कारण होटल बन्द कर दिया गया। पंकज ने पहले ही हैजे से मरने वाले आदमी की बात सुन ली थी, इसलिए उसे इस बात पर अविश्वास नहीं हुआ। पंकज ने जब कहा कि इस नगर में वही एक होटल तो है नहीं, तब श्रीनिवासराव ने उत्तर दिया था - 'जब हैजा फैला हुआ है तो किसी होटल पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

पंकज ने तब मन ही मन कहा था - 'होटलों पर ही क्यों, विश्वास तो तुम पर भी नहीं किया जा सकता।'

पंकज ने देखा, श्रीनिवासराव और उसके मित्र बिना छौंक दिये दाल-साग बना रहे हैं। उसने यह गलती सुझाई और छौंक देने के लिए अपने घर से राई, कलछी आदि लाकर दी। उसने उड़द, घियाकस आदि से भी सहायता की।

पंकज आज पहली बार ही श्रीनिवासराव के कमरे में गई थी। उसने देखा कमरे में कोई सामान नहीं था। हाँ किताबों का ढेर अवश्य लगा हुआ था। इधर-उधर ध्यानपूर्वक देखने पर भी पंकज श्रीनिवासराव के बारे में विशेष नहीं जान सकी। श्रीनिवासराव को जब कभी उसने आते-जाते देखा है, अच्छे कपड़ों में ही देखा है, किन्तु पंकज को इस बात का पता नहीं था कि उसके पास केवल दो-तीन जोड़े ही हैं।

गत छह मास में श्रीनिवासराव दो बार समय पर किराया नहीं दे सका था। पहली बार किराया न देने पर उसने कहा था कि उसकी बहन ने सहायता के लिए कई पत्र लिखे थे, इसीलिए उसके पास जितने रुपये थे, वे सब उसने बहन को भेज दिये। किराया चुकाने के लिए उसके पास पैसा नहीं बचा। दूसरी बार किराया न चुकाने के लिए उसने

कहा था कि उसकी भानजी को रुपयों की जरूरत पड़ गई, इसलिए उसने मकान किराये के रुपये भेज दिये। पंकज को दोनों कारण असत्य प्रतीत हुए थे। किन्तु श्रीनिवासराव ने रुपये पैसे के मामले में कोई सुविधा नहीं चाही। एक महीने में किराया नहीं दिया गया तो उसने अगले महीनों में दोनों मासों का किराया चुकता कर दिया। आय कम होने के कारण वह मितव्ययी अवश्य है, किन्तु उधार लेकर वह लौटाये बिना चैन नहीं लेता।

श्रीनिवासराव जब चाँवल का माँड माँग रहा था तो उसने वैज्ञानिक अनुसन्धान की बात कही थी। संभवत: उसे यह नहीं मालूम था कि सुनने वाला उसकी बात पर अविश्वास भी कर सकता है। और फिर सुनने-वाले का मन भी तो पापी हो सकता है। पंकज ने सोचा कहीं-मैं व्यर्थ ही श्रीनिवासराव पर सन्देह नहीं कर रही हूँ।

[२]

चार दिन बीत गये।

'दादीजी, आज मालूम होता है, भात पसाया नहीं गया?'

'बेटा भात पसाया तो गया, किन्तु माँड़ पंकज अपने कपड़ों में देने के लिए ले गई। तुम्हें आवश्यकता हो तो सन्ध्या को पसा दूँगी।'

'रहने दो दादी, ऐसी कोई आवश्यकता नहीं! हाँ, दादीजी, यह बताओ, पित्त बिगड़ने पर क्या चीज़ खानी चाहिए?'

'क्यों बेटा, क्या तुम्हारी तबीयत खराब है?'

'कोई विशेष बात नहीं है, दादीजी, कुछ मचली-सी हो रही है। आज लंघन करना चाहता हूँ।'

'हमारे घर में आँवले का पुराना अचार है। उसके साथ दो गस्से खा लेना। बहुत कमजोर हो गये हो। लंघन करोगे तो कमजोरी और बढ़ेगी।'

'आँवले का अचार दिला दो दादी जी। पहले उसके साथ भात के दो गस्से खा लूँगा और फिर रसम् * के साथ भात खाऊँगा।'

---

* इमली को मथ कर बनाया जाने वाला पेय।

'आज तुम होटल क्यों जाते हो।? यहीं खा लो। मैं आँवले के अचार के साथ भात और रसम् भी भेजती हूँ।'

दादी और श्रीनिवासराव की बात सुन कर पंकज ने मन ही मन सोचा कि श्रीनिवासराव झूठ बोल रहा हैं। पंकज श्रीनिवासराव पर सन्देह करती है, इसीलिए उसकी बात पर उसे विश्वास नहीं होता। आधा घँटे बाद दादी ने पंकज को पुकारा। पंकज ने रसोई घर में झाँक कर पूछा - 'क्या है दादी?'

दादी ने कहा - 'उस लड़के को भोजन करने के लिए बुलाओ!'

पंकज ने श्रीनिवासराव के कमरे में झाँका तो उसे दिखाई दिया वह सो रहा है। दूसरे क्षण पंकज ने अनुभव किया जैसे श्रीनिवासराव मर गया है। पंकज ने निकट जा कर देखा तो उसे पता चला साँस पूरी तरह रुकी नहीं है। पंकज ने पुकार कर कहा - 'अजी सुनिये।'

श्रीनिवासराव ने कोई उत्तर नहीं दिया। पंकज ने हाथ से झक-झोरते हुए आवाज़ लगाई, तब कहीं जाकर उसने आँखें खोलीं।

'भोजन करने चलिए।'

'पत्तल में थोड़ा भात यहीं ले लाओ। कुछ ठहर कर खा लूँगा।' श्रीनिवासराव ने इतना कह कर फिर आँख बन्द कर लीं।

पंकज ने श्रीनिवासराव का सन्देश दादी को सुना दिया। दादी ने पत्तल भर भात परस दिया। पंकज ने कहा - 'दादी, जब वह खाना नहीं चाहता तो तुम इतना साग क्यों परस रही हो?'

'इतना सारा क्या है? भात है, थोड़ी ककड़ी की दाल है और एक चम्मच करेले का साग। करेले का साग न खाना चाहे तो रहने देना। उससे कहना - पहला गस्सा आँवले के अचार के साथ ले। अलग से गिलास में रसम् ले जाओ। थोड़ा - सा घी और मट्ठा भी ले जाना।'

जब कोई दादी जी के बनाये भोजन की प्रशंसा करता है तो दादी को बहुत प्रसन्नता होती है। जब श्रीनिवासराव ने अनुसन्धान के लिए माँड माँगा था तो दादी यह कहते - कहते रुक गई थी कि वह भी माँड के

प्रयोग में सहायता देगी। दादी कहना चाहती थी कि माँड ही क्यों घास को भी स्वादिष्ट बनाया जा सकता है, हाँ ! हाथ में रस चाहिए।

[३]

पंकज के पिता प्रसादराव भोजन कर रहे थे और दादी परस रही थी। माँ-बेटे में पंकज के विवाह के बारे बातचीत शुरू हुई।

प्रसादराव ने कहा - "हमारे ही नगर में एक लड़का डाक्टरी पढ़ रहा है। माँ-बाप बचपन में ही मर गये। बड़ा भाई पढ़ाई पर खर्च कर रहा है। मैंने लड़का देखा है, देखने में अच्छा है।"

'बेटा, विवाह के बाद उस लड़के को इसी घर में रहना है। मैं कितने दिन की हूँ। यही तो एक लड़की है। बेटी-जँवाई तुम्हारे साथ रहेंगे। उस लड़के ने यह बात मान ली है?' दादी ने प्रश्न किया।

'मानता क्यों नहीं? राजी-राजी मान गया।'

'मैंने सोचा, संभवतः तुमने यह बात उस लड़के से न कही हो। दाल में कुछ नमक अधिक पड़ गया है न?'

'क्या कहती हो माँ? थोड़ी दाल और देना।'

प्रसादराव ने मुँह में भात का गस्सा लेते हुए कहा - 'माँ, कोई कै कर रहा है। तुम भी सुन रही हो न?'

'लगता है, श्रीनिवासराव ही कै कर रहा है।' पंकज इतना कह कर श्रीनिवासराव के कमरे की ओर दौड़ी। उसने देखा वही है। पंकज ने मन में सोचा, पेट इतना खराब था तो यह सब खाने की क्या आवश्यकता थी? पंकज के मन में क्रोध और घृणा का उदय एक साथ हुआ।

पंकज यह बात समझ गई कि श्रीनिवास स्वयं उठने की स्थिति में नहीं है। उसने निकट जाकर बाँह पकड़ी और सहारा देकर उसे अंदर ले गई। कमरे के दरवाजे पर बैठा कर पंकज ने कुल्ले करवाये।

'तुम्हें बहुत कष्ट दे रहा हूँ।' श्रीनिवासराव ने अस्पष्ट स्वर में कहा।

'आप भोजन न करते तो ठीक रहता।' पंकज बोली।

'पूरा भोजन कहाँ किया है?' श्रीनिवासराव ने कमरें में जाते हुए कहा

'डाक्टर को दिखा देते।' पंकज ने सलाह दी।

'नहीं, डाक्टर क्या करेगा? कोई बीमारी तो है नहीं।' श्रीनिवासराव ने घबराते हुए कहा।

किन्तु प्रसादराव नहीं माने। उन्होंने डाक्टर को बुलवाया। जब तक यह पता नहीं चल गया कि श्रीनिवासराव को हैजा नहीं हुआ है, उन्हें चैन नहीं पड़ी। डाक्टर ने सलाह दी कि रोगी को केवल दूध, फल और ग्लूकोज के पानी पर रखा जाये। प्रसादराव ने ये सब चीजें बाजार से मँगवा दीं। पंकज इन चीजों को लेकर श्रीनिवासराव के कमरे में गई।

पंकज को देख कर श्रीनिवासराव बैठ गया। वह बहुत निर्बल हो गया है, किन्तु उसकी आकृति पर दीनता नहीं थी।

'जहाँ माँड से काम चलता हो, वहाँ इन सब चीजों की क्या आवश्यकता है?'

पंकज इस बात को समझ नहीं सकी। बोली - 'डाक्टर की सलाह तो माननी पड़ेगी। डाक्टर की दवा भी आपको लेनी होगी।'

'दवा लेने में मुझे आनाकानी नहीं है, किन्तु मेरा रोग दवा से अच्छा नहीं होगा। उसे तो कोई दूसरी चीज चाहिए।'

'वह दूसरी चीज क्या है? बताइये तो।'

श्रीनिवासराव ने फीकी-सी हँसी, हँस कर कहा - 'नौकरी, पैसा भोजन, मैं इतना भूखा रह चुका हूँ कि ग्रास अब अन्दर नहीं जाता। आप लोगों ने व्यर्थ ही डाक्टर को बुलवाया। मेरे कारण आप सब लोगों को बहुत परेशानी उठानी पड़ी।'

पंकज को आज पहली बार श्रीनिवासराव की बात पर विश्वास हुआ। थोड़ा-सा गरम दूध पिला कर संतरा छीलने लगी। उसने प्रश्न किया - 'उन नौकरियों की बात झूठी थी?'

'नहीं, मैं मद्रास के सचिवालय में काम करता था। जब आन्ध्र

राज्य बना, मैं मद्रास से कर्नूल चला आया। वहाँ रहने के लिए तंबू मिले। एक तंबू में पहले ही पाँच आदमी मौजूद थे। मेरे वहाँ पहुँचने के दूसरे दिन ही उन पाँच में से एक आदमी नौकरी से त्यागपत्र देकर घर चला गया। मुझे मिला कर उस तंबू में फिर पाँच आदमी रह गये। दो सिफारिश लड़ाकर अच्छी जगह चले गये। मुझे बुखार आने लगा। एक दिन इतनी जोर का बुखार आया कि मैं बेहोश हो गया। किसी ने मेरी खबर नहीं ली। मैं जिंदा हूँ या मरा, यह जानने की आवश्यकता किसे थी? दवा-दारू कौन देता, किसी ने पानी की घूँट तक नहीं पिलाई। सप्ताह भर में बुखार उतरा तो पता चला मेरा सारा सामान गायब हो चुका है, कार्यालय गया तो ढेर भर कार्य मेरी प्रतीक्षा कर रह था। मुझे आदेश मिला कि जैसे भी हो पूरा काम जल्दी से जल्दी निपटाऊँ। इतवार की छुट्टी भी रोक दी गई। इस स्थिति में क्या करता? त्यागपत्र देकर यहाँ चला आया। यहाँ कामदिलाऊ कार्यालय ने दो स्थानों पर अस्थायी नियुक्तियाँ कीं। एक महीने से बेकार हूँ, दानें-दाने का मुँहताज हूँ? उधार भी मागूँ तो किससे? चार दिन देर से किराया दूँ तो आपके परिवार वालों की दृष्टि में गिर जाता हूँ। किसी मित्र से उधार लिया हुआ पैसा न लौटाऊँ तो मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहूँगा।'

'सच है।' पंकज के मुँह से निकला।

कमरे में झाँक कर दादी ने कहा - 'बेटा थोड़ा-सा खा लो।'

कमरे में दीपक जल रहा था। श्रीनिवासराव लेटा हुआ है। वह छाती पर किताब रखे मन ही मन सोच रहा है।

'दादी, अभी भूख नहीं है।' श्रीनिवासराव ने लेटे-लेटे उत्तर दिया।

'क्यों भूख नहीं लगी? तुम्हारे लिए हलका भोजन बनाया है।'

श्रीनिवासराव उठ कर दादी के पीछे-पीछे चला गया। रसोई घर में शीतल पट्टी बिछा कर दादी ने उसे बैठाया।

'दादीजी, घर में कोई और नहीं हैं?' श्रीनिवासराव ने पूछा।

'कहीं से पंकज की सगाई की बात आई है। बाप-बेटी दोनों लड़का देखने गये हैं। इस श्रावण की पूर्णिमा को वह सत्रह वर्ष की हो जाएगी। जल्दी ही उसका विवाह करना है।' दादी ने भात परसते हुए कहा।

'थोड़ा ही दीजिये दादी! अप्रसन्न मत होना। आपके कारण ही सबेरे मेरी वह दशा हुई थी।'

'क्या हो गया था बेटा?' दादी ने आतुरता से पूछा।

'मैं थोड़ा ही खाना चाहता था, किन्तु आपके हाथ की रसोई की क्या प्रशंसा करूँ? मैं बहुत खा गया। करेले का साग कितना स्वादिष्ट बना था! ऐसा स्वादिष्ट साग तो मैंनें जीवन में कभी नहीं खाया।'

दादी का मुँह आनन्द से खिल उठा।

'करेले का साग अच्छा बना था न?'

'क्या पूछना है दादी! बहुत अच्छा बना था। यों मैं करेले का साग नहीं खाता हूँ, किन्तु आज बड़ी रुचि से खा गया। अधिक खाने से कै हो गई। अब मुझे थोड़ा ही खाना चाहिए।'

'चटनी, रसम्, मूँग की दाल, जरा चखो तो सही कैसे बने हैं?'

'नहीं दादी, रहनें दो।'

'केवल चखो बेटा। दाल और चटनी के साथ केवल एक गस्सा खा कर देखो।'

'अद्भुत है, दादीजी! तुम तो राजा नल से भी अच्छा भोजन बनाती हो!'

मीठी-मीठी बातों में लगा कर दादी ने एक-एक करके सारी चीजें खिलाईं। श्रीनिवास प्रत्येक चीज को सराह रहा था।

'बेटा, मेरा बनाया भोजन तुम्हें भी पसंद आया? मेरे बेटे प्रसादराव को भी बहुत भाता है। किन्तु न जाने क्या बात है, मेरी पोती पंकज को मेरी बनाई हुई एक चीज भी कभी पसंद नहीं आई! कोई न कोई दोष ढूँढ़ ही लेती है।'

'अपनी-अपनी रुचि, अपना-अपना स्वाद।'

बाप-बेटी के घर लौटते-लौटते रात के नौ बज गये।

पंकज नें आते ही दादी से पूछा - 'दादी, श्रीनिवासराव को भोजन कराया है या नहीं?'

"वह तो दो - ढाई घंटे पहले ही भोजन कर गया।" कुछ रुक कर दादी ने प्रसादराव से पूछा - 'लड़का देख आये बेटा?'

'देख तो आया' - प्रसादराव ने उत्तर दिया।

'निश्चय हो गया?' दादी ने प्रश्न किया।

'दहेज में दस हजार रुपये माँगते हैं।'

'भूख लगी है, जल्दी से खिलाओ दादी।' विषय बदलने के लिए पंकज ने कहा।

'दस हजार!' अपनी नाक पर उँगली रख कर दादी ने आश्चर्य से कहा।

'भात परसो दादी!' पंकज ने कुछ खीज कर कहा।

'दस हजार रुपये से तो जँवाइयों को खरीदा जा सकता है माँ!' प्रसादराव गंभीरता से बोले।

भोजन करते समय पंकज बड़बड़ाई – 'यह रसम् है या काढ़ा?'

'अरी तुझ से तो वह लड़का श्रीनिवासराव अच्छा है। सभी चीजें चट कर गया। बड़ा बुद्धिमान लड़का है। ऐसे लड़के को पंकज के लिए क्यों नहीं चुनते। बेटी-जँवाई तोता - मैना की तरह घर को सुशोभित करेंगे।' दादी के स्वर में आग्रह था।

प्रसादराव हर बात को अच्छी तरह याद रखते हैं, किन्तु आज डाक्टर बननेवाले लड़के के भावी ठाट - बाट और रौब - दाब को भूल गये। उन्हें माँ की बात युक्ति युक्त प्रतीत हुई। उन्होंने अपनी बेटी की ओर देखा। वह दादी और पिता की बातचीत को अनसुनी-सी करते हुए उस साग को बड़ी रुचि के साथ खा रही थी, जिस साग की आलोचना उसने कुछ समय पूर्व ही की थी।

००००००००

मुनिमाणिक्यम् नरसिंहराव

तेईसवाँ चौराहा

गुंटूर के ब्राडीपेट का तेईसवाँ चौराहा, उस चौराहे के पहले ही घर में एक युवती रहती है। वह युवती अपने मकान के दक्षिणी भाग की खिड़की से सदा बाहर की ओर देखती रहती है। ज्ञात होता है जवान होने पर भी उसे कोई सन्तान नहीं हुई।

उस युवती की सहायता के लिए एक बूढी उस घर में रहती है। वह बूढ़ी ही उसे भोजन बनाकर खिलाती है। बुढ़िया बेचारी सदा कोई न कोई काम करती रहती है, इसीलिए खिड़की या दरवाजे पर दिखाई नहीं देती। किन्तु युवती जब देखो खिड़की से दूर-दूर के पेडों को ताकती रहती है।

खिड़की से, दूर दूर तक फैले हुए ताड़ के पेड़ दिखाई देते है। वह युवती विचार-पूर्ण मुद्रा में उन पेड़ों को न जाने क्या सन्देश भेजती है, वह सन्देश पेड़ों की समझ में आता भी हैं या नहीं, नहा जानता, किन्तु यह सत्य है कि युवती का सन्देश पाकर वे पेड़ सिर हिलाते दिखाई देते हैं।

ऊपर बताया गया है कि युवती विचारपूर्ण मुद्रा में खड़ी होकर पेड़ों को सन्देंश भेजती है। विचार पूर्ण मुद्रा का अर्थ यह नहीं है कि युवती के बाल अस्त-व्यस्त रहते हैं अथवा वह मैले कपड़ों में होती है। विचारपूर्ण मुद्रा का यह तात्पर्य भ्रामक होगा। युवती आठों पहर साफ-सुथरे और चमकदार कपडे पहनती है। उसका मुखमंडल अनुपम आभा से दमकता रहता है। हाँ, यह सत्य है कि आधुनिक ढंग के आभूषण उसके शरीर पर दिखाई नहीं देते। कानों में ऐरन न पहन कर कर्णफूल पहनती है।

बालों में बाँई ओर माँग न काढ़ कर वह पुराने ढंग से सिर के बीचों बीच माँग बनाती है। एक अथवा दो वेणियाँ न गूँथ कर वह बर्मी महिलाओं की तरह जूड़ा बना कर उस में एक-दो फूल खोंस लेती है। उस गली से छोटे-बड़े, जवान-बूढ़े सभी गुजरते हैं। कालेज के अनेक विद्यार्थी भी उस रास्ते से आते-जाते हैं, किन्तु ऐसा कभी नहीं देखा गया कि उस युवती ने किसी आते-जाते व्यक्ति को आँख उठाकर देखा हो। ऐसा लगता है, जैसे किसी गंभीर समस्या का हल ढूँढ़ने के लिए वह क्षितिज में दृष्टि गड़ाये रहती है।

उस युवती के घर साँझ-सवेरे बहुत-सी जवान लड़कियाँ आया करती हैं। वह युवती इन लड़कियों को अपने घर के पिछवाड़े की फुलवारी से गुलाब और कनेर के फूल तोड़कर देती है।

पचास वर्ष का एक वृद्ध बाईसवाँ चौराहा पार करके उस युवती के घर के सामने से जाता दिखाई दिया। उस अधेड़ व्यक्ति ने युवती की ओर देखा और फिर मुस्कराते हुए कहा-'बेटी, कुशल से हो न?'

युवती अपनी जगह से हटी नहीं। वहीं से सिर हिलाकर उसने उत्तर दिया-'चाचाजी, सब ठीक है।'

युवती को इस घर में आये सात दिन भी नहीं हुए। इसीलिए उसके बारे में किसी को अधिक जानकारी नहीं है।

वह अधेड़ व्यक्ति आता-जाता उस युवती से कुशल-मंगल पूछ लेता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि वह युवती से अधिक परिचित है। वह अधेड़ व्यक्ति जब तक पास-पड़ौस के लोगों से सम्पर्क स्थापित न कर ले तब तक मन नहीं मानता। जो सामने आता है, उससे कुशल-मंगल पूछने का उसका स्वभाव पड़ गया है।

एक दिन सन्ध्या को वह अधेड़ व्यक्ति भोजन के पश्चात चुरुट जला कर बाहर निकला तो उन्हें घर के सामने पुल पर एक अपरिचित व्यक्ति दिखाई दिया। वह युवक नाले के पुल पर बैठा था। आयु पच्चीस-छब्बीस की होगी। रंग साँवला था, किन्तु जवानी के कारण सुन्दर दिखाई दे रहा था।

पुल पर बैठे-बैठे वह युवक कुछ सोच रहा था। देखने से प्रतीत होता था कि वह बहुत चिन्तित है। इसीलिए तो उस अधेड़ व्यक्ति के आगमन को वह वह नहीं जान सका। उस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया।

अधेड़ आयु के व्यक्ति ने ही युवक के निकट जाकर पूछा-'बेटा, तुम कौन हो? यहाँ किसलिए बैठे हो?'

वह युवक कौन है, कहाँ से आया है आदि बातों से उस अधेड़ व्यक्ति का क्या सम्बन्ध था। आम रास्ते के किनारे कोई भी बैठ सकता है।

युवक कुलीन प्रतीत होता था, इसीलिए उसने वृद्ध के प्रश्न का बुरा नहीं माना। वह सिर झुकाये, पहले की तरह बैठा रहा, किन्तु अधेड़ व्यक्ति चुप रहनेवाला प्राणी नहीं था। दुबारा पूछा-'भाई, तुम्हारा घर कहाँ है?'

युवक ने उत्तर दिया-'मैं बन्दर (मछलीपट्टन) का रहने वाला हूँ।'

वह अधेड़ व्यक्ति इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हुआ। तीसरा प्रश्न किया। तब उस युवक ने कहा-'इस शहर में मेरे सम्बन्धी रहते हैं।' युवक ने इतना कह कर अपना सिर झुका लिया।

'किस मुहल्ले में?'

'बगल की गली में'-युवक ने युवती के घर की ओर संकेत किया।

'तेईसवें चौराहे का वह घर तो नहीं?'

'हाँ वही,....।'

'तेईसवें चौराहे के पहले मकान में एक माँ अपनी बेटी के साथ रहती है, उसी घर में?'

युवक ने विस्मय और भय के साथ उस अधेड़ व्यक्ति की ओर देखा। फिर उत्तर दिया-'उस घर के कुछ आगे मेरें सम्बन्धी का घर है।'

अधेड़ व्यक्ति को कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने युवक की आँखों में अपनी तीक्ष्ण दृष्टि गड़ाई। रात चाँदनी थी, अतः युवक एक साथ विस्मय और भय प्रतिबिंबित हो रहे थे। वृद्ध का सन्देह और बढ़ गया। उन्होंने अपनी आँखें बन्द करके मन ही मन कुछ भूतकालीन दृश्यों का साक्षात्कार

करना चाहा। फिर आँखें खोल कर मुस्कराते हुए कहा - 'अच्छा, उस खिड़की से दिखाई देने वाली युवती....?'

'हाँ, हाँ, वही!' इतना कह कर युवक पुल पार कर के तेजी से चला गया।

अधेड़ व्यक्ति उस समय तक युवक की ओर अपलक ताकते रहे, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया। अधेड़ व्यक्ति ने देखा कि उनका चुरट इस बीच बुझ चुका है। उन्होंने चुरट जलाते हुए मन ही मन कहा - 'यह है जवानी!'

अधेड व्यक्ति का मन पंखे की भाँति कभी उस युवती की ओर, और कभी उस युवक की ओर चक्कर मारने लगा।

मकड़ी इस कोने से उस कोने तक और उस कोने से इस कोने तक दौड़ती है। दौड़ते समय वह बारीक धागे से दोनों कोनों को जोड़ने का प्रयत्न करती है। यह धागा दोनों कोनों में सम्बन्ध स्थापित करता है। मकड़ी की भाँति ये अधेड़ आयु के सज्जन उस युवती तथा इस युवक को किसी अज्ञात सूत्र से जोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे।

उसने सोचा - उस युवती की आयु बहुत कम है। वह सदैव एकाकी चिन्ताग्रस्त क्यों रहती है। इसका क्या कारण है। संभवत: विवाहिता है और पति ने उसे छोड़ दिया है। उस अधेड़ व्यक्ति ने इतना सोच कर मुँह से चुरट फेंक दिया। घर पहुँच कर उन्होंने कुल्ला किया और फिर लेट गये।

किन्तु नींद नहीं आ रही थी। उसके मन में कई विचार उठ रहे थे। यदि वह युवती परित्यक्ता है तो किसी प्रकार की बाधा नहीं आयेगी। यदि ऐसा नहीं है और पति पर उसका अच्छा प्रभाव है तो बेचारे पति के लिए इस प्रकार का सम्बन्ध अपमानजनक है। इस विचार के आते ही उनके ठंडे रक्त में भी गरमी आ गई! उस युवती के पति की व्यथा का अनुभव ये महाशय स्वयं करनें लगे। तरह-तरह के विचार उनकें हृदय को शूल की भाँति भेदने लगे। उनकी खाट शरशय्या बन गई। सोचते सोचते

जब ऊब गये तो उन्होंने विवश होकर अपनी पत्नी को आवाज़ दी।

पत्नी ने कोई उत्तर नहीं दिया तो उन्होंने कहा - 'मैं तुम्हीं को बुला रहा हूँ। कैसी नींद आती है तुम्हें!'

पत्नी की आँखों में नींद घुली हुई थी। उसने विशेष ध्यान दिये बिना कहा - 'बात क्या है?'

'बगलवाली गली के पहले घर में माँ-बेटी रहती हैं न? तुमने उन लोगों को कभी देखा है?'

'हाँ .... फिर!'

'उन लोगों को तुम जानती हो?'

'हाँ जानती हूँ।'

'वह लड़की उस बुढ़िया की बेटी है न?'

'हाँ'

'उस लड़की का कोई पति भी है या नहीं?'

'ऐसी बातों से हम लोगो को मतलब?'

'मतलब क्यों नहीं है? तुम बताओ तो सही उस लड़की का पति है या नहीं?'

'पति है, किन्तु यह तो बताओ तुम सारे मुहल्ले की पंचायत में अपना समय क्यों नष्ट करते हो?' पत्नी खीज़ उठी थी। उसकी इस खीज़ से पति को आश्चर्य हुआ।

'यदि पति है'.... इतना कह कर पति किसी गहरी चिन्ता में डूब गया।

'आप क्या कह रहे थे?' पूरी तरह जाग कर पत्नी ने पूछा।'

'ऐसे ही। कोई खास बात तो है नहीं। तुम जानती हो; सचमुच उसका पति है?'

'सचमुच नहीं तो क्या झूठ-मूठ?'

'अच्छा माने लेता हूँ कि उसका पति है, यदि पति है तो फिर यह सब क्या है?'

'क्यों, क्या हुआ?'

'बड़ी गड़बड़ मालूम होती है!'

'चुप भी रहो। वह लड़की ऐसी नहीं है। खरा सोना है, खरा।'

अपनी पत्नी को पूरी कहानी सुनाना पति ने उचित नहीं समझा। उन्होंने अपनी पत्नी को सोने के लिए कहा और वे स्वयं फिर चिन्ता में डूब गये। विवाहिता होते हुए भी वह कैसा बुरा काम कर रही है! इतनी हिम्मत! वह अधेड़ व्यक्ति उधेड़ बुन में पड़ गया। रात बीत गई किन्तु समस्या का कोई समाधान सुझाई नहीं दिया।

दूसरे दिन महाशय तेईसवें चौराहे के पहले घर के सामने जा खड़े हुए। दिखाई देता था कि वे किसी गंभीर चिन्ता में पड़े हुए हैं। उनके मुँह पर चिन्ताजनित भय की रेखाएँ उभरी हुई थीं।

कोई भी भला आदमी किसी अपरिचित व्यक्ति का दरवाजा खटखटाने में अवश्य संकोच करेगा। वह अधेड़ व्यक्ति भी कुछ समय तक झिझक अनुभव करते रहे। फिर वे निर्णय पर पहुँच गये।

वृद्ध महाशय ने देखा था कि वह युवती पिछले तीन दिनों में इस समय खिड़की के पास खड़ी रहती थी, किन्तु आज वह वहाँ दिखाई नहीं दी। वृद्ध ने सोचा आज उस युवती की अनुपस्थिति का कारण क्या हो सकता हैं? घर से किसी प्रकार की आहट नहीं आ रही थी, जिससे पता चल सके कि अन्दर कोई है।

वृद्ध ने साहस करके एक-दो बार आवाज़ लगाई किन्तु अंदर से उत्तर नहीं मिला।—क्या हुआ, क्या मेरा विचार ठीक निकला, यह सोचते हुए वे रास्ते में आ खड़े हुए।

इसी समय सामने के मकान से एक बुढ़िया दूध का लोटा लिये बाहर निकली। दो पग आगे बढ़ कर वृद्ध ने पूछा - 'बहन, इधर देखना। इस घर में कोई नहीं है क्या?'

बुढ़िया ने उस अधेड़ व्यक्ति को पहचान लिया। बोली - 'अरे भाई तुम हो! कल तक इस घर में एक माँ अपनी बेटी के साथ रहती थी। अब

माँ-बेटी में से कोई इस घर में है या नहीं, मैं नहीं जानती! हाँ इतना जानती हूँ कि आज मुँहअँधेरे एक गाड़ी इस घर के दरवाजे पर रुकी थी। घर से कोई आदमी निकला था और उस गाड़ी में बैठ कर कहीं गया था।'

अधेड़ आयु के उस व्यक्ति को यह समझने में देर नहीं लगी कि इस बुढ़िया से अधिक बातचीत करने का कोई लाभ नहीं हो सकता। जो होना था सो हो गया। रात को ही सावधानी बरतने की आवश्यकता थी। अब सोचने से क्या लाभ हो सकता है। वृद्ध को इस बात का बहुत पछतावा था कि इस अनाचार में उनका भी थोड़ा बहुत योग है। रात में उन्हें उस युवक पर सन्देह हुआ था। उस समय यदि वे कुछ कर गुज़रते तो यह नौबत नहीं आती।

वह अधेड़ व्यक्ति बाईसवें चौराहे के पुल पर बैठ कर दतौन करने लगा। रास्ता चलते जो कोई उन से कुशल-प्रश्न पूछता, उसी को पूरी कहानी सुनाते। लोग ध्यानपूर्वक कहानी सुन कर आश्चर्य प्रकट करते - 'आप जैसे अनुभवी व्यक्ति के रहते यह सब कैसे हुआ?' इस प्रकार के प्रश्न से उनका मन उन्हें कचोटता - ऐसी घटना मेरे लिए अपमान की बात है।

कुछ लोग यह जान कर बहुत दुःखी हुए कि एक अच्छा परिवार उजड़ गया। कुछ लोगों ने सोचा अपनी पत्नी पर अच्छी तरह नियंत्रण न रखनेवाला वह अयोग्य पति कहाँ रहता है? कोई कुछ भी समझे, किन्तु सभी के मुँह से एक बात अवश्य निकली - 'यह तो घोर पाप है।'

लोग कहने लगे, 'वह युवती खिड़की से इधर-उधर जिस ढंग से ताकती थी, उस ढंग से ही हम लोगों ने भाँप लिया था कि वह गृहस्थ में जुतनेवाली लड़की नहीं है। हम यह समझ गये थे कि आज नहीं तो कल किसी के साथ जरूर भागेगी।'

उस अधेड़ आयु के व्यक्ति ने सब लोगों पर दृष्टि डाल कर कहा - 'रात मछलीबंदर से आये हुए उस युवक से बातचीत करने के बाद

मैं इस निर्णय पर पहुँच गया था कि वह लड़की उस युवक के साथ अवश्य भागेगी।

सारे मुहल्ले में इसी बात की चर्चा होने लगी। जिस किसी ने यह बात सुनी, उसने उस समय तक चैन की साँस नहीं ली जब तक कि दूसरे को पूरी कहानी नहीं सुना दी गई।

कुछ लोग सारा दोष उस युवती के सिर मँढ रहे थे। कुछ लोगों का कहना था कि ऐसे मामलों में पुरुष ही स्त्री को धोखा देता है। कारण कोई रहा हो, यह सच है कि इस घटना की चर्चा खूब हुई।

संसार में ऐसी घटनाएँ नित्यप्रति होती रहती हैं, फिर भी ऐसी घटना प्रत्येक समय सर्वथा नई और सनसनीदार मालूम होती है।

यदि दो प्राणी परस्पर प्रेम करें और समय आने पर दोनों कहीं चले जाएँ तो इतनी उत्तेजना, इतनी हलचल क्यों फैलती है? ऐसी बातों पर समाज चुप नहीं रह सकता।

युवती के भागने का समाचार एक-एक करके सभी चौराहों को पार कर गया। चौबीसवें चौराहे पर लोग बिना नमक-मिर्च लगाये यथार्थ घटना का वर्णन कर रहे हैं, किन्तु पच्चीसवें चौराहे पर लोगों को खबर मिली है कि युवक और युवती घर की जमा-पूँजी लेकर भागे हैं। छब्बीसवें चौराहे पर चर्चा थी कि पुलिस दोनों की खोज कर रही है। अट्ठाईसवें चौराहे तक वह घटना पिछली रात से सम्बन्धित न हो कर बहुत पुरानी पड़ चुकी थी। वहाँ लोग कह रहे थे कि बंदर से कोई युवक इस शहर में आया था। वह उस युवती को गहनों के साथ भगा ले गया। साथ में घर का पैसा भी समेट ले गया। दोनों यहाँ से विजयनगर चले गये हैं और वहाँ रानीपेट नामक मुहल्ले में घर किराये से लिया है। इस कथा का अन्तिम अध्याय उन्तीसवें और तीसवें चौराहे पर तैयार हुआ। उन लोगों ने कुछ अद्भुत घटनाएँ जोड़ कर इस कहानी को अधिक मनोरंजक बना दिया।

तीसवें चौराहे की कहानी सुनिये।

आड़ीपेट में रहनेवाली एक ब्राह्मण लड़की को कोई नायडू युवक उड़ा ले गया। युवती गहने भी ले गई। विजयनगर के रानीपेट मुहल्ले में घर किराये से लिया है और अपने को पति-पत्नी बताते हैं। वहाँ जाने पर लड़का पैदा हुआ है। इत्यादि।

किसी ने इस बात पर ध्यान भी नहीं दिया कि आखिर यह घटना कब घटित हुई। सब का यही कहना था कि ऐसा अनाचार पहले कभी नहीं हुआ। एक-दूसरे से समाचार कहते-कहते नौ बज गये।

वृद्ध महाशय घर पहुँचे। गरम-गरम काफी पीते हुए पत्नी से बोलें - 'वह लड़की किसी युवक कें साथ भाग गई!'

'कौन?' वृद्ध की पत्नी ने आश्चर्य प्रकट किया।

'कौन? वही, जिसे रात में तुमने खरा सोना बताया था, वही।' इतना कह कर बूढ़े ने अपने गिलास में थोड़ी-सी काफी और डाल ली।

पत्नी कुछ देर तक स्तब्ध खड़ी रही। फिर बोली - 'छीः, किसने कहा आप से?'

'मैं किसी के कहने पर ही विश्वास नहीं करता। किसी पर दोषारोपण करने का मेरा स्वभाव नहीं है।' वृद्ध ने अपनी सफाई देते हुए अथ से इति तक पूरी कहानी सुनाई।

पत्नी वहाँ क्षण भर भी नहीं ठहर सकी। तेईसवें चौराहे पर पहुँच कर वह युवती के मकान के सामने जा खड़ी हुई। तभी उसने देखा उसका पति भी हाँपता - काँपता आ रहा है। वृद्ध के आने तक वह चुपचाप खड़ी रही। वृद्ध को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि युवती के घर का दरवाजा खुला हुआ है। उसके मन में सन्देह हुआ कि उन्होंने लोगों को जो कहानी सुनाई है, वह निराधार तो नहीं है? उन्होंने अपने से प्रश्न किया - यदि युवती भाग गई है तो इस घर में कौन रहता है? फिर उन्होंने अपने आप ही उत्तर दिया - यह कैसा विचित्र प्रश्न है? घर में बुढिया होगी। इतना सोचने के बाद उन्हें अपने ऊपर ही हँसी आ गई।

बुढिया से सच्ची घटना का पता चलानें के लिए पति-पत्नी दोनों भीतर गये

पत्नी ने पूछा - 'बेटी?'

कमरें से आवाज आई - 'कौन है?' यह प्रश्न किसी स्त्री का था। संभवतः उस युवती ने ही प्रश्न किया है? इस प्रश्न के सुनते ही वृद्ध का चेहरा पीला पड़ गया। उनकी पत्नी खिलखिला कर हँस पड़ी। इसी समय वह युवती वहाँ स्वयं आ गई।

उस युवती को सामने देख कर वृद्ध को आश्चर्य और दुःख दोनों हुए। उन्हें दुःख इस बात का था कि उस बेचारी पर सन्देह किया। इतने में एक युवक चाँदी के गिलास में काफी लिये हुए वहाँ आ गया।

अरे, यह तो वही रातवाला युवक है, जिसे उन्होंने पुल पर देखा था। क्या यह युवक यहाँ पहुँच गया है?

सवेरे जब वृद्ध ने बाहर से आवाज लगाई थी तो इन लोगों ने अन्दर से उत्तर क्यों नहीं दिया? उत्तर देनें के लिए ये लोग साहस कैसे करते? वृद्ध खड़े खड़े सोच रहे थे।

युवती वृद्ध कीपत्नी के पास आकर बोली - 'चाचीजी, कैसे आना हुआ? आप तो बहुत अच्छे समय पर आई हैं।' युवती ने इतना कह कर चटाई बिछाई। वृद्ध और उनकी पत्नी चटाई पर बैठे। चाँदी के गिलास में काफ़ी ले आई।

'मैं क्या काफ़ी पीती हूँ, बेटी! तुम्हारें चाचाजी को दो।' यह कह कर उन्होंने अपने पति की ओर संकेत किया। युवती ने वृद्ध को काफ़ी पकड़ा दी।

वृद्ध की पत्नी ने पूछा - 'माँ कहाँ गई? दिखाई नहीं दे रही हैं।'

'आज बहुत सवेरे वे चली गईं, चाची।' युवती ने उत्तर दिया।

यह सुन कर वृद्ध को युवक पर बहुत क्रोध आया। उन्होंने सोचा - बुढिया के चले जाने पर घर में युवती अकेली रह गई। इसीलिए यह युवक घर में आ गया। क्रोध के कारण वे काफ़ी नहीं पीना चाहते थे। उन्होंने

नाक-भौं सिकोड कर उस युवक की आँखों में अपनी दृष्टि गड़ाई और फिर प्रश्न किया-'रात को तुम्हीं तो हमारे घर के सामने नाले के पुल पर बैठे हुए थे।' वृद्ध की आकृति में ही नहीं स्वर में भी कठोरता थी।

युवक ने बहुत विनम्रता से उत्तर दिया-'जी, हाँ मैं ही था।'

'मुझे उसी समय ज्ञात हो गया था कि तुम इस लड़की के पीछे पड़े हुए हो।' इतना कह कर वृद्ध खिलखिला कर हँस दिये।

'आप ठीक कहते हैं।' युवक ने कहा।

'कब से इस लड़की का पीछा कर रहे हो?' वृद्ध को फिर हँसी आई।

'तीन दिन से। कल तीसरा दिन था।'

'लड़की को राजी कर लिया?'

'कुछ हद तक।' युवक ने सिर झुका लिया।

वृद्ध ने मन में सोचा-तब तो मैं समय पर आया हूँ। यदि मैं इस समय न आता तो मैंने जो कुछ सोचा था, वह अवश्य होकर रहता। उन्होंने युवक से पूछा-'तुम तो कहते थे यह लड़की तुम्हारी रिश्तेदार है। ऐसा क्यों कहा था?'

'रिश्तेदार जो है?' युवक मुस्कराया।

वृद्ध का पारा चढ़ गया। युवक की निर्भयता और साथ ही निर्लज्जता पर क्रुद्ध होकर उन्होंने कहा-'यह लड़की तुम्हारी क्या लगती है? इसके साथ तुम्हारा रिश्ता क्या है?'

वृद्ध ने सोचा था, इस प्रश्न से युवक का चेहरा उतर जाएगा। उन्होंने अपने प्रश्न के प्रभाव को जाँचने के लिए युवक की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। युवक का चेहरा पहले की तरह था, उसने सकुचाते हुए युवती से पूछा-'तुम्हीं बताओ, रिश्ते में तुम मेरी क्या लगती हो?'

मारे लज्जा के युवती का मुँह झुक गया और होठों पर मुस्कान दौड़ गई।

युवक ने वृद्ध महाशय की ओर देखते हुए कहा-'छोटी आयु में ही

हमारा विवाह हो गया था। विवाह के बाद लोग इस लड़की को दिखा-दिखा कर मुझ से कहते - देखो, देखो, यह तुम्हारी पत्नी है। इसी तरह मुझे दिखा कर इससे कहते - देखो यह तेरा पति है। किन्तु अब इस क्रम में अन्तर आ गया है। यह स्वयं पति बन गई है। इसकी मर्दानगी से तंग आ कर मैं घर से चला गया था। जाते समय आप से झगड़ा भी कम नहीं हुआ था। पिछले तीन दिनों में मैंने न जाने कितनी गलियाँ छान मारीं। गत रात को ही हम दोनों में थोड़ा समझौता हुआ है।'

वृद्ध ने अपनी पत्नी की ओर और पत्नी ने अपने पति की ओर कुतूहल के साथ देखा। फिर दोनों हँस पड़े। वृद्ध ने युवक को गले लगा कर कहा - 'वाह! तुम भी खूब छिपे रुस्तम निकले।'

वृद्ध की पत्नी ने युवती के गालों पर हाथ फिराते हुए कहा - 'मैंने तो तुम्हारे चाचाजी से पहले ही कहा था कि तुम खरा सोना हो।'

काफ़ी पीकर वृद्ध महाशय तेईसवें चौराहे से तीसवें चौराहे तक पैदल चले गये। मार्ग में जिस किसी ने उस युवती की चर्चा की, उसी पर अपनी सारी भड़ाँस निकालते हुए बोले - 'छिः, बन्द करो बकवास! तुम्हें किसने यह खबर सुनाई। सब झूठ है, सरासर झूठ।'

इल्लिंदल सरस्वतीदेवी

परिचित पथ

बालक सुब्बाराव डगमगाते हुए अपनी माँ के पास पहुँचा। उसके हाथ में चमेली के दो फूल थे। वह उन फूलों को माँ की वेणी में खोंसने का प्रयत्न करने लगा।

सुभद्रा घर के पिछवाड़े चटाई पर बैठी चार दिन की वेणी खोल रही थी। वेणी खोलते समय उसकी दृष्टि अस्ताचलगामी सूर्य पर लगी हुई थी। बालक सुब्बाराव का घर स्टेशन के पास नहीं है, फिर भी वहाँ से आती-जाती रेलगाडियाँ उस घर के पास से पूरब की ओर जाती हैं। वह गाड़ी सीटी बजाती बड़ी तेज चाल से गुजरती है। उस सन्ध्या को रेल की गड़गड़ाहट के समाप्त होते होते सुभद्रा के गालों पर आँसू चमक उठे।

ठीक इसी समय बालक सुब्बाराव ने अपनी माँ की वेणी में दोनों फूल खोंस दिये और माँ के मुँह के सामने अपना मुँह ले जाकर निहारने लगा।

'जा यहाँ से'-इतना कह कर माँ ने बालक को अपने पास से दूर कर के अपने आँसू पोंछ लिये।

बालक की आयु कम थी, किन्तु उस में क्रोध की मात्रा कम नहीं थी। उसके स्वभाव में इतना क्रोध क्यों न होता, जब कि उसकी हिमायत लेनेवाली दो-दो बूढ़ियाँ घर में थी। वह अच्छी तरह रोना प्रारंभ भी नही करता था कि दोनों बूढ़ियाँ उसे मनाने लग जाती हैं। माँ के इस तरह हटाते ही बालक जोर से रो पड़ा, उसे आशा थी कि दोनों बूढ़ियाँ रोने को सुन कर दौड़ी आएँगी। उसकी आशा के अनुकूल दोनों [illegible]ँ दौडी-दौडी बालक के पास पहुँच गईं।

'क्यों रोता है रे?'-बंगारम्मा ने पूछा।

'बेचारे बच्चे पर इतना गुस्सा क्यों निकालती है री?' जानकम्मा इस तरह अपना असन्तोष प्रकट कर के बालक को घर के भीतर ले गई।

सुभद्रा ने मुँह उठाकर दोनों बूढ़ियों को देखा, तुरन्त ही उसका सिर झुक गया।

'उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो इतना डाँटती-डपटती हो? कल भी तुमने 'अभागा', 'दरिद्र' आदि कह कर उसे कोसा था सो क्यों? क्या मेरे काना नहीं हैं? पागल कहीं कि तुम इस बालक को दरिद्र बताती हो? असल में दरिद्र तो वह आदमी है जो स्वर्ग जैसे इस परिवार को, सेब की तरह लाल-लाल इस बालक को छोड़ कर अनेक यतनाएँ सहता गाँव-गाँव और दर-दर की ठोकरें खाता भटक रहा है। वह निस्सन्देह दरिद्र है। समझी कि नहीं? हाँ!' बंगारम्मा चटाई पर बैठते हुए इतना सब एक साँस में कह गई।

सुभद्रा का दुःख उमड़ आया। हिचकियाँ भरने लगीं। बंगरम्मा ने बात शुरू की - 'सुना है, वह इस समय कलकत्ते में तरह तरह की आफतें झेल रहा है। मुझे अवधानी के बेटे मुरली ने बताया है। किसी के यहाँ सवा सौ रुपये मासिक पर नौकरी कर रहा है। सब कुछ होते हुए भी उसे सुख नहीं। इधर-उधर भटकता फिर रहा है। उस से बढ़ कर दरिद्र कौन होगा?'

बंगारम्मा का क्रोध इतना कहने पर भी शान्त नहीं हुआ। सुभद्रा उसकी बात पर कान दे या न दे, वह अपने मन की भँडास निकाले बिना नहीं रह सकती। बोली - 'तुमने इस बच्चे को अभागा कहा था। तुम दोनों को इस बालक ने अलग नहीं किया है। मैंने सुना है तुमने किसी से कहा था - 'यह बच्चा पैदा न होता तो कितना अच्छा रहता; किन्तु यह बताओ इस बच्चे का दोष क्या है? हमारे इस खानदान में सन्तान के कारण कभी दरिद्रता नहीं आई।'

सुभद्रा अपने मन की बात बुढ़िया को सुना कर अपना हृदय हलका करना चाहती थी, किन्तु उसे साहस नहीं हुआ। इन बूढियों को यह

बच्चा चाहिए। सुभद्रा की व्यथा अथवा शेषगिरि का इस तरह अनजान बडे शहर में मारे-मारे फिरने से उनका कोई मतलब नहीं।

'उसने मुझ से बैर बाँधा है। घर से भाग गया है। मुझ पर रौब गाँठना चाहता है। मैंने उससे एक ही तो बात कही थी। मैंने इस बच्चे का नाम 'सुब्बाराव' रखना चाहा था, लेकिन वह कोई दूसरा नाम चाहता था। यह नाम उसे पसंद नहीं आया। उसने कितना तर्क किया था! कहा था-नाम छोटा होना चाहिए, सुन्दर होना चाहिए, बोलने में आसान होना चाहिए, किन्तु मैंने उसकी एक न मानी। मैंने स्पष्ट कह दिया था कि तुम दूसरा नाम नहीं रख सकते। तुम्हें अपने बेटे के नाम रखने का कोई अधिकार नहीं है, उस पर उसने कहा था कि यदि मैं अपने बेटे का नाम भी नहीं रख सकता तो इस परिवार के साथ रहने से ही क्या लाभ? आगा-पीछा सोचे बिना ही वह अपना सामान लेकर घर से चला गया। घर से तीन बजे गया था। छह बजे तक स्टेशन से कोई गाड़ी नहीं छूटती थी।'

बंगारम्मा ने अपनी बहू से एक गिलास ठंडा पानी मँगाया। पानी पीकर उसने फिर कहना शुरू किया -

'बहुत दिनों की बात है। सिंहाचलम माँ के पेट में था कि उनके पिता का देहान्त हो गया। जब सिंहाचलम पैदा हो कर बड़ा हो गया तो चालीस साल की आयु तक कोई सन्तान नहीं हुई। उनकी पत्नी गंगम्मा ने अनेक उपवास किये। जप-तप में भी कोई कसर नहीं रखी। काशी और रामेश्वर हो आई, किन्तु किसी देवता की कृपा नहीं मिली।

कार्तिक का महीना था। नागचतुर्थी के दिन सुमंगली स्त्रियाँ उपवास करके वाल्मीकों पर दूध गिरा रही थीं। गंगम्मा ने भी अन्य युवतियों के साथ दूध गिराया। नैवेद्य दिया। गिलास में थोडा दूध बच गया था। उसने रहा-सहा दूध भी वाल्मीकि पर गिराना चाहा ही था कि उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया था। उसे प्रतीत हुआ था कि कोई साँप उसकें शरीर से लिपट गया है। वह वाल्मीकि पर ही बेहोश हो गई।

नौ महीने तक वह बेहोश रही। उसे सदा साँपों की फुंकार सुनाई देती। फुंकार सुनते ही धड़ाम से गिर जाती। दवा-दारू हुई। किन्तु किसी दवा ने गुण नहीं किया। दसवें महीने उसने साँप के बच्चे को जन्म दिया। उस सँपेले पर सभी को आश्चर्य हुआ। गंगम्मा फिर बेहोश होगई।

उस सँपेले ने नारी के गर्भ से जन्म लिया था, इसीलिए संभवत: वह अच्छे स्वभाव का था। सँपेला एक टोकरी में रख दिया गया। सँपेले के बाद एक एक करके गंगम्मा के दस बच्चे हुए।

एक दिन वह साँप छोटे-से गढ़े में लेटा हुआ था। उस घर की बड़ी बहू ने उस साँप पर ऊपले चिने और ऊपलों के ढेर में आँच डाल दी।

जब से वह साँप पैदा हुआ था, इस घर के दिन बदल गये थे। घर में सब तरह के सुख थे। धन-धान्य से भरा था। किन्तु जैसे ही बड़ी बहू ने वह साँप जलाया उस घर में दरिद्रता का खुला नाच होने लगा! महीना भर भी नहीं हुआ था, घर के सब बच्चे मर गये। बड़ी आयु के लोग भी एक-एक करके परलोक सिधारे।

इसके बाद घर में जो बचा, उसने नागदेवता की पूजा की और फिर से जमीन-जायदाद कमाई।

'हमारें वंश के लोग नाग-पूजा के कारण ही सम्पन्न बने। सुभद्रा तुम्हीं बताओ, वह इस नाम का विरोध क्यों करता था? यह नाम उसे पसंद नहीं आया। न आने दो। मेरा बिगडा इससे? गुस्सा उतरने पर वह अपने आप लौट आएगा। न आया तो, न सही। बस इतना ही करेगा न?'

कहानी समाप्त करके बंगारम्मा ने गिलास भर पानी पिया। पानी पीने के बाद वह पंखा झलने लगी।

उस रात दोनों बूढ़ियों ने बड़ी कठिनाई से सुभद्रा को भोजन कराया। बूढ़ियों ने स्पष्ट रूप से कह दिया था कि सुभद्रा भोजन न करेगी तो वे दोनों भी भूखी सो जाएँगी। उन दोनों ने न जाने कितनी सौगन्ध धराई थी।

जब सुभद्रा खाना खा कर थाली से उठी तो रात के बारह बज चुके थे।

× × × ×

दोपहर के दो बजे थे। दोनों बूढ़ियाँ सो रही थीं। सुभद्रा कमरे में बैठी काले मनके गूँथ रही थी? सुभद्रा का बेटा पड़ौस के लड़कों के साथ खेल रहा था।

'रंगा, तुम्हें ये खिलौने कहाँ से मिले?'

'मेरें बाबूजी शहर से लाये हैं। मेरे लिए एक खिलौना, मेरी बहन के लिए एक। दो खिलौने लाये हैं। खिलौने अच्छे हैं न? इस खिलौने को जमीन में सुला दो तो वह अपने आप खड़ा हो जाता है।'

'बहुत अच्छा खिलौना है! मेरें हाथ में दो न! देख कर रख दूँगा।' सुब्बाराव ने कहा। सुब्बाराव की बात सुन सुन कर सुभद्रा का कलेजा बैठा जा रहा था।

'ऊँ हूँ, मेरे बाबूजी लाये हैं। यह खिलौना मैं कैसे दूँ? मेरी माँ नाराज हों जाएगी।'

'मेरे लिए दादी मँगवा देगी।' सुब्बाराव ने उत्तर दिया।

'ओह, तुम्हारे लिए दादी मँगवाएगी! मेरे लिए तो बाबूजी लाते हैं।'

'मैं भी बाबूजी से मँगवाऊँगा।' सुब्बाराव की यह बात उसके आहत आत्मभिमान की साक्षी दे रही थी। इस बात को सुनकर तो सुभद्रा का हृदय काँप उठा।

'तुम्हारे बाबूजी कहाँ है? तुम अपने बाबूजी की बात झूठ कहते हो।' पडौसी का लड़का इतना कह कर हँस दिया।

धागे में काले मनके आसानी से नहीं पिरोये जा रहे थे। सुभद्रा अपने दाँतों से धागे को काट कर छोर को अँगुलियों में मींडने लगी। उसकी आँखें भर आई थीं, इसीलिए मनके का छेद दिखाई नहीं दे रहा था। उसने काले मनकों को कागज में रख कर पुडिया बाँधी। पुडिया एक

ओर रख कर बरामदे में आकर उसने देखा - उसका बेटा वहाँ नहीं था।

सुब्बाराव घर का फाटक पार कर के आज तक अकेला बाहर नहीं गया था।

दोनों बूढ़ियाँ खर्राटे भर रही थीं। सुभद्रा ने उन्हें जगाना उचित नहीं समझा। वह अकेली ही बरामदे से चल कर फाटक के पास पहुँची। दूसरे ही क्षण पड़ोसी के द्वार पर पहुँच कर भीतर की ओर देखने लगी। उस घर का लड़का सुब्बाराव का साथी है।

सुभद्रा ने सोचा था, सुब्बाराव अपने साथी के साथ खेलता-खेलता वहाँ आ गया होगा, भीतर जाने में संकोच हो रहा था, इसीलिए वह बाहर खडी - खडी भीतर की आहट लेने लगी।

भीतर से किसी की बातचीत सुनाई दे रही थी किन्तु कुछ समय तक प्रतीक्षा करने पर भी सुब्बाराव और उसका साथी बाहर नहीं आया।

'सुब्बाराव, तुम उदास क्यों हो?'

'कहो बेटा, बात क्या हुई?'

उत्तर के स्थान पर सुभद्रा को सिसकियाँ सुनने लगीं।

'मेरे मुरली ने तुम्हें पीटा तो नहीं? रोता क्यों है बेटा?'

'ऊँ हूँ'

'फिर क्यों रो रहा है? माँ ने मारा है?'

'नहीं।'

'दादी नाराज हो गई?'

'नहीं।'

'तब क्यों रोता है? बता तो सही।'

बच्चा फूट-फूट कर रोने लगा। सुभद्रा भीतर जाना चाहती थी, किन्तु वह अपने ऊपर काबू नहीं पा सक रही थी!

इसके बाद किसी पुरुष का स्वर सुनाई दिया। पुरुष ने मुरली को अपने पास बुला कर सुब्बाराव के रोने का कारण पूछा तो मुरली ने सारी

बात कह सुनाई।

'बेटा, तुम्हें सुब्बाराव के पिता की बात नहीं मालूम। तुम बड़ों बातों में क्यों पड़ते हो? कनकम, देखो इन बच्चों का झगड़ा कहाँ से कहाँ पहुँच गया। सुब्बाराव अभी छह वर्ष का हुआ है। उसने अपने पिता को आँखों से नहीं देखा, फिर भी कितना प्यार है! सुनते हैं, परसों यह लड़का किसी से अप्रसन्न होकर अपने पिता के पास जाने की हठ कर बैठा। इसकी उस हठ को देख कर दोनों बूढ़ियाँ भी रोने लगी थीं। सुभद्रा को भी रोना आ गया? तुम जानती हो, इसका पिता शेषगिरि किससे क्रुद्ध है?'

सुभद्रा एक क्षण भी वहाँ नहीं ठहर सकी। एक साँस में ही वह अपने कमरे में आ गई। चारपाई पर औंधे मुँह फूट-फूट कर रोने लगी। वह इस तरह कब तक रोती रही कौन जानता है!

सुभद्रा यह सोच सोच कर उद्विग्न हो रही थी कि उसके पति के गृह-त्याग ने इस नन्हे से बालक पर कितना बुरा प्रभाव डाला है।

पडौसी के घर में बच्चे का सुन्दर मुखड़ा देख देख कर सभी ने प्यार किया। वे लोग मन ही मन शेषगिरि की निर्दयता को बुरा-भला भी कह रहे थे।

× × × ×

सुबह सात बजे के लगभग उत्साह बटोर कर शेषगिरि ने स्टो पर काफी बना कर पी।

इसी समय किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी। शेषगिरि कराहता दरवाजे पर पहुँचा। उसने किवाड़ खोल कर देखा तो सामने चलपति खड़ा था। शेषगिरि चकित रह गया।

'कैसे आये? अन्दर आओ।' शेषगिरि ने कहा। उसका विचार था बूढ़ियों ने चलपति को भेजा होगा।

'तुम्हें देखने आया हूँ।' चलपति बोला।

'देख चुके तो लौट जाओ।'

'जाना तो है ही ··· थोड़ा - सा काम और बचा है।'

'उसे भी जल्दी पूरा कर डालो।'

'बुखार आ रहा है? बहुत कमजोर हो गये हो। खाये-पिये कितने दिन हो गये? संन्यासियों की तरह यह डाढ़ी क्यों बढ़ा ली है?' चलपति ने कमरें में दाखिल होकर चारों ओर ध्यान से देखा। सामान बिखरा पड़ा था। सामान पर धूल जमी हुई थी।

'यहाँ क्या करते हो?'

'कुछ भी करूँ - उपवास करता हूँ! तुम सब को मेरी चिन्ता क्यों है?' भौंहें सिकोड़ कर शेषगिरि ने कहा।

'आखिर कोई कारण भी तो होगा?'

'कारण कुछ भी हो, तुम्हें क्या दूत बना कर भेजा गया है?' शेषगिरि ने प्रश्न किया।

'दूत बन कर नहीं आया हूँ। इस नगर में काम से आया था। सोचा, तुम से मिलता चलूँ। इसी लिए चला आया। लेकिन, . . . भाई - 'सुभद्रा बहुत दुबली हो गई है। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारा वियोग उन लोगों को और कितना दुःख भुगाएगा?'

'तब कहते क्यों नहीं कि दूत बना कर भेजे गये हो . . . मेरे लिए वह क्यों दुबली होने चली? निरा पागलपन है उसका। कम से कम मेरे आने का कारण बूढ़ियों से पूछ लेती?' शेषगिरि इतना कह कर हँसने लगा।

'तुम्हारा बेटा सुब्बाराव छह वर्ष का हो चुका है। वह नित्य अपने बाबूजी के पास जाने का हठ ठानता है। उसकी हठ का तुम्हारे पास क्या उत्तर है?'

'उस बच्चे को बाबूजी क्यों चाहिएँ? दो दो बूढ़ियाँ तो घर में हैं। तुम्हारी इस तरह की बातों से मैं विचलित नहीं होऊँगा भैया।'

'अरे भाई, तुम अपना गुस्सा किस पर उतारते हो? हम तो तुम्हारे गुस्से का कारण नहीं जान पाये। हम लोगों से तुम्हारे परिवार की हालत

नहीं देखी जाती। तुम्हारा बेटा तुम्हारे लिए प्रतिदिन रोता है। परसों खिलौनों के लिए ही रो रहा था। तुम्हें दया नहीं आती?

'चलपति, ये सब पुरानी बातें हैं। तुम उन बूढ़ियों को नहीं पहचानते। वे चाहती हैं कि मैं अपने पिता की तरह गाँव में कुर्सी पर बैठकर वकालत करूँ। वे समय के साथ बदलना नहीं चाहतीं। इन बतों की चर्चा से क्या लाभ?'

चलपति कुछ बोलना चाहता था, किन्तु शेषगिरि ने कहने का अवसर नहीं दिया। उसने चलपति को घर से बाहर पहुँचा कर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

शेषगिरि का मन वेदना से भर गया। कमरे में इधर-उधर पागल की भाँति चक्कर मारने लगा।

शेषगिरि के शरीर में रत्ती भर शक्ति नहीं रह गई थी। वह स्टो के सामने बैठ कर थोड़ी देर तक ऊँघता रहा। जब उसने आँख खोलकर देखा तो कोने में पड़े हुए खाली डब्बे दिखाई दिये। कलकत्ते में नौकरी की तलाश करते-करते वह थक चुका था। पास का पैसा चुक गया। गाँव में उसका अपना बड़ा घर था, घर में रुपया-पैसा और सुख के सब साधन थे। उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी, वह इतनी शिक्षा पाकर बूढ़ियों के इशारे से पुरानी लकीर का फ़कीर नही बनना चाहता था। वह मन ही मन गुनगुनाने लगा - 'बच्चे का अच्छा-सा नाम नहीं रखने देगी। कैसी बुढ़ियाँ हैं? सुभाद्रा भी विचित्र है।.... उन बूढ़ियों के सामने रोने की अपेक्षा वह अपने लड़के को वहीं छोड़कर मेरे पास क्यों नहीं चली आती?.... सुभद्रा भी पुराने विचारों को पसन्द करती है शायद, अन्यथा मुझे अपने मन की बात साफ साफ लिख देती।.... करूँ तो क्या करूँ?

अपने शरीर की बची-खुची शक्ति इकट्ठी करके शेषगिरि उठ खड़ा हुआ। तेल का डब्बा एक थैली में डालकर चल पड़ा। बड़ी दूकानों से थोक खरीद कर शेषगिरि इन डब्बों को खुदरा ग्राहकों को बेचता है। एक

दर्जन डब्बे बिकते हैं तो दो रुपये की मजूरी होती है। दो दर्जन डब्बे जब तक न बिकें, उसका दिन भर का खर्च नहीं निकलता।

इधर चार दिन से वह बिस्तर पर पड़ा था। आज दोपहार के दो बजे तक वह डब्बे बेचता रहा। फिर होटल में भोजन करके वह अपने कमरे के लिए चल पड़ा। वह बस से जाना चाहता था किन्तु जेब में एक पैसा भी नहीं था।

पैदल चलते-चलते थक कर चूर हो गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। किसी तरह सांयकाल वह अपने शरीर को कमरे में घसीट कर ला सका। कमरे में पहुँचने के बाद उसे होश नहीं रहा।

आधी रात बीतने पर कहीं उसे होश आया। जोर की प्यास लगी थी। उसने सुराही से दो गिलास पानी पिया। उसे प्रतीत हुआ बुखार के कारण उसका शरीर टूटा जा रहा है। पसीने के मारे पूरा शरीर तर था। उसने खड़े होकर खिड़कियाँ खोलीं और फिर बिस्तर पर बैठ गया।

दूर घंटाघर में दो बजने की आवज़ आई।

आँखें नहीं झपक रही थीं। वह इधर-उधर करवटें बदलने लगा। जब प्रयत्न करने पर भी नींद नहीं आई तो एक किताब पढ़ने लगा। किताब पढ़ते-पढ़ते न जाने कब सो गया। किताब ने उसका मुँड ढँक लिया था।

सुबह हुई। कोई आठ बजे के लगभग शेषगिरि चौंक कर उठ बैठा। उसकी लाल-लाल आँखों से पानी बह रहा था। हवा का झोंका ऐसा आया कि खिड़की में रखा अखबार और कमरे में पड़े हुए कागज उड़कर उसके बिस्तरे पर फैल गये। शेषगिरि की दृष्टि एक कागज पर टिक गई। आँखें मल कर उसने स्मरण करना चाहा कि यह कागज यहाँ कैसे आ सका?

शेषगिरि ने उस कागज से अपनी दृष्टि हटाने का बहुत प्रयत्न किया।

दृष्टि वहाँ से हटी, तो मन नहीं हटा। मन हट गया तो दृष्टि फिर उसी पत्र में उलझ गई।

उसने सोचा, संभवतः कल चलपति यह कागज छोड़ गया है। दुष्ट कैसा उत्पात कर गया है?

शेषगिरि को चलपति पर क्रोध आ रहा था। इस क्रोध के कारण वह उस कागज की ओर से दृष्टि हटाना भी भूल गया। घुँघराले बाल, दूज का चाँद जैसा मुख, चंचल आँखें - इन सब को देख कर शेषगिरि उस कागज से अपनी दृष्टि नहीं हटा सका।

शेषगिरि ने प्रयत्न करके मुँह दीवार की ओर फेर लिया और फिर धीरे - धीरे काफ़ी पीने लगा। इसी समय उसे अनुभव हुआ जैसे उसकी पीठ पर कोई चीज सरक रही है। पीठ पर हाथ ले जाकर उसने घूम कर देखने का प्रयत्न किया तो वही प्यारा - प्यारा हँसमुख चेहरा दिखाई दिया।

उसने मन ही मन चलपति को कोसा - 'दुष्ट, इस छोटे-से कमरे में भी मुझे नहीं रहने देना चाहता!'

किन्तु उस चीत्र को वहाँ से दूर रखने की इच्छा नहीं हुई।

× × × ×

संक्रान्ति आ रही थी।

भजन - कीर्तन करनेवालों को कुछ देने के लिए ज्यों ही बंगारम्मा की बहू ने दरवाजा खोला, उसे आँगन में पड़ा विस्तर तथा ट्रंक दिखाई दिया। बिस्तर और ट्रंक देखकर बहू का हृदय मारे आनन्द के उछलने लगा। कमरे के अधखुले दरवाजे से उसे परिचित स्वर सुनाई दिया। वह जहाँ खडी थी वहीं स्तब्ध खड़ी रही।

'बेटा एक बार मुस्करा दे।' बूढ़ी कितने वर्षों से बेटे का स्वर सुनने के लिए विकल थी। नेत्रों से आनन्द के आँसू टप - टप टपकने लगे।

'बाबूजी के लाये हुए खिलौने तुम्हें चाहिएँ?

फिर वही स्वर सुनाई दिया।

एक साँस में ही वह बंगारम्मा के पास पहुँच गई।

'इन आँखों की ज्योति बुझने से पहले तुम आ गये बेटा?' दोनों बूढ़ियों ने अपने आँसू पोंछे।

बालक पिता के लाये खिलौने बूढ़ियों को बता कर अपनी खुशी प्रकट कर रहा था।

उस लड़के ने अभिमान के साथ पूछा - ' दादीजी, तुमने मेरे मित्र का वह खिलौना देखा था, जो उस के बाबूजी लाये थे, अब मेरें बाबूजी का लाया हुआ खिलौना भी देखोगी न ? '

इसके बाद सुब्बाराव ने एक हाथ में तो अपने बाबूजी के लाये खिलौने पकडे और दूसरे हाथ से अपने बाबूजी को थामा। वह इसी हालत में घर भर में टहलने लगा।

उस छोटे लड़के को अपने पिता के साथ घर भर में टहलता देख बंगारम्मा के मन में अनान्द के सप्तसागर उमड़ने लगे।

एन. आर. चन्दूर

मंगलोर मेल

बम्बई मेल, कलकत्ता मेल, बेंगलोर मेल न जाने कितनी मेलें हैं। किन्तु मंगलोर मेल की बात ही दूसरी है। उसके नाम से ही मुझे चिढ़ है। इस मेल ने मेरे साथ अन्याय किया है। उसे देखते ही मेरे पेट में खलभली मच जाती है।

मंजुलता मंजुला और मंजु ये एक ही युवती के नाम हैं। मंजुला आज स्मृतिमात्र रह गई है। ऐसी स्मृति जिसे शान्ति के समय स्मरण किया जा सकता है। समय के साथ मनुष्य भी स्मृति का रूप ले लेता है। आखिर जीवन में क्या शेष रहता है-स्मृति ही तो शेष रहती है। कुछ स्मृतियाँ आनन्द देती हैं तो कुछ तीव्र वेदना। कुछ स्मृतियाँ मार्ग में मील के पत्थरों की भाँति जीवन की गतिविधियों का स्मरण कराती हैं, किन्तु मंजुला मील का पत्थर बनकर नहीं रही, वह प्रकाशकी अनोखी किरण है, एक अपूर्व अनुभूति है।

बारह वर्ष बीत गये, किन्तु मंजुला आज भी मेरी आँखों में है। कोई मलयाली युवती दिखाई देती है तो उसमें मुझे मंजुला का प्रतिबिम्ब दिखाई दे जाता है। मंजु मेरी हृदयेश्वरी है, मेरे हृदय का हृदय है। उसे ले कर कहानी की रचना करना कठिन है। हम दोनों के बीच अथवा हमारे आसपास ऐसी घटनाएँ अधिक मात्रा में नहीं घटित हुई कि उन्हें कहानी का रूप दिया जा सके। फिर दिन-रात के व्यवहार में हमारे जीवन में जो पात्र आते हैं, वे कहानी के पात्रों की भाँति किसी खास सिलसिले से तो आते नहीं। कहानी के पात्र विशेष परिणाम के लिए विकसित होते हैं, किन्तु जीते-जागते लोगों को तो किसी निश्चित परिणाम के लिए विकसित

नहीं किया जा सकता। ये जीते - जागते लोग एकाएक प्रकट होते हैं और हमारे - जीवन - क्रम को बदल कर परिणाम की चिन्ता किये बिना सहसा अदृश्य हो जाते हैं। कहानी के पात्रों को लेखक की इच्छा तथा विचार - धारा के अनुसार आचरण करना पड़ता है, किन्तु जीवित व्यक्ति अपनी इच्छा रखते हैं, उनका अपना दृष्टिकोण होता है। परिस्थिति के अनुसार भी उन्हें आचरण करना पड़ता है। इसलिए यादि मैं यहाँ जीवन का एक पृष्ठ निकाल कर पाठकों के समाने रखूँ तो उसमें कहानी के लक्षणों का अभाव हो सकता है।

बारह वर्ष पूर्व मैं एक होटल में तीसरी मंजिल के नौ नम्बर के कमरे में रहता था। टर्नीव के 'जू' नामक उपन्यास की कथा अब मुझे स्मरण नहीं है, किन्तु इतना याद है कि उस उपन्यास को पढ़ कर मैंने अपने कमरे में आँसू बहाये थे। उसी होटल में रहते समय दास्तावस्की के 'क्राइम ऐण्ड पनिशमेण्ट' उपन्यास को पढ़ कर मैं दिन भर भोजन नहीं कर सका था। किन्तु आज मेरा हृदय उसी तरह भावनाशील नहीं है, अब मैं बात को तर्क के माध्यम से पाना चाहता हूँ, मैं एक उपन्यास की दूसरे उपन्यास के साथ, एक लेखक की दूसरे लेखक के साथ तुलना करता हूँ। तब और अब में अनुभव करने की शक्ति में बहुत अन्तर आ गया है। तब मेरा हृदय बहुत कोमल था, आज मेरा हृदय पत्थर बन चुका है।

इस समय मेरा हृदय कठोर बन चुका है, किन्तु तब वह नवनीत के समान कोमल था। वह मेरे यौवन का प्रारंभ काल था।

होटल में स्थायी रूप से रहने में विशेष आनन्द मिलता है, स्थायी रूप से रहने का तात्पर्य सदा के लिए रहना नहीं है, छह महीने या साल भर लगातार रहना है। कुछ लोग इस तरह लंबे अर्से के लिए होटल में रहते हैं। वैसे वहाँ लोग आते-जाते रहते हैं। लम्बे अर्से तक रहनेवाला व्यक्ति वहाँ प्रतिदिन नये नये चेहरे देखता है। शहर के होटल में नये चेहरों की क्या कमी? नगर देखने के लिए आनेवाले ग्रामीण, घर से भागे हुए युवक-युवती, व्यापार के लिए आनेवाले व्यवसायी लोग, घुड़दौड़ में

मनमाना पैसा बटोरने के लिए आये हुए उत्साही व्यक्ति - कितनी तरह के लोग होते हैं। लोग चार-छह दिन के लिए आते हैं, जब कोई व्यक्ति लम्बे अर्से के लिए टिक जाता है तो उसके प्रति सहज रूप से ही होटल के लोग अधिक आदर-भाव प्रकट करने लगते हैं।

कर्मचारी ही नहीं होटल का मालिक भी मेरे प्रति सम्मान प्रदर्शित करते थे। होटल का मालिक दो - तीन दिन में मेरे कमरे में आकर कुशल - मंगल पूछ जाता था। वैसे अन्य लोगों की भाँति मैं भी होटल का एक मुसाफिर था, फिर भी उस होटल का मालिक मेरे प्रति आत्मीयता रखता था। किन्तु सेठजी की इस आत्मीयता से मेरा कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, हाँ इनाम को देख कर होटल के कर्मचारी मेरा काम यथासमय कर देते थे।

मुझ से प्रश्न किया जा सकता है कि मैं होटल में क्यों रहता था? इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ? बस, वहाँ रहने को जी चाहता था। मैं उन दिनों कहानियाँ लिखता था। (ये कहानियाँ छपती भी थीं), खूब पुस्तकें पढ़ता था और खा - पीकर घूमने निकल जाता था। बैंक में मेरे नाम से अच्छी खासी रकम जमा थी। उन दिनों उस बडे भारी नगर में मेरा एक ही मित्र था। मेरे उस मित्र का नाम था 'वेंकटपति' किन्तु पूरे नाम से पुकारा जाना उसे पसंद नहीं था। वह चाहता था कि मैं उसे केवल 'पति' नाम से पुकारूँ। मित्र 'पति' का जीवन भी एक वियोगान्त नाटक ही समझिये। वह गरीबी से घिरा हुआ था। प्रतिदिन साठ - सत्तर हजार रुपये का लेन - देन करता था, किन्तु सन्ध्या को काफी पीने के पैसे भी नहीं बचते थे। वह बैंक में कैशियर का काम करता है। जब मैं होटल में रहता था, वह सप्ताह भर में मुझ से चार - पाँच रुपये ले जाता। जब छह - सात सप्ताह में यह रकम चालीस - पैंतालीस रुपये के लगभग पहुँची तो उसने प्रामेसरी नोट लिखकर दे दिया। कुछ ही दिनों में मेरे पास उसके दो - तीन प्रामेसरी नोट हो गये। उसने एक रुपया भी नहीं लौटाया। यह बात नहीं थी कि वह पैसा लौटाना नहीं चाहता था, बेचारे के पास

मेरा कर्ज चुकाने के लिए रुपया नहीं बचता था। विचार करता हूँ तो वेंकटपति को मित्र कहना भी उचित नहीं लगता। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं समय - समय पर उसकी आवश्यकता पूरी कर देता था, इसीलिए वह मेरा साथ चाहता था।

चला था मंजुलता की कहानी सुना ने और सुनाने लग गया सेठ और वेंकटपति की कहानी। सेठ होटल का मालिक था और वेंकटपति था मेरा परिचित व्यक्ति।

एक दिन सन्ध्या के छह बजे वेंकटपति मेरे कमरे में आया। उसने बीड़ी पीते हुए (वह सिगरेट की अपेक्षा बीड़ी पीना ही पसंद करता था) बोला - 'पाँचवें नम्बर के कमरे में एक तितली आई है!'

मैं किसी नारी की अवहेलना अब क्या, उन दिनों भी सहन नहीं कर सकता था। किसी बनी–ठनी युवती को हम तितली कह सकते हैं? पराई युवती को तितली कहने वाले व्यक्ति की पत्नी या बहन को कोई तितली कहे तो कैसा रहे? मुझे इसी लिए वेंकटपति पर क्रोध आ गया था। मैंने बिना सोचे-समझे उसके मुँह पर तीन-चार थप्पड़ जड दिये थे, किन्तु उसने किसी प्रकार का प्रतिवाद नहीं किया था।

कुछ देर बाद पति ने मौन भंग करते हुए कहा- 'औरतों को सिर पर बैठाना मुझे पसंद नहीं है।'

'क्या हम शिवजी से भी बड़े हैं?' मैंने पूछा।

थोड़ी देर तक गपशप करने के बाद हम सिनेमा देखने गये। जब रात के नौ बजे लौटा तो सेठजी मेरे कमरें के पास चक्कर लगाते मिले। सेठजी होटल से सात बजे घर पहुँचते थे, वहाँ से अपनी पत्नी को साथ लेकर रोजाना 'बीच' पर घूमने चले जाते थे। उस दिन उन्हें वहाँ देख कर मुझे आश्चर्य हुआ था। जैसे ही उन्होंने मुझे देखा, वे उछल कर बोले —

'आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था, साहब!'

'क्या बात है?'

'पाँच नम्बर के कमरे का मुसाफिर सुबह से दिखाई नहीं दे रहा है। कमरे में उसकी पत्नी है। उस मुसाफिर की तरफ होटल के अट्ठारह रुपये बारह आने बाकी हैं।'

इसके बाद सेठजी ने पूरी कहानी सुनाई —

'पाँच दिन पहले बम्बई से रामनाथ इस होटल में आया था। हम लोगों ने अग्रिम रुप से दस रुपये माँगे थे, उस भले आदमी ने पाँच रुपये ही दिये। कह दिया बाकी रुपये कल दूँगा। तीन दिन तक वह कमरे में अकेला रहा, परसों शाम को अस्पताल से एक युवती कमरे में आई है। जब-जब रुपये का तक़ाजा किया गया, कल-परसों का नाम लेकर टाल गया। कल सन्ध्या को उससे कमरा खाली करने के लिए कहा गया। आज सबेरे उन लोगों को नाश्ता दिया गया, किन्तु दोपहर के समय भोजन नहीं कराया गया। रामनाथ सवेरे सात बजे निकला था, अब रात के नौ बजे तक भी नहीं लौटा। हम लोगों के सामने प्रश्न यह है कि इन लोगों को होटल से कैसे निकाला जाये, प्रतिदिन तीन रुपये का नुक्सान हो रहा है।'

मैंने सेठजी से आग्रह किया-'आज रात को खाना तो भिजवा दीजीये। वह युवती संभवत: सवेरे से ही भूखी होगी। आप घर लौट जाइये। रामनाथ रात में बारह बजे तक तो लौटेगा ही। मैं रात में दो बजे तक पढ़ता हूँ। वह आएगा तो बातचीत करके कल सवेरें आपको सूचित करूँगा। उसकी औरत भूखी रहेगी तो हम लोगों पर भी दोष चढ़ेगा।'

सेठ मेरी बात पर विश्वास करके चला गया।

रात के ग्यारह बजे के लगभग रामनाथ बिल्ली की तरह दबे पाँवों होटल में लौटा। रामनाथ छरहरे बदन का था, पक्षी की चोंच सी नाक, रंग साँवरा, चेहरे पर घबराहट। आकृति पर तेज नहीं, आँखें जलती हुईं, व्यथा प्रकट करती हुईं। आयु बाईस-तेईस वर्ष से अधिक नहीं थी।

मैंने बरामदे के दो-तीन चक्कर लगाये। उनके कमरे का एक

दरवाजा बन्द था। पति-पत्नी धीरे-धीरे बात करते हुए भोजन कर रहे थे। वेंकटपति ने जिस युवती को तितली बताया था, मुझे आभास हुआ कि वह दुर्बल और बीमार है। आयु सत्रह साल की रही होगी। उस समय उसने बहुत ही मामूली साड़ी पहन रखी थी। पति-पत्नी की भाषा मैं समझ नहीं पाया। भोजन करने के पश्चात रामनाथ सिगरेट जला कर बरामदे में आया। ज्यों ही उसकी दृष्टि दूर पर खड़े मुझ पर पड़ी, चेहरे पर घबराहट फैल गई, जैसे वह मन ही मन सोच रहा हो सिगरेट पीने के लिए बाहर क्यों आ गया? कमरे में भी तो सिगरेट पी जा सकती थी।'

ट्राम और बसों का आना-जाना बन्द हो चुका था। सुनसान गलियों में इक्के-दुक्के रिकशे दिखाई दे जाते थे। बीच-बीच में रेल के इंजन की सीटी सुनाई दे जाती थी।

मैं सोच रहा था कि रामनाथ से बात कैसे शुरू करूँ, कि रामनाथ ने ही बात शुरू की- ' मेरी पत्नी कह रही थी कि सेठजी आपसे कुछ कह गये हैं। सेठजी की बात मुझे बता सकेंगे?

मैं रामनाथ को गुमसुम रहनेवाला व्यक्ति समझ रहा था, किन्तु वह बातूनी निकला। मैं मन ही मन उसके स्वभाव को परखने की कोशिश करता रहा, कुछ क्षण पश्चात मैंने उसी से कहा- ' सेठजी ने तो कोई विशेष बात नहीं कही। मैं ही आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आपका नाम रामनाथ है न?'

आधा घंटे की बातचीत के बाद मैं रामनाथ के बारे में कुछ जान सका। उसने मेरा परिचय मंजुलता से भी कराया। देखने में रामनाथ कुछ घमंडी भी लगा था किन्तु बड़ा नम्र और सीधे-साफ दिल का युवक निकला। मंजुलता दुबली-पतली होते हुए भी सुन्दर थी। उसकी सुन्दरता मुख रूप से दोनों भौंहों में केन्द्रित थी। ठोडी कुछ लंबी, रेशम के समान बालों को अंग्रेजी ढ़ंग से कटवा रखा था। साडी-चोली साधारण, कानों में लाल लाल-फूल। कर्णफूल के अतिरिक्त शरीर पर कोई आभूषण नहीं।

देखते ही पता चला, वह लम्बे समय से रोगग्रस्त है। तमिल और अंग्रेजी धारा - प्रवाह बोल लेती थी। उसकी दृष्टि से प्रतिक्षण यह प्रकट हो रहा था, कि वह रामनाथ से बहुत प्यार करती है।

बीमारी के कारण मंजुलता चारपाई पर लेटी हुई थी। रामनाथ और मैं दोनों कुर्सियों पर बैठे हुए थे। रामनाथ ने रात में लगभग ११ बजे अपनी रामकहानी प्रारंभ की थी। डेढ़ बजे कहानी समाप्त हुई। जब तक कहानी पूरी नहीं हुई, मंजुलता हम दोनों की ओर देखती रही। हम दोनों ने सोने के लिए बार - बार कहा, किन्तु वह एक ही उत्तर दुहराती रही - 'नींद नहीं आती, यदि नींद आती तो मैं आप लोगों के कहने से पहले ही सो जाती।

रामनाथ और मंजुलता बहुत पहले से एक - दूसरे को प्यार करने लगे थे, किन्तु उन दोनो के विवाह में बहुत बड़ी बाधा थी। अपनें से भिन्न जाति में विवाह करना तो दूर एक जाति में ही जो उपजातियाँ होती हैं, उनमें विवाह करने से भी बहुत बड़ा उत्पात खड़ा हो जाता है। एक तो रामनाथ का परिवार वंश - परम्परा की दृष्टि से कुछ निम्नस्तर का माना जाता था, दूसरे मंजुलता के पिता धनी थे। इन दोनों कारणों से मंजुलता के पिता ने रामनाथ से मंजुलता का विवाह करना स्वीकार नहीं किया। इसीलिए दोनों अपने - अपने घरों से भाग आये। घर से बाहर ही दोनों का विवाह हुआ। मंजुलता की एक बहन मदुरा में डाक्टरी करती थी, उसने अपनी बहन के भागने का समाचार मिला तो बहुत आश्चर्य हुआ। रामनाथ को बम्बई में टाइपिस्ट का काम मिल गया था। इसी काम में उसके तीन वर्ष बीत गये। बम्बई का पानी उसके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। अतः दिन - दिन उसका स्वास्थ्य गिरता गया। मद्रास में रामनाथ का चाचा रहता था, उसने ऐसे समय में भतीजे की सहायता करनी चाही। रामनाथ ने मंजुलता को इसी चाचा के पास भेज दिया। संयोग से मद्रास पहुँचते ही मंजुलता बीमार पड़ गई। चाचा - चाची ने उसे दवाखाने में दाखिल करा दिया। दवाखाने में

मंजुलता का आपरेशन हुआ। चाचा ने रामनाथ को लिखा कि वह नौकरी छोड़कर मद्रास चला आये। चाचा को विश्वास था कि रामनाथ को मद्रास में कोई न कोई नौकरी अवश्य मिल जायेगी। नौकरी से इतना पैसा मिल जाएगा किं पति - पत्नी गुजर - बसर कर सकेंगे। इसी समय रामनाथ के चाचा का किसी दूसरे स्थान पर परिवर्तन हो गया। मद्रास छोड़ने से पहले चाचा ने अपने भतीजे को नौकरी दिलाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। रामनाथ रोज किसी न किसी कम्पनी के मालिक के पास जाता। मंजुलता की बीमारी में सारे आभूषण बिक गये।

उस रात मैं दो बजे अपने कमरे में लौटा था। बिस्तर पर लेटने पर भी नींद नहीं आई। सोचता था, संसार में कितना दुःख है। मनुष्य कितना असहाय है यहाँ! मंजुलता और रामनाथ का भविष्य क्या है? इन लोगों ने प्रेम के कारण विवाह किया है। प्रेम के लिए इन दोनों को इतनी यातनाएँ सहनी पड़ रही है। कन्नबूर अथवा मंगलोर में रहने वाला मंजुलता का पिता इन दोनों से इतना क्रुद्ध क्यों है? मंजुलता के पिता के हृदय में भी तो वात्सल्य, ममता, दया जैसे भाव होने चाहिएँ। क्या वात्सल्य आदि गुण केंवल पुस्तकों में निवास करते हैं? प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख के लिए कार्य करता है। ....

सवेरे सूर्य की सुनहरी किरणों ने थपकी देकर मुझे जगाया।

मैं काफ़ी पीकर अखबार के पन्ने पलट रहा था कि सेठजी आ गये। उन्होंनें अपनी जेब से छोटी-सी पुड़िया निकाली और मेरी मेज़ पर रख दी।

'आप ही देखिये साहब, इस पुड़िया में क्या है। बहुत सवेरे रामनाथ यहाँ से चला गया। अपनी पत्नी से कह गया कि इस पुड़िया का आभूषण मुझे दे दिया जाये। मुझे तो कुछ दाल में काला मालूम होता है।' सेठजी नें ये बातें स्पष्ट रूप से नहीं कहीं, किन्तु मैं इतना भरोसा दिलाता हूँ कि उन्होंने जो कुछ कहा था, उसका सार यही है।

मैंने देखा, पुडिया में मंजुलता के लाल-लाल कर्णफूल थे। मेरा

हृदय व्यथा से भर गया। पिछली रात मैंने कुछ समय रामनाथ और उसकी पत्नी के साथ बिताया था, इसीलिए उन कर्णफूलों को देख कर मुझे इतनी उद्विग्नता हुई। रात में मैंने देखा था कि जब मंजुलता के रेशम-से बालों की लट इन कर्णफूलों पर गिरती थी, एक अपूर्व शोभा उत्पन्न हो जाती थी। उसकी पीली देह पर स्वर्ण का कोई आभूषण नहीं था, केवल ये कर्णफूल ही तो उसके मुखमुंडल को सुशोभित कर रहे थे। मुझे प्रतीत हुआ कि रामनाथ सेठजी की लोह तुल्य मुट्ठी से इन कर्णफूलों को कभी नहीं छुड़ा सकेगा।

'उन लोगों के कर्णफूल उन्हें लौटा दीजिये सेठजी। रुपये मैं चुकाये देता हूँ।' इतना कह कर मैंने २५ रुपये का चेक सेठ के हाथ में रख दिया। सेठजी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे इस बात को समझ ही नहीं सके कि मैं रामनाथ का रुपया क्यों चुका रहा हूँ। सेठजी को छोड़िये, होटल का प्रत्येक कर्मचारी मुझे भला आदमी मानता है। होटल के सभी लोग मुझे बुद्धिमान समझते हैं। इसीलिए किसी ने यह नहीं सोचा कि मैं उस दुबली-पतली, कमजोर लड़की पर मुग्ध हो गया हूँ। इस तरह की आशंका किसी के मन में नहीं हुई कि मैं युवती पर रीझ कर उसके पति का ऋण उतार रहा हूँ। सेठज़ी क्षण भर कुछ सोचते रहे, फिर चेक को अपनी जेब के हवाले करके बोले- 'कर्णफूल उस युवती को दूँ या रामनाथ को?'

'रामनाथ को क्यों देते हैं, मुझे दे दीजिये।' मैंने कहा।

सेठजी ने चुपचाप वह पुड़िया मुझे सौंप दी। संभवतः उस दिन सेठजी को सारा संसार ही रहस्यमय और अगम्य प्रतीत हुआ था।

मैंने कर्णफूल की पुड़िया नौकर द्वारा न भेज कर स्वयं अपने हाथों से देने का निश्चय किया। इस निश्चय में मेरी भूल रही होगी। उन्हीं दिनों तो मैंने यौवन में पदार्पण किया था। यदि मैं स्वयं मंजुलता के कमरे का दरवाजा न खटखटाता तो क्या वह स्वयं मुझे बुलाती? स्नायुरोग से पीडित अन्धकारपूर्ण संसार में भटकने वाली वह युवती क्या कर सकती

थी? मंजु, मेरी इस कहानी को तुम कभी नहीं पढ़ोगी, तुम कहना चाहती हो कि उस दिन मेरे पास कोई सन्देश न भेज कर सदा के लिए आँखें बन्द कर लेती?

बडे संकोच से मैंने किवाड खटखटाये। मंजुलता ने दरवाजा खोला। दरवाजा खोलकर वह खाट पर लेट गई। देखते-देखते उसका शरीर सिकुड़ गया। रातवाली कान्ति आकृति पर नहीं थी। आँखें बहुत धँसी हुई लगीं। वेदना के कारण चेहरा उदास था। पेट में एक विशेष प्रकार का दर्द होता है तो औरतें कहती हैं कि पेट की नसों को कोई मरोड़ रहा है। कुछ इसी प्रकार की वेदना उस समय मंजुलता को हो रही थी। इस वेदना के कारण उसके मुँह से एक शब्द नहीं निकल रहा था। आवाज कंठ में ही अटक रही थी। उसकी यह स्थिति देख कर मेरी आँखें गीली हो गईं। मेरे देखने में कभी ऐसी वेदना नहीं आई थी। कुछ सूझ नहीं रहा था, किंकर्त्तव्य विमूढ-सा कुर्सी पर बैठ गया।

दस मिनट बाद उस की आँखें खुलीं। मेरी ओर देख कर मंजुलता ने क्षीण स्वर में कहा-'प्रातःकाल के चार बजे से मैं परेशान हूँ। वे मेरी वेदना नहीं देख सके, इसीलिए कहीं बाहर चले गये हैं। आपको मेरे भाग्य ने ही भेजा है। होटल का कोई नौकर हमारे कमरे की तरफ झाँक कर भी नहीं देखता। संसार की यही रीत है। मेरा कंठ सूख चुका है। दया करके एक प्याला काफ़ी का मँगा दीजिये।'

मंजुलता ने यह सब शुद्ध तेलुगु में न कह कर तमिल मिश्रित अंग्रेजी में कहा था।

बरामदे में जाकर मैं ने नौकर को आदेश दिया। तुरंत गरम-गरम काफ़ी आगई। मंजुलता तकिये के सहारे बैठ गई। काफ़ी कुछ ठंडी करके उसे दी। उसके बिम्बाफल जैसे लाल-लाल होठ उसकी भौंहों का उपहास कर रहे थे। कर्णफूल की पुडिया मेरे हाथ में थी।

दो मिनिट का समय भी नही बीता था कि मंजुलता ने मुझे हटने का संकेत किया और तत्काल उसने कै कर दी। पूरी काफ़ी निकल गई।

कै के करते ही पूरा शरीर थर - थर काँपने लगा। हृदय की धडकन बहुत बढ़ गई। होटल के नौकर ने कमरा साफ कर के अगरबत्ती जलाई। चारपाई के सिरहानें बेसिन लाकर रखा। दस मिनट बीतने बीतने उसते एक और कै की। वमन करते समय खाट की बाई पर कुहनियों को टिका कर उसने अपना पूरा बोझ हाथों पर डाल दिया था।

तीसरी बार उसे कै आई तो वह निःशक्तता के कारण कुहनियों पर बोझ नहीं सहार सकी, खाट से जमीन पर गिरने ही वाली थी कि मैंने उछल कर उसे थाम लिया। आज मुझे यह बात स्मरण नहीं रह गई है कि मैंने उसकी भुजाओं को थामा था या कमर को। कै कर लेने के बाद मैंने उसे खाट पर लिटा दिया था। पाँच - छह मिनट तक मैं उसके पास खाट पर ही बैठा रहा।

मंजुलता का चेहरा बहुत उतर चुका था। दोनों आँखों से टप - टप आँसू बह रहे थे। दस्ती से उसके आँसू पोंछ कर मैंने पूछा था - 'क्या बहुत तकलीफ़ है? किसी डाक्टर को बुलाऊँ?'

'नहीं। आप भोजन करके इस कमरे में आजाइये। सन्ध्या तक मेरे पास यहीं बैठे रहिये।'

मैंने उसकी हथेली अपनी हाथ में ली। एक - एक उँगली काँप रही थी। आँखें फिर गीलीं हो गई।

'डाक्टर को बुलाने के लिए मुझे स्वयं नहीं जाना पडेगा। फोन कर दूँगा। डाक्टर धनराज से मेरा अच्छा परिचय है।'

'आप मेरी चिन्ता मत कीजिये। कोई डाक्टर मुझे नहीं बचा सकता। अस्पताल से डिस्चार्ज करते समय वहाँ के डाक्टरों ने स्पष्ट कह दिया था। उन लोगों ने जिस चीज से बचने के लिए कहा था, मैं बच नहीं सकी। मैं जीना भी नहीं चाहती। जीऊँ भी किसके लिए?

उस समय मेरी स्थिति ऐसी नहीं थी कि मैं उस गलती को तुरंत समझ जाऊँ, जिसके कारण मंजुलता की मृत्यु निश्चित हो चुकी थी। कुछ क्षण बाद मैंने देखा मंजुलता के अधरों पर मुस्कान दौड गई। उस

मुस्कान को देख कर मैं गलती का अनुमान लगा सका। तब मेरी इच्छा हुई कि रामनाथ का गला घोंट डालूँ। मेरे क्रोध की तीक्ष्णता को अनुभव करते हुए मंजु बोली - 'उन पर आप को क्रोध नहीं करना चाहिए। उन्होंने मुझे पूरे हृदय से प्यार किया है। मेरे प्रेम के वे पुजारी हैं। हम लोगों के दिन अच्छे नहीं हैं, इसीलिए तो इतना कष्ट सहना पड़ रहा है। क्या कोई आदमी इच्छा करने से ही सुख पा सकता है? चाचा के भरोसे इन्होंने लगी - लगाई नौकरी छोड़ दी। यहाँ मद्रास में नौकरी की तलाश करते - करते तंग आ गये। मुझे उन पर दया आती है। मुझे पाने के लिए, केवल मुझे पाने के लिए उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ी। अपने भाई से लड़ाई करके उन्होंने मेरे साथ विवाह किया। मुझे भी अपने पीहर और ससुराल दोनों से नाता तोड़ना पड़ा।....आप भोजन कर आइये।'

'इस समय मेरी इच्छा भोजन करने की नहीं है। मेरा मन बहुत उद्विग्न हो रहा है। डाक्टर को फोन किये देता हूँ।' मैं वहाँ से उठने लगा तो मंजुलता ने मेरा हाथ पकड कर मुझे उठने नहीं दिया। उसका स्पर्श पाकर मैंने पहली बार अनुभव किया कि मैं जिसके पास बैठा हूँ, वह रोगी नहीं, नारी है। मुझे प्रतीत हुआ, जैसे उस स्पर्श से मेरे शरीर में बिजली दौड़ गई है।

'डाक्टर लोग मुझे बचा नहीं सकेंगे। अस्पताल के लोगों ने ठीक ही कहा है। जब तक मेरे प्राण - पखेरू न उडें, आप इसी तरह मेरे पास बैठे रहें, यही मेरी अन्तिम इच्छा है। वे सन्ध्या को लौटेंगे। भगवान के लिए आप मुझे अकेली छोड़ कर कहीं मत जाइये। भाग्यने ही आपको यहाँ भेजा है। मुझे बहुत भय लग रहा है। मेरे ऊपर काली - सी छाया मँडरा रही है।' इतना कह कर मंजुलता सिर से लेकर पाँव तक काँपने लगी। साथ ही फफक - फफक कर रो भी रही थी। मैं मंजुलता को अपनी तरफ करके उसकी पीठ सहलाने लगा।

'मंजु, तुम रोओ मत। मैं तुम्हें छोड कर कहीं नहीं जाऊँगा।

डाक्टरों ने यों ही डराया होगा। मेरे यहाँ रहते तुम्हारे पास यमदूत नहीं आ सकेंगे। मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम्हें डरना नहीं चाहिए, बड़े लोगों का कथन है - भय ही मृत्यु है।'

समझाने - बुझाने से वह कुछ शान्त हुई। मैंने डाक्टर को फोन कर दिया। आधा घंटे में ही डाक्टर धनराज पहुँच गये। डाक्टर पूरी तरह जाँच भी नहीं कर पाये थे कि फिर दौरा आ गया। उसका शरीर सिकुड़ने लगा। वह हाथ - पाँव पटक - पटक कर छटपटा रही थी। डाक्टर ने पेट, फेफड़े तथा नाड़ी की परीक्षा की। मुझे बाहर भेज कर उन्होंने मंजु से अनेक प्रश्न पूछे।

'इस समय एक इंजेक्शन लगाऊँगा। दो बज रहे हैं। सन्ध्या को छह बजे फिर आऊँगा। कलेजा इस वेदना को नहीं सह सकता, इसलिए रोगी का गहरी नींद में सोना बहुत आवश्यक है। नशे का इंजेक्शन दे रहा हूँ।' धनराज ने मुझ से कहा।

'चाहे जो इंजेक्शन दीजिये, इसकी पीडा दूर होनी चाहिए। पीड़ा देखी नहीं जाती।'

इंजेक्शन देते समय मंजुलता ने कहा - 'डाक्टर, ऐसा इंजेक्शन दीजिये कि फिर आँख न खुले। शांति के साथ चिरनिद्रा आ जाये। मैं यह पीडा सहन नहीं कर सकती।'

धनराज ने इंजेक्शन लगाया। उन्हें बिदा करने के लिए मैं दरवाजे तक गया। डाक्टर ने प्रश्न किया - 'कौन है?'

मैंने पूरा वृतान्त सुना दिया।

'बेचारी' - लम्बी साँस छोड़ते हुए डाक्टर ने कहा- 'जीएगी नहीं!'

'इतनी भयानक बीमार है?'

'यह युवती दांपत्य सुख के लिए उपयुक्त नहीं रह गई है। इस का पति अवश्य पशु अथवा पिशाच है।'

मैं भी मन में यही बात सोच रहा था। प्रकट रूप से इस बात की उपेक्षा करते हुए मैंने कहा - 'सचमुच यह नहीं बचेगी?'

मेरी चिन्ता को समझते हुए डाक्टर ने कहा - 'सीमा से अधिक अच्छाई भी ठीक नहीं है। कल इस समय तक तुम उसे पहचानते भी नहीं थे, आज एक दिन में ही तुम उसके लिए इतने चिन्तित हो उठे हो? व्यर्थ में दुःख मोल ले रहे हो।'

मेरी पीठ थपथपा कर डाक्टर चले गये।

कमरे में पहुँच कर मैंने देखा, मंजु आँखें फाड़ - फाड़ कर मेरी प्रतीक्षा कर रही है। प्यास बहुत लग रही थी उसे, बीच - बीच में उल्टी भी हो जाती थी। मुझे देख कर बोली - 'दुर्गन्ध तो नहीं आ रही है?'

'नहीं तो, तुम्हें इस तरह की बात सोचनी नहीं चाहिए।' मैंने कहा।

कमरे का एक किवाड़ खुला था। नौकर के आने पर मै कुर्सी पर बैठ जाता था, उसके जाने पर खाट पर बैठता था।

'डाक्टर ने क्या कहा?' मंजु ने पूछा।

'कह गया है, घबराने की कोई बात नहीं है।'

'आप झूठ कह रहे हैं।'

'सच ही कहता हूँ। पन्द्रह मिनट में तुम्हें नींद आजाएगी। आराम से सो जाओ।'

'मेरे सोते ही आप यहाँ से चले जाएँगे?'

'चला जाऊँगा? तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा। भली लडकी की तरह चुपचाप सो जाओ।' मैंने उसे पुचकारते हुए कहा।

'मेरी अन्तिम इच्छा यही है कि मैं आपके हाथों में प्राण छोड़ूँ।'

इस बार मैं अपने आँसू नहीं रोक सका। यह सचमुच मर जाएगी? ऐसे स्थान पर दम तोड़ देगी, जहाँ इसका अपना कोई नहीं है? एक पराये व्यक्ति के सामने इसके प्राण निकलेंगे? इस कबूतरखाने जैसे होटल में, जिसकी दीवारें इसका अभी से व्यंग कर रही हैं? यह फूल धूल में मिल जाएगा? क्या है मानव जीवन? हमारी आशाएँ और आकांक्षाएँ मृत्यु के आँगन में महल बनाती हैं! इन आशाओं और आकांक्षाओं तथा व्यथाओं की कोई सार्थकता भी है? हम मायाजाल में फँसे हुए हैं।

भर्तृहरि और वेमना के कथन की सचाई हृदयंगम किये बिना हम इस मायाजाल से कैसे छूट सकते हैं ?

मैंने मंजुलता के माथे पर हथेली रखी। बुखार अधिक न होते हुए भी कनपटी की नस जोर से चल रही थी।

'मेरी बात पर विश्वास रखो, तुम बहुत दिन जीओगी। तुम अपने भविष्य को नहीं जानती मंजु!'

मंजु के होठों पर फीकी-सी मुस्कान फैल गई। इस मुस्कान में संसार की सारी व्यथाएँ प्रतिच्छायित हो रही थीं। उसकी ठोड़ी दबाते हुए मैंने कहा-'विश्वास करो मंजुलता। क्या तुम पर खुमारी छा रही है?'

'हाँ'-कह कर वह सो गई।

मैंने होटल से मँगाकर थोड़ा-बहुत खा लिया, फिर पूरा कमरा साफ कर दिया। इधर-उधर अगरबत्तियाँ जला दीं और गंभीर निद्रा में मग्न उस युवती के मुँह की ओर देखने लगा। इसी तरह एक घण्टा बीत गया। मस्तिष्क में निरर्थक विचार उठे और विलीन हो गये। रामनाथ पर ध्यान जाता तो कभी उस पर क्रोध आता और कभी दया।

सन्ध्या को वेंकटपति मुझे ढूँढ़ता हुआ उस कमरें में आ गया। बोला-'यह आफत तुम्हारे सिर पड़ी।'

मैंने उसकी कठोरता को वहीं रोकना चाहा। बोला-'सभी के जीवन में बुरे दिन आते हैं। यदि हम ऐसे समय भी किसी के काम न आएँ तो मानव कहाने का अधिकार खो बैठेंगे। कौन जाने रामनाथ रात को भी लौटेगा या नहीं। तुम अपनी पत्नी से पूछ कर आज रात यहीं सो जाओ न।'

जरूर सो जाऊँगा। बेचारी को मैंने व्यर्थ में तितली कहा था। यह तो साक्षात सीताजी हैं। हम लोगों कें लिए यह बहुत खुशी की बात होगी कि बेचारी मौत से बच जाये।'

वेंकटपति ने मंजु के बारे में अपना विचार बदल दिया। वह समझ

गया था कि मैं मंजु के लिए बहुत सहानुभूति रखता हूँ। उसने प्रकट किया कि वह मंजु को बचाने में कोई कसर नहीं रखेगा। वेंकटपति की कल्पना का क्या कहना! बोला, 'यदि रामनाथ लौट कर न आये तो चिन्ता करने की कोई बात नहीं। ऐसी सुन्दर युवती दिव्य ज्योति की भाँति घर को चमका देगी।'

मैंने उसे बीच में ही रोका। मैंने सोचा डाक्टर कह गया है कि न जाने यह रात भी पकड़ेगी या नहीं, उसी को लेकर इस तरह के हवाई महल बनाना कितना हास्यास्पद है। किन्तु वेंकटपति ने जो कुछ कहा था उसके कारण मेरे मन में कई असंबद्ध विचार उत्पन्न होने लगे। मैं उपन्यासों के पात्रों के साथ जीवन बिताता था। जब कि वेंकटपति यथार्थ जीवन से बहुत अच्छा परिचय रखता था। मैं यह मानता हूँ कि मेरी अपेक्षा वेंकटपति के संस्कार कच्चे हैं, किन्तु व्यावहारिकता के कारण मैं उसके विचारों को सह लेता था।

सन्ध्या को डाक्टर फिर देखने आये। हम तीनों ही कमरे में गये। बत्ती के जलते ही मंजु चौंक कर जाग गई। कमरे के बाहर अन्धकार फैल रहा था। एक क्षण वह हम तीनों को भीत नेत्रों से देखती रही।

'क्यों घबरा रही हो?' मैंने पूछा।

'मैं अब तक जीवित हूँ?' इतना कह कर वह छटपटाने लगी। १५ मिनिट तक लगातार छटपटाती रही। डाक्टर ने परीक्षा की। दोपहर में कह गये थे सन्ध्या को एक इंजेक्शन दूँगा। किन्तु अब उन्होंने इंजेक्शन न देकर चार पुड़ियाँ दीं। बोले जब अधिक वेदना हो, एक-एक घंटे से चारों पुड़ियाँ दे देना। वेंकटपति को मंजु के पास छोड़ कर मैं डाक्टर के साथ बरामदे में आया।

'अब आप क्या सोचते हैं डाक्टर?'

'बर्फ के पानी में ग्लूकोज और दूध मिला कर चम्मच से पिलाते जाइये। जिगर बहुत कमजोर हो गया है। इंजेक्शन प्रभाव नहीं करेगा। रात में दो-तीन बजे तक ... ...।' डाक्टर ने कहा।

मेरे पाँवों के नीचे से धरती खिसक गई। डाक्टर से मैंने कहा - 'मैं इस युवती के लिए सब कुछ खर्च कर सकता हूँ। आप इसे बचा लीजिये।'

इस तरह की बात कोई पागल ही कर सकता है।

मेरी उद्विग्नता को देख कर धनराज ने कहा - 'आप इतने बेचैन क्यों होते हैं! शास्त्रों में लिखा है, 'जातस्य मरणं ध्रुवं', यदि उसकी आयु शेष है तो बच जाएगी।'

'आप कुछ नहीं कर सकते?'

मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए डाक्टर ने कहा - 'जो आदमी स्वयं कहानीकार है, उससे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि डाक्टर किसी को दवा दे सकता है, जीवन नहीं।'

'तब क्या मंजुलता मर जाएगी?'

'यदि कल सवेरे तक जीवित रहे तो लगभग सात बजे मुझे टेलीफोन कर दीजिये।'

'आप कहते हैं यह रात में मर जाएगी। यहाँ कठिनाई यह है कि उसका पति रामनाथ सवेरें से गायब है। किसी से कह कर नहीं गया, इसीलिए पता नहीं, किन्तु ऐसे अवसर पर उसकी खोज करना हमारा कर्त्तव्य है।'

'क्या वह रात को भी नहीं लौटेगा? मुझे लगता है, रात में १२ और तीन के बीच बेचारी के प्राण-पखेरू उड़ जाएँगे।'

मेरे आगे अँधेरा छा गया। यंत्र-चालित की तरह मैं कमरे में लौटा। वहाँ होटल का सेठ और मेरा मित्र वेंकटपति दोनों उस युवती की असहाय अवस्था और मेरी उदारता की चर्चा कर रहे थे।

सेठजी ने मुझ से कहा - 'भगवान आपका अवश्य भला करेंगे।'

मैंने उन दोनों से मंजु की संभावित मृत्यु के बारे में कोई बात नहीं की। सेठजी ने मुझे चुपचाप खड़ा देख कर कहा - 'रामनाथ तो बड़ा धोखेबाज निकला। यदि आप मंजु की सहायता न करते तो न जाने बेचारी का क्या हाल होता!'

संभवतः कल प्रातःकाल तक मंजुलता मर जाएगी। उसके कष्ट भरे जीवन-नाटक पर यवनिका गिर जाएगी। बेचारी अपमान, अप्रतिष्ठा और अभावों से मुक्त होकर इस अन्धकार के सागर को पार कर जाएगी। क्या होगा, कौन जाने?

वेंकटपति भोजन करने चला गया। मैं मंजुलता के रेशम के समान कोमल बालों वाले जूड़े पर हाथ फेरने लगा। कल सायंकाल तक इस युवती के साथ सम्बन्ध की तो बात क्या मेरा परिचय भी नहीं था और आनेवाले कल की सन्ध्या तक यह मुझसे दूर चली जाएगी। उषःकाल तक स्वर्ण के समान कमनीय इसकी देह से जीवन लुप्त हो जाएगा। अपनी अनामिका उँगली से मंजुलता के कपोलों का स्पर्श करने के पश्चात मैंने उसका माथा सहलाना प्रारंभ किया। कुछ क्षण बीतने पर मैंने प्रश्न किया - 'तुम जीना नहीं चाहती, मंजु?'

'किसके लिए जीऊँ?'

'मेरे लिए!'

'तुम्हारे लिए? तुम्हारे किस काम की हूँ मैं?'

'मैं नहीं जानता कि तुम्हें क्यों जीना चाहिए। इतना चाहता हूँ कि तुम जीवित रहो। तुम्हें मेरे लिए जीवित रहना है। किस लिए जीवित रहना है यह मत पूछो।'

मेरा कंठ रुदन से काँप उठा। मैंने देखा मंजु की आँखों में आशा का नया लोक बस गया है। उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर कपोलों पर रख लिया। करवट बदल कर बोली - "लगता है, दोपहर का भोजन नहीं किया है आपने। भोजन करके जल्दी ही लौटिये।"

उस समय मुझे इस बात का ज्ञान नहीं था कि नारी जिससे प्यार करती है, उसके खाने-पीने के बारे में बहुत चिन्तित रहती है।

'मुझे न तो भूख है और न खाने की इच्छा!'

'नहीं, ऐसा मत कीजिये। भोजन न करने से आपका स्वास्थ्य गिर जाएगा। होटल के नौकर को यहाँ भेज कर भोजन कर आइये।' इतना

कह कर उसने मेरी ठोड़ी पकड़ ली।

हम दोनों के बीच कितनी घनिष्टता स्थापित हो चुकी थी। इस घनिष्टता को हम दोनों की आत्माएँ जानती हैं। संसार उस घनिष्टता से अनभिज्ञ है।

प्रातःकाल मंजु को मृत्यु का भय लग रहा था। सन्ध्या को डाक्टर के कथन के कारण मंजु की संभावित मृत्यु से मैं भयभीत था। जब तक मैं भोजन करके कमरे में लौटा, मंजु ने अपने हाथों पर पाउडर लगाया और फिर खाट पर चुपचाप लेट गई। प्रातःकाल जिस साज-सज्जा की कोई आवश्यकता नहीं थी, उस साज-सज्जा की आवश्यकता सन्ध्या को क्यों हुई?

'आप के जाने के बाद एक कै हुई है। पेट में फिर मरोड़ होने लगी है।'

'ग्लूकोज का पानी लिया?'

'उस पानी के कारण ही तो कै हुई है।'

'पाउडर क्यों लगाया है?'

'कुछ लवंडर भी लगाना चाहती थी, किन्तु शीशी खाली निकली।'

मंजु मना करती रही, फिर भी मैं अपने कमरे से सेण्ट की शीशी ले ही आया। उसने अपने कपड़ों पर इधर-उधर सेण्ट के छींटे डाले।

'वेंकटपति न जाने क्या सोचेगा?'

'सोचनेवाला वह कौन होता है?'

'वह मेरा मित्र है।'

'क्या वह यहाँ फिर आएगा?'

'मेरी सहायता के लिए आज रात यहीं सोएगा।'

'उसके लिए कमरे से बाहर कैंप खाट लगा दीजिये। व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हैं बेचारें को।'

जिस नारी को मामूली बात का भी इतना ध्यान हो, वह रात में दो बजे तक कैसे मर सकती है? घनराज कह गया है, बात करते-करते

किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है। संभवत: मंजु भी अपनी मृत्यु की बात अच्छी तरह जानती है। इसी समय वेंकटपति भोजन करके लौट आया और बाहर खाट पर लेट कर बीड़ी पीने लगा।

दस - पन्द्रह मिनट के लिए मंजुलता पर तन्द्रा छा जाती है और फिर जाग पड़ती है। उसने आग्रह किया कि मैं उसकी खाट पर ही बैठा रहूँ, ऐसे में रामनाथ भी आजाए तो चिन्ता की कोई बात नहीं है। नौकर वेंकटपति की खाट के पास नीचे बिछौना बिछा कर लेट गया। रात के नौ बज गये किन्तु रामनाथ के लौटने का कोई चिन्ह दिखाई नहीं दिया।

कमरें में सौ नम्बर का गोला जल रहा था। खुली खिड़कियाँ देखकर मंजुलता को डर लग रहा था, इसीलिए सारी खिड़कियाँ बन्द कर दी गईं। इस समय बिजली का पंखा टक - टक करने लगा। अगरबत्ती की गन्ध कम हो गई।

'मैंने सुना है, रात में जब तक चाँद नहीं निकलता, किसी की मृत्यु नहीं होती!'

मुझे इस बात का अनुमान नहीं था कि मंजुलता फिर इस तरह की बात करेगी। इस प्रश्न से पता चलता था कि उसका डर इस समय तक कम नहीं हुआ था।

'डाक्टर कह गये हैं, अब तुम्हारें लिए कोई खतरा नहीं है।'

'उन्होंने झूठ कहा होगा। हो सकता है वे रोग का निदान करना नहीं जानते। मैं कैसे मरूँगी, मुझे अच्छी तरह मालूम है। अकस्मात मेरे हृदय की धड़कन रुक जाएगी। दौरा आने से कुछ पहले या दौरा समाप्त होने के दस - पन्द्रह मिनट बाद मेरी मृत्यु होगी।'

'मंजु, तुम कुछ नहीं जानती। तुम जीवित रहोगी, जरूर जिओगी।' यह कह कर मैंने उसका माथा चूमा।

मंजु फीकी हँसी हँस कर बोली - 'मुझे चूम कर तुमने गलती तो नहीं की?'

गलती नहीं की मैंने।' मैंने दृढ़ता से कहा। फिर धीरे - धीरे

उसकी रीढ सहलाने लगा।

'ओह, तुम में मेरे लिए इतनी ममता क्यों है?' इतना कह कर मंजु रोने लगी।

ग्यारह बज गये। रामनाथ अब भी नहीं लौटा था। मुझे वेंकटपति की बात याद आ गई। मैंने साहस के साथ मंजु को ग्रहण करने का निश्चय किया। मैं इस निर्णय पर पहुँच गया कि रामनाथ चाहे लौटे, चाहे गायब हो जाये, यदि मंजु अच्छी हो जाती है, तो उसके भविष्य का भार मैं वहन करूँगा।

बारह बजने में बीस मिनट रह गये। मंजु अचानक चौंक कर बैठी हो गई। फिर मेरी गोद में सिर रख कर लेट गई। मैं केशों पर हाथ फेरने लगा तो उसकी आँख लग गई। बारह बज कर पाँच मिनट पर उसके मुँह से जोर की चीत्कार निकली। मैंने सोचा, इस चीत्कार को सुन कर आसपास के लोग आ जाएँगे किन्तु दूसरों की बात तो क्या वेंकटपति की नींद भी उस चीत्कार से नहीं टूटी।

'मेरी नसें अकड़ती जा रही हैं। पूरा कमरा घूम रहा है। इतना अँधेरा क्यों है?'

संभवतः मंजु इस संसार से नाता तोड़ कर माया-मोह से मुक्ति पाने जा रही है। कमरे में सौ बत्ती का गोला, जिसके प्रकाश में आँखें चौंधिया रही हैं, फिर भी मंजु को चारों ओर अँधेरा क्यों लग रहा है? मंजु को तकिये के सहारे लिटा कर वेंकटपति को जगाना उचित रहेगा या अनुचित? बेचारा उठ कर भी क्या करेगा? इस युवती की मृत्यु क्या मेरी गोद में ही लिखी है? मुझे जोर से रोना आ रहा था, किन्तु मैं रो नहीं सका। सारे शरीर में रोमाञ्च हुआ, मैं काँप उठा।

'मंजु?' मैंने कहा।

'जी!'

'कोई सपना देख रही हो?'

'सपना काहे का, डर लग रहा है। कुछ भी तो नहीं सूझ रहा है

मुझे। किसी अज्ञात लोक का दृश्य दिखाई दे रहा है। आप ऐसे में मुझें छोड़ मत जाइयें।'

'तुम मेरी हो मंजु, मेरे लिए जीओगी तुम। मैं तुम्हें जिलाऊँगा। सुनते हैं, प्रेम में अमृत होता है। तुम्हें जीवित रहना है मंजु।'

मंजु मौत के मुँह से लौट आई, यह बात मैं आज एक वाक्य में बड़ी सरलता से कह रहा हूँ, किन्तु उस रात प्रातः चार बजे तक मंजु ने कितनी भयानक पीड़ा सही थी। मंजु के पांचभौतिक शरीर को छटपटाता देख उस रात मुझे कितनी वेदना हुई थी। वेदना और आँसू दोनों काल के महासागर में विलीन हो जाते हैं, मंजु ने मेरे लिए मृत्यु से भयानक संघर्ष किया। मंजु, तुम में मेरें लिए कितना अगाध प्रेम है! इस जीवन में हम दोनों नहीं मिलेंगे, फिर भी उसमें कितना ममत्व है!

दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने धनराज को सूचित किया था, कि मंजु अब तक जीवित है। धनराज ने उत्तर दिया था कि मंजु का जीवित रहना असंभव है। उसका जीवित रहना चमत्कार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उस दिन सन्ध्या को धनराज ने भरोसा दिलाया था कि अब मंजु के मरने का डर बाकी नहीं रहा। जब वह कुछ स्वस्थ हो गई, तो मैंने उसके हाथ में कर्णफूल रख दिये। उसने प्रश्न किया —

'मेरे कर्णफूल आपको किस तरह मिले?'

'ये कर्णफूल देने के लिए ही मैं कल तुम्हारे कमरे में आया था, जब कि हम दोनों जन्म-जन्मान्तरों के लिए बन्धन में बँध गये।

मंजुलता केवल मुस्करा दी थी।

'रामनाथ नहीं लौटेंगे?' मैंने पूछा। मैं जानता था कि मुझे यह प्रश्न नहीं पूछना चाहिए, किन्तु रामनाथ के बारे में जानकारी प्राप्त करना मेरे लिए आवश्यक हो गया था।

'लौटेंगे, आज सन्ध्या तक जरूर लौटेंगे।'

मंजु की बात सच निकली। सन्ध्या को रामनाथ वापिस आ गया। पति-पत्नी के बीच न जाने क्या बात हुई। रामनाथ ने अश्रुपूरित नेत्रों से

मेरे प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही रामनाथ बेंगलूर चला गया। उसका बेंगलूर जाना मुझे उस समय ज्ञात हुआ, जब प्रातःकाल मंजु ने डाक्टर को बताया था कि उसका पति रात भर रह कर चला गया है।

'वहाँ से कब

'कह कर तो गये है, कल लौट आएँगे, किन्तु मैं बता नहीं सकती कि निश्चित रूप से आएँगे ही। आप मेरे भाई को तार दे दीजिये। मैं अपने पिता के यहाँ चली जाऊँगी।'

'यहाँ क्यों नहीं रहतीं?'

'आप नहीं जानते। इन बचकानी बातों से क्या लाभ?' उसकी इस बात से मैं कुछ क्षण रूठा रहा। इसी समय मुझे कर्णफूलों की बात याद आई। मैंने पूछा - 'कर्णफूल कहाँ हैं?'

'तकिये के नीचे छिपा रखे हैं। मैंने उन्हें नहीं बताया कि आपने सेठ से कर्णफूल वापिस ले लिये हैं।'

चार-पाँच दिन में ही मंजुलता मुझ से कितनी घुलमिल गई थी! छोटी लड़की की तरह मेरे साथ खेलने लगती। उस समय तक मुझे केवल पुस्तकों से इस बात की जानकारी मिली थी कि स्त्री अपना हृदय किस तरह अर्पित करती है। इस बात का अनुभव नहीं था।

मैं प्रतिदिन मंजु के मुँह पर पाउडर लगाता और उसकी वेणी गूँथता।

सन्ध्या का समय था। लगभग पाँच बजे थे। पड़ौस की छत पर १५-१६ वर्ष की एक युवती अपने भाई की पतंग उड़ा रही थी। मंजु ड्रेसिंग टेबुल पर श्रृन्गार कर रही थी। मैं उसके पास खड़ा था। पड़ौस की छत पर उस युवती को पतंग उड़ाता देख मंजु ने प्रश्न किया - 'इतनी सुन्दर लड़की से तुम विवाह क्यों नहीं कराते?'

'वह क्या तुम से भी अधिक सुन्दर है?'

मैंने दर्पण में देखा मंजु की आँखों में आँसू छलक आये हैं।

मंजु ने मुझे अपनी ओर खींच कर मेरे गालों पर असंख्य चुम्बन

अंकित कर दिये। मुझे उस दिन अपने जीवन की सार्थकता अनुभव हुई थी।

१२ वर्ष बीत गये, फिर भी उस दिन के चुम्बन की स्मृति मेरे जीवन को सुगन्धित किये हुए है। मैंने उसका सिर अपनी गोद में रख लिया था।

'आपका ऋण इस जन्म में नहीं चुकाया जा सकता। यदि हम दोनों ने फिर जन्म लिया तो हमारा मिलन अवश्य होगा। इस जन्म में मैं आपके योग्य नहीं हूँ। जिस दस्ती से आपने मेरे आँसू पोंछे, वह मेरी हो गई। ये कर्णफूल आपके हुए। अपनी परिणीता पत्नी के कानों में पहनाइएगा इन्हें। कल मेरा भाई आ जाएगा। आज का एक ही तो दिन है हम लोगों के लिए, इसे रो-रो कर क्यों बितायें? जंगल की चिड़िया की भाँति मैं एका एक आपके यहाँ आ गई। जिस तरह आई हूँ, उसी तरह चली जाऊँगी। बिना किसी दुःख के आप हँसते हुए मुझे बिदा दीजिये।'

'आप स्वयं जानते हैं कि मैं आपके योग्य नहीं हूँ, फिर भी अल्प-कालिक परिचय के त्यागने में आप इतना कष्ट अनुभव कर रहे हैं।'

मंजुलता की बात में सचाई थी, किन्तु फिर भी मैं उसे मन से स्वीकार नहीं कर सका। मैंने अपनी दस्ती देकर कर्णफूल ले लिये। मैंने कहा था कि जब प्राणी ही बिछुड़ रहा है तो चिह्नों का क्या मूल्य है? उसने हँसते हुए मेरी नाक पकड़ कर दो चपत जमा दिये थे। जब तक वह गाड़ी में सवार नहीं हुई, मेरी उँगली पकड़ कर इधर-उधर घुमाती रही।

गाड़ी छूटने में बीस मिनट का समय था। मंजु का भाई सामान चढ़वा कर डब्बे में बैठ गया। मैं और मंजु प्लेटफार्म पर इंजन तक चले गये। वह इस समय सफेद साड़ी पहने हुई थी। यह साड़ी मैंने सन्ध्या को भेंट के रूप में दी थी। ऊदे रंग की चोली सफेद साड़ी पर बहुत खिल रही थी।

मैं आपको छोड़ कर जाना नहीं चाहती थी, किन्तु क्या करूँ, विवशता थी।' मंजु के नेत्रों में आँसू की बूँदें चमकने लगीं। मैं उसे

आलिंगन में बाँध लेना चाहता था, किन्तु प्लेटफार्म जैसी जगह पर यह कैसे संभव था ?

'आपने मुझ पर बहुत उपकार किया है। मैं उसके लिए कुछ भी तो नहीं कर सकी !'

मेरे अन्तर का पुरुषत्व जाग उठा। मंजु का स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई दिया। मैंने कहा - 'छिः, ऐसा मत सोचो, जहाँ भी रहो।'

मेरी अन्तरात्मा ने कहा - 'तुम ने मंजु को जिला लिया। जन्म-जन्मान्तरों तक वह तुम्हारी है।

जब तक हम लोग प्लेटफार्म के उस भाग तक नहीं पहुँचे- जहाँ बत्तियों के कारण प्रकाश हो रहा था, हम एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर चलते रहे। हमारे हृदयों में वेदना थी, किन्तु होठों पर हँसी थी। वह हँसी ऐसी लग रही थी, जैसे वर्षा के बाद निकलनेवाली धूप। मंजु का भाई डिब्बे में बैठा पागल की तरह हम लोगों की ओर देख रहा था।

मंगलोर मेल ने हम दोनों को अलग कर दिया, इसीलिए मुझे इस मेल से घृणा है। इसीलिए इस मेल को देख कर मुझे क्रोध आता है।

आप मुझ से यह मत पूछिये कि मंजुलता का क्या हुआ। शरत बाबू अपने 'देवदास' नामक उपन्यास में यह नहीं बता सके कि आखिर पारो (पार्वती) का क्या हुआ ? इसी तरह मैं भी मंजु के बारे में कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूँ। मैंने यह उदाहरण के लिए 'देवदास' की पार्वती का नाम लिया है। वस्तुतः मंजु पार्वती जितनी उदात्त अथवा महान नहीं है। बारह वर्ष बीत गये। मेरे लिए मंजु स्मृति मात्र रह गई है। उसी स्मृति को मैंने कागज पर अंकित किया है। आपने मेरा लिखा पढ़ भी लिया। अंत में केवल एक बात बताना चाहता हूँ, मेरी पत्नी के कानों में जो कर्णफूल हैं, वे मंजुलता के दिये हुए हैं।

बुच्चिबाबू

बीबी

पूरा नाम हाशिया महबूबा बीबी। मैं निजी काम से हैदराबाद गया और अपने बालसखा कुटुम्बराव के यहाँ ठहरा था। यहीं मैंने पहले पहल 'बीबी' को देखा था। तब उसकी आयु ग्यारह - बारह वर्ष की रही होगी। मेरे मित्र कुटुम्बराव आवश्यक कार्य से बाहर गये हुए थे। मैं अकेला कमरे में बैठ कर अखबार पढ़ रहा था। हाशिया बीबी ने टोकरी से फूलों का गुच्छा निकाल कर मेरी मेज पर रख दिया। मैंने उसकी ओर देखा तो वह मुस्कुरा दी। उसकी वेश - भूषा से मैं समझ गया कि वह मुसलमान लड़की है। चेहरा लम्बा, श्याम वर्ण, अंधकार - पूर्ण जंगल में लगने वाली आग की भाँति ओठों के पीछे अच्छे क्रम से जमी हुई दन्तपंक्ति चमक रही थी। खास ढंग से जमाई गई भौंहें, सिरके बीचों बीच माँग, दोनों पंख फड़फड़ा कर उड़ने के लिए प्रस्तुत पक्षी की भाँति सजे हुए केश, छोटी - सी ठोड़ी और उस ठोड़ी के बीचों बीच तिल के आकार का गोदना, कुछ फटी हुई लाल रंग की लम्बी कुर्त्ती, सफेद पाजामा, गले से लिपटी हुई दो वेणियाँ। पतली - सी चोली कि जिससे शरीर पर होनेवाला रोमांच स्पष्ट दिखाई दे।

नदी तट का मिट्टी का ढेला, लहरों के आघात से आकार ग्रहण करता है। उस मिट्टी के ढेले में युग - युगों से गड़ा हुआ हीरा जिस तरह चमकता है, उसी तरह बीबी के शरीर में सर्वत्र जीवन की लालसा दमक रही थी।

नेत्रों में विशेष प्रकार का आकर्षण। वैसे उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता था। सुनते हैं कुछ जलचरों के माथे में मणि होती है, उस मणि में रोमांचित करनेवाला भयमिश्रित आकर्षण रहता है, वैसा ही आकर्षण

उसकी आँखों का गोल तारा सदैव गतिशील रहता था। उसने मुझे देखने का प्रयत्न नहीं किया, मेरें दाँये - बाँये देखती रही। चुपचाप हँसने लगी थी। घर का नौकर मरेंन्ना कमरे में आकर गुल्दस्ता उठा ले गया तो बीबी कमरे से बाहर चली गई और किवाड़ की आड़ से झुक - झुक कर मुझे देखने लगी। उस समय भी वह हँस रही थी। मैंने भीतर बुलाया तो अस्वीकृति के लिए सिर हिला दिया।

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'बीबी।'

'यहाँ आना ....।'

वह मेरें पास चली आई। उसकी आँखें फिर दाँये - बाँये देखने लगीं।

'लो .... तुम अपनी वेणी में फूल नहीं गूँथोगी?'

'ऊँ हूँ।' कह कर उसने सिर हिला दिया। सिर हिलाने से उसकी दोनों वेणियाँ दोनों भुजाओं पर झूल गईं।

'काम क्या करती हो?'

वह फिर हँसने लगी। कुछ बोली नहीं। मेज पर रखे पंखे को देखने लगी।

'तेलुगु समझती हो?'

उसने सिर हिला कर सूचित किया कि जानती हूँ।

मैंने सोचा, संभवत: यह लड़की गूँगी है।

पंखे की ओर दो कदम बढ़ कर मैंने उसके सामने अपना हाथ कर दिया।

'लो .... खरीद लेना' - मैंने उसे एक आना देना चाहा। पहले तो उसने पैसे नहीं लिये, किन्तु समझाने-बुझाने से ले लिये। पंखे पर दृष्टि जमा कर वह हँसने लगी। पंखे के साथ-साथ बीबी की दृष्टि भी वेग से घूमने लगी।

'हवा लग रही है?'

इस बार भी उत्तर में उसने सिर हिला दिया।

'अब?' कह कर मैंने पंखा बन्द कर दिया।

बीबी हँस पड़ी। पंखे का अपने आप घूमना बीबी के लिए आश्चर्य-जनक बात थी। बेचारी गरीब लड़की, कहाँ से देखा होगा बिजली का पंखा।

'फिर चलाइये।' बीबी ने आग्रह किया।

ओह! यह तो बात करती है, गूँगी नहीं है। मैंने पंखा चालू किया। पंखे के साथ उसकी आँखें भी चक्कर करने लगीं। थोड़ी देर बाद उसने स्विच हटा कर पंखा बन्द कर दिया। मैं कहना चाहता था कि इस तरह स्विच हटाने से पंखा खराब हो जाएगा किन्तु मैं कह नहीं सका। यदि मेरा अपना पंखा होता तो अनायास ही मेरे मुँह से बात निकल जाती।

मैंने स्विच हटा कर पंखा चलाया, पंखा चलने लगा तो मुझे हँसी आ गई। दीवार पर ऊँचे लगे हुए स्टैंड पर रेडियो था। कुटुम्बराव का कहना है कि नीचे रखने से रेडियो खराब हो जाता है। बच्चे कोई न कोई चीज तोड़ देते हैं।

पंखे पर जाला नहीं था। घर के बच्चे स्कूल गये हुए थे। इसी समय मेरे कानों में किसी के जोर से चिल्लानें की आवाज़ आई - 'अम्माँ'। मैंने घूम कर देखा, बीबी अपनी अनामिका उँगली मुँह में दबाये हुए है। चलते पंखे में उसने उँगली दे दी थी। इसी लिए चोट आ गई।

'चोट लग गई?'

उसने मुँह से निकाल कर अपनी ऊँगली दिखाई। खून जम गया था। घर के अन्दर से नौकर निकल कर आया। उसने बीबी को डाँटा। फिर हाथ रखा तो हाथ तोड़ दूँगा। भाग यहाँ से।'

बीबी ने अपने करुण नेत्रों से मेरी ओर देखा। मैं क्या कर सकता था?

'पंखे में उँगली देगी तो चोट आएगी ही। फिर कभी ऐस मत करना।' मैंने कहा।

उसने सिर हिला कर बात स्वीकार कर ली और फिर हँसने लगी।

ने बीबी को कमरे से बाहर निकाल कर दरवाजा बन्द कर दिया। कसाई की लड़की है वह। उसकी माँ कपड़े सीती है। मुझे पता चला कि वह उस गली के घरों में जा कर छोटा-मोटा काम कर देती है। बाहर से फल, फूल, दूध, अखबार ला देती है, किराये पर रिक्शा बुला लाती है, लोग जो कुछ देते हैं उसी में सन्तुष्ट हो जाती है, बच्चों से खेलती है, कमरे में पहुँच कर पंखे में उँगली दे देती है, इत्यादि।

पंखे में उँगली देना बच्चों का सहज स्वभाव है। बालक किसी चीज को हिलता या काँपता देखते हैं तो बहुत खुश होते हैं। चलते पंखे को रोकने और रुके पंखे को चलाने में वे अपनी शक्ति प्रकट करते हैं। इस प्रकार की क्रियाओं से उन्हें आनन्द मिलता है!

मेरा अपना अनुभव है कि बालक हिलते-डुलते खिलौने पसंद करते हैं जब कि बालिकाएँ स्थिर रखने वाले खिलौनों को, संभवतः इसी बात को ध्यान में रख कर आजकल खिलौने बनाये जा रहे हैं।

दूसरे दिन एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। मैं कमरे में बैठा, खिड़की से सड़क पर आने-जाने वालों को देख रहा था। एक वृक्ष के पास दूकान है, उस दूकान के सामने साइकिल खड़ी है। बीबी ने साइकिल देखी तो उछलने लगी। साइकिल के पास जाकर उसने पैडल घुमाना शुरू किया, पैडल के घूमने से पिछला पहिया जोर से चक्कर काटने लगा। चलते चक्के की काड़ियों में उसने अपनी उँगली दे दी। उँगली बुरी तरह घायल हो गई। उसने उँगली झटपट मुँह में रख ली।

उसने चारों ओर दृष्टि डाल कर जानना चाहा कि उसकी क्रिया को किसी ने देखा तो नहीं है। जैसे ही उसे पता चला कि मैं खिड़की से उसे देख रहा हूँ, वह हँसी और भाग खड़ी हुई।

उसके इस तरह दौड़ने से मुझे भी हँसी आ गई। हम दोनों में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। भविष्य में किसी प्रकार के संबन्ध की संभावना भी नहीं है। फिर भी न जाने क्यों हम दोनों की निकटता

बढ़ती जा रही है। इस निकटता का क्या कारण बताऊँ? समुद्र का पानी भाप बनकर उड़ता है और बादल बन जाता है, यह बादल पृथ्वी और आकाश को एक बना देता है। बादल के कारण पृथ्वी और आकाश एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं।

उँगली डाल कर पंखे को रोकने की इच्छा बच्चों में ही नहीं, बड़ों में भी होती है। कई बार मेरी भी इच्छा हुई है। इस इच्छा का कारण मनोविज्ञान-शास्त्र के पंडित ही जानते होंगे।

अज्ञात को ज्ञात बनाने की अभिलाषा मनुष्य में सहजात है। बिजली के स्विच में यदि उँगली डालने पर जोर का झटका लगता है। पंखे को उँगली से रोकिये तो उँगली में चोट लगेगी। बिजली के झटके अथवा पंखे की चोट से हमें जो पीड़ा पहुँचती है उसकी कल्पना से हमें अपने लिए सहानुभूति होती है, सहानुभूति में एक प्रकार की शान्ति निवास करती है। दूसरों से सहानुभूति मिलने पर हम अपना सम्मान समझने लगते है। शान्ति तथा सम्मान की भावना ही इस प्रकार की क्रियाओं को प्रेरित करती है। किसी चौमंजिले अथवा पँचमंजिले मकान की छत से जब कभी हम नीचे की ओर देखते हैं तो सहसा हमारी इच्छा होती है, कि नीचे कूद पडें। यह इच्छा सर्वथा सहज ढंग से होती है। जैसे ही नीचे कूदने की इच्छा होती है, हम अनुभव करते हैं मानों नीचे कूद पड़े हैं। और इस अनुभूति के साथ ही लम्बी साँस छोड़ कर हम पीछे हट जाते हैं।

यह लालसा प्रकट करती है कि हम अपने आपको पीड़ित करना चाहते हैं। किन्तु मेरी ही तरह बहुत से लोगों में स्वयं को पीड़ित करने की लालसा केवल लालसा ही बनी रहती है। मेरे मन में भी पंखे में उँगली डालने की इच्छा हुई थी, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर सका था। बीबी ने अपनी इच्छा पूरी करने का साहस किया था इसीलिए मैं उसकी ओर आकर्षित हुआ। इस छोटी सी घटना से ही हम दोनों में स्नेह-भाव स्थापित हो गया। किन्तु मुझे स्वीकार करना चाहिए कि हम दोनों का जीवन-पथ एक नहीं था।

कुटुम्बराव के घर में रहते समय मैं दो - तीन दिन बीबी के बारे में सोचता रहा। जिस काम से आया था, उसे पूरा करके मैं हैदराबाद से चला आया और थोड़े अर्से में ही बीबी को पूरी तरह भूल गया।

चार वर्ष पश्चात मैं दुबारा हैदराबाद गया। इस बार बीबी दिखाई नहीं दी। पूछने पर मित्र ने बताया कि पिछले साल उसका विवाह महबूब नामक एक युवक के साथ हो गया। आजकल वह ससुराल में है।

'सुनते हैं, कल बीबी आनेवाली है।' नौकर मरेन्ना ने कहा।

'बीबी का पति क्या काम करता है?'

'बाबूजी, दिन भर मोटर साइकिल पर 'फिट - फिट' करता घूमता है।' नौकर ने हँसते हुए उत्तर दिया।

'हँसते क्यों हो?' मैंने प्रश्न किया।

'बीबी अपने मियाँ की साइकिलमोटर के पीछे बैठती है। दोनों मियाँ - बीबी फिट - फिट करते, धूल उड़ांते पूरे शहर का चक्कर काटा करते हैं।'

बीबी और उसके पति को देखने की इच्छा हुई। बचपन में मैंने कुछ मुस्लिम - परिवारों में विवाह की रस्म देखी थी, बीबी के विवाह की बात सुन कर एक - एक रस्म याद आनें लगी। वधू का पर्दे में रहना, वर का घोड़े पर सवार होना, चमेली की मालाएँ, शहनाई, सुगन्धित इत्र, गैस के हंडे के प्रकाश में चमकनेंवाली मुस्कराहटें, आदि।

कुटुम्बराव ने बताया कि बीबी का पति फौज़ में नौकर है। कुछ ही दीनों में उसकी पद - बृद्धि होने वाली है।

मैंने सोचा एक अफसर के नाते बीबी का पति जब अपनी टुकड़ी को कूच का आदेश देगा तो क्या बीबी अपने संकेत से उस टुकड़ी को रोक देगी? पुराने समय के सरदार घोड़े पर चढ़ते थे, किन्तु आजकल टैंक, मोटर आदि ने घोड़ों का स्थान ले लिया है। कुटुम्बराव से भी पता चला कि बीबी के पति के पास एक साइकिलमोटर है। पति-पत्नी दिन भर उस पर घूमते रहते हैं।

दूसरे दिन मरेन्ना ने बताया कि बीबी अपने माँ-बाप के पास नहीं आई। मैंने न आने का कारण पूछा तो उसने कहा - 'मियाँ-बीबी कहीं टिक कर रहें तब तो! मोटर साइकिल पर घूमते-फिरते हैं।'

मैं दूसरे दिन घर लौट आया।

मेरे घर पहुँचने के एक मास पश्चात् कुटुम्बराव ने मुझे पत्र लिखा - 'बीबी का पति मोटर साइकिल तेजी से चला रहा था। मार्ग में दुर्घटना हो गई। बहुत सख़्त चोटें आई थीं। अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई।' इस समाचार से मुझे बहुत कष्ट हुआ। पत्र में आगे लिखा था - 'पिछली सीट पर बीबी भी थी। वह भी सड़क पर गिरी थी, उसे साधारण-सी चोट आई।'

युवक अपने वाहन को तेज चलाना पसंद करते हैं। तेज चलने वाले वाहन से यात्रा करने में उन्हें आनन्द आता है। यौवन सदैव प्रगति, वेग और गति को प्यार करता है। मैंने सोचा, बीबी अपने पति के साथ मोटरसाइकिल पर रोज घूमने जाती थी। मोटरसाइकिल को तेज से चलता देख उसकी प्रेम-लालसा अधिक तीव्र हो जाती होगी। वह इस लालसा से अधीर होकर पति को मोटरसाइकिल थामने के लिए कहती होगी, किन्तु इस लालसा को स्पर्श करके एक अद्भुत गुदगुदी के साथ पति मोटर साइकिल की गति और बढ़ा देता होगा। बीबी ने वेग से चलने वाले अगले पहिये को देख कर अनुभव किया होगा कि उसकी काड़ियों तक उँगली नहीं पहुँच सकती। इसीलिए उसने पिछले पहिये में अपना पाँव दे दिया होगा। कुछ भी हुआ हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने तेज दौड़ती मोटर साइकिल की चाल रोकने का प्रयत्न अवश्य किया होगा।

इस प्रयत्न ने ही उसके पति की बलि ली होगी। वेदान्ती तथा दार्शनिक लोगों ने मृत्यु के अनेक कारण बताये हैं, किन्तु हाशिया महबूबा बीबी ने मृत्यु का एक नया कारण ही खोज निकाला। मानव इससे बड़ा कौन-सा कार्य कर सकता है कि वह निरर्थक जीवन की कोई सार्थकता

ढूँढ़ निकाले।

मैंने कल्पनाके सहारे बीबी को एक दुल्हन के रूप में देखा था - सफेद पाजामा, हरे रंग की लम्बी कुर्त्ती, नारंगी रंग का दुपट्टा, वक्षस्थल पर लोटनेवाली दो वेणियाँ, दाँतों की दीप्ति, कली जैसा छोटा मुँह, गोल - गोल उरोज, पतली कमर। लेकिन अब मेरे नेत्रों के सामने आ खड़ा हुआ बीबी का वैधव्य - रूप, बारह दून - उजाड़ में खडा हुआ अकेला वृक्ष, बीबी ने जैसे भूकम्प की तरह पति के प्रेम - पाश को छिन्नभिन्न कर दिया। हिमालय के किसी ऊँचे शिखर से अटके हुए मेघ-खण्ड के समान दिखाई दी बीबी। मैंने सोचा था - दुल्हन के रूप में जब कभी बीबी अपने पति के साथ मुझसे मिलने आएगी और सलाम करेगी तो मैं उसे कोई न कोई चीज भेंट में दूँगा। किन्तु अब वह विधवा बनी हुई मेरी कल्पना में आती है तो सोचता हूँ, उससे परिचय न होता तो बहुत अच्छा रहता। मुझे यह व्यर्थ की पीडा तो नहीं सहनी पड़ती।

मेरे मित्र कुटुम्बराव ने बीबी को विधवा के रूप में देखा है। मैंने अपने भाग्य को इस बात के लिए सराहा कि मुझे विधवा बीबी को देखना नहीं पड़ा। यद्यपि मैं भाग्य पर विश्वास नहीं करता, फिर भी इस बात के लिए मैंने उसका अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया, अपितु अपनी कृतज्ञता भी व्यक्त की।

मैं फिर एक बार किसी काम से हैदराबाद आया हुआ था। मेरे मित्र कुटुम्बराव का उन्हीं दिनों परिवर्तन हुआ था। उन्होंने इस बात का प्रबन्ध कर दिया कि जब तक मेरा काम पूरा न हो मैं उनके घर में ठहर सकता हूँ। हैदराबाद से जाते समय वे मेरी सेवा के लिए अपना नौकर मेरे पास छोड़ गये। आगे कमरे में पंखा नहीं था। मकान के सामने जो कसाई की दूकान थी वह उठ चुकी थी और उसके स्थान पर एक चाय की दूकान लग गई थी। इस दूकान से लाउडस्पीकर की सहायता से दिन - रात रिकार्ड सुनाई देते रहते थे। एक - दो दिन में ही मैं इस आवाज़ का

अभ्यस्त बन गया। अवांछनीय स्थितियों से भी समझौता करना पड़ता है।

चाय की दूकान के सामने एक साईकिल आकर रुकी। एक मोटर साइकिल भी वहीं आकर रुक गई। दो-तीन बच्चे उस साइकिल तथा मोटर साइकिल को ध्यान से देखने लगे। उन बच्चों को देख कर मुझे बीबी की याद आ गई। अब उस दूकान के पास बीबी जैसा कोई प्राणी नहीं रह गया था जो यंत्रों के साथ खिलवाड़ कर सके। कुटुम्बराव से पता चला कि बीबी आजकल दिखाई नहीं देती। न जाने क्यों, बीबी को देखने की इच्छा उत्कट होती गई। यह ठीक है कि उसे देख कर दुःख के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता, किन्तु दुःख का अनुभव भी तो एक प्रकार का आनंद देता है।

समुद्र की गहराई में पड़ी सीपी का मोती और नाग के माथे की मणि भी हम में उत्सुकता उत्पन्न करते हैं, हमें आकर्षित करते हैं। क्लिओपेत्रा ने साँप पाला था, मिश्र की साम्राज्ञी ने फेरटेरिटी कँटीली झाड़ी की छाया में सोया करती थी, झाँसी की रानी ने अपने खून से चिट्ठी लिखी थी।

बीबी इतिहास के पृष्ठों में छिपी हुइ नारी है। जमना के तट पर उजड़े महल के किसी कोने के कमरे में गुलाब के फूलों के पीछे मुँह छिपाये अरुण सन्ध्या को देख जिस बेगम ने अपने लाल अधरों को अपने ही दाँतों से काट लिया, रुधिर जम न जाये इस प्रयत्न में लगी हुई काम-वासना से व्यथित तथा पति-विरह से सन्तप्त बेगम; इस प्रकार के अन्तःपुर से मक्त मुस्लिम कन्या है बीबी। आज न तो शासन करने के लिए राजकुमार है और न पराजित करने के लिए राज्य, सवारी के लिए पालकी भी नहीं है। बीबी को जो मिला था उसे यंत्र ने डस लिया।

राजन्ना चाय की दूकान से सीधे मेरें पास आया। मैंने पूछा - 'बेचारी बीबी का न जाने क्या हाल है?'

'हाल क्या, मजे में है।'

'क्या मतलब?'

'मिलने के लिए मेरें घर आई थी।'

'बहुत उदास थी?'

उदास क्यों रहती? मेरी दीवार कीं घड़ीं खराब कर गई।'

'कैसे?'

'हमारे घर में एक पुरानीं दींवार-घड़ीं है। मेरा लड़का चाबीं देकर ढ़क्कन बन्द करना भूल गया। बीबी ने उसका पेंडुलम पकड़ कर इधर-उधर हिलाया। और भी न जाने क्या किया, घड़ीं बेकार हो गई।'

मुझे हँसी आ गई।

'वह इसी तरह का कोई न कोई काम करती रहती है। हर चीज में हाथ डालना, तोड़ना-फोड़ना, चलती चीज़ को रोकना, यही तो उसका काम है!'

'उसका स्वभाव पड़ गया है। न जाने बेचारी का किस तरह निभाव होगा।'

'भगवान ही जानता है। माँ मशीन चलाती है, उसने भी दर्जी का काम सीखा है। कपड़े सीती है।' राजन्ना चला गया।

इसी समय मरेन्ना मेरे कमरे में आया। मैं अपनी उत्सुकता पर काबू नहीं पा सका। उससे मैंने पूछा- 'विधवा होने के बाद तुमने बीबी को देखा है?'

'जी नहीं। जब से उसका पति मरा है, वह घर से बाहर नहीं निकलती है।'

'फिर राजन्ना के घर क्यों गई थी?'

'साग या चाँवल-दाल लाने गई होगी।'

'आजकल कहाँ रहती है?'

'अपने दूसरे पति के साथ। मजे में गुजर रही है।'

'उसकी दूसरी शादी कब हुई?'

'मस्तान दर्जी ने बताया कि दो महीने पहले बीबी ने पुनर्विवाह कर लिया।'

'सच?' मैंने आश्चर्य प्रकट किया।

'जी हाँ, उसका पति मलाबारी मुसलमान है। पति का नाम हाफिज है। हवाईजहाज का पाइलेट है।'

'विवाह में तुम भी सम्मिलित हुए थे?'

'मैं कैसे सम्मिलित होता। बीबी और उसके पति में अचानक मित्रता हुई थी। हवाईजहाज में सैर करने की इच्छा से बीबी ने पाइलेट के साथ चुपचाप विवाह कर लिया।' इतना कह कर मरेन्ना किसी काम से बाहर चला गया।

बीबी के दूसरे विवाह की बात सुनकर मेरी चिन्ता मिट गई। किसी कन्या का जीवन माता बनने पर ही पूर्ण होता है। इसीलिए पाठक लोग अपने लेखक को आदेश देते हैं कि उपन्यास तथा कहानी में पृथक जीवन व्यतीत करने वाले नायक तथा नायिकाओं की जोड़ी मिला दें। दोनों के विवाह के साथ कहानी समाप्त होनी चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति जवानी में अविवाहित रहता है तो उसकी देख-रेख का दायित्व समाज पर रहता है। जब तक कुँआरा आदमी विवाह नहीं करता, समाज चैन की साँस नहीं ले सकता।

जैसे ही मैंने सुना, बीबी ने दूसरा विवाह कर लिया है, उसके प्रति मेरी सहानुभूति कम हो गई। मैंने उसके बारे में सोचना बन्द कर दिया, हाँ जब कभी ध्वनि करते हुए किसी वायुयान को आकाश में उड़ता देखता हूँ तो उसकी याद आ जाती है।

मैं दो-तीन महीने तक हैदराबाद नहीं जा सका। मेरे मित्र कुटुम्बराव का परिवर्तन दूसरे नगर में हो गया था। वहाँ उसका स्वास्थ्य खराब हो गया। उसने दुबारा हैदराबाद में परिवर्तन कराने के लिए बहुत प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ। दो मास की लम्बी छुट्टी लेकर वह हैदराबाद आ गया। वहाँ चिकित्सा के लिए अस्पताल में भर्त्ती हो गया। उसकी चिट्ठी मिलते ही मैं हैदराबाद पहुँच गया।

डाक्टरों ने सलाह दी कि कुटुम्बराव को पूरी तरह विश्राम करना चाहिए। इस प्रकार की सलाह देने वाले डाक्टरों को मैं बहुत पसंद करता

हूँ। हमेशा काम में जुते रहना हर प्रकार की बीमारियों को निमन्त्रित करना है। मेरा विचार है कि प्रत्येक मनुष्य वर्ष में कम से कम एक दिन सारा काम-धन्धा छोड़ कर संसार पर दृष्टिपात करे तो उसे सत्, चित् और आनन्द तीनों अवश्य मिलेंगे। अवकाश का समय आत्म-विश्लेषण के स्थान पर प्रकृति के अवलोकन में बीतना चाहिए।

किन्तु संसार मेरी बात कहाँ सुनता है? अनेक व्यक्तियों ने इन बातों का उल्लेख किया है, किन्तु एक-दो सुकृतियों के अतिरिक्त इस प्रकार के उपदेश का पालन कोई नहीं करता। भूमण्डल प्रतिक्षण घूम रहा है, समय परिवर्तनशील है, किन्तु मनुष्य 'नित्यकर्म' जैसे क्रियाकलाप में भटकता रहता है। 'नित्यकर्म' भी तो मनुष्य का ही बनाया हुआ है। बीबी के समान कोई देहधारी इस नित्यकर्म के चक्र को रोकना चाहे तो उसके पुर्जे निकल जाते हैं।

मैं कुटुम्बराव के वार्ड के बगलवाले कमरे में मस्तान दर्जी से भी मिलने गया। उस समय उसके घुटनों में दर्द रहता था। डाक्टरों ने उसके घुटनों में रबर की नलियाँ डाल दी हैं। इन नलियों के कारण वह चलने-फिरने लगा है। चार-पाँच दिन में अस्पताल से छुटकारा मिल जाएगा।

मैंने मस्तान दर्जी को सान्त्वना देते हुए कहा - 'दिन-रात पाँव से सीने की मशीन चलाने के कारण तुम्हारे घुटने खराब हो गये हैं। थोड़े दिन हाथ की मशीन से काम करो।'

'बेचारा मस्तान दर्जी ही तो अकेला पाँव की मशीन से कपड़े नहीं सीता। सभी दर्जी पाँव से मशीन चलाते हैं। सब के घुटनों में दर्द थोड़े ही होता है। बेचारे का भाग्य ही खराब है।' मरेम्मा ने कहा।

मस्तान रबर की नलियाँ ठीक करने लगा तो उसके बाँये हाथ के पिछले भाग में गहरी चोट का निशान दिखाई दिया। मैंने पूछा - 'यह चोट कहाँ लगी थी तुम्हें?'

'यह चोट औरंगाबाद में लगी थी, साहब। वहाँ फौज की मशीनों का नीलाम हो रहा था। बीबी ने कहला भेजा था कि वहाँ सस्ते दाम पर

मशींन मिलेगीं: एक खरींद लूँ।'

'बीवी का क्या हाल है?'

'अच्छीं है। अपने पति के साथ रोज सैर को निकलतीं है। पति के पास एक जीप है। पति-पत्नीं दोनों ....।'

'भर भर भर्र, सैर करते हैं।' मरेंत्ना ने बींच में हीं टोका।

'हवाई जहाज की सैर नही कीं?'

'मुझे पता नहीं। मैं दो-तींन दिन हीं तो ठहरा। एक दिन तो नीलाम में ही चला गया। बींबीं का पति हवाजी जहाज चलाना सींख चुका है। दूसरे लोगों को चलाना सिखाता है। जहाँ वह हवाई जहाज चलाना सिखाता है, वहाँ कोई स्त्रीं नहीं जा सकती।'

'तुम भी हवाई जहाज में सवार नहीं हुए।'

'जीं नहीं।'

'मशींन खरीदी?'

'खरींदीं है। मैंने नींलाम से मशींन खरींदीं। बींबीं के घर आकर मैं मशीन कीं जाँच-पड़ताल कर रहा था कि बीबी ने चलतीं मशींन के पहिये में हाथ दे दिया। ऊपर का बेल्ट निकल गया और मेरी उँगलियाँ सुँई के नीचे आ गईं। उसी का निशान है।' मस्तान ने इतना कह कर उदास नेत्रों से अपने हाथ की ओर देखा।

दूसरे दिन कुटुम्बराव दवाखाने से डिस्चार्ज होने वाला था। उसे घर लाने की तैयारियाँ की जा रहीं थीं। मरेंत्ना था कि बहुत देर से उसका पता नहीं था। उसके बिना घर का काम कौन करता? उसी गली के एक दूकान के मालिक गालिब अपनी बेटी ख़ैरुन्निसा को साहायता के लिए भेज रखा था। ख़ैरुन्निसा देखने में कालीं थी। लम्बा चेहरा, गालों पर गुदा हुआ तिल, कानों में बुन्दे। बोलती कम थीं किन्तु काम में चतुर थीं।'

कुटुम्बराव ने ख़ैरुन्निसा को डबलरोटी लाने के लिए भेजा था। मैं स्नान करके खिड़की के सामने बैठा अखबार पढ़ रहा था। मैंने कुछ समय बाद चाय की दूकान पर दृष्टि डाली तो देखा, लोगों की भीड़ लगी हुई है।

किसी प्रकार की आवाज़ सुनाई नहीं दी। उस भीड़ में ख़ैरुन्निसा भी दिखाई दी। उसके हाथ में एक पोटली थी। मैंने देखा, कुछ ही क्षण बीते थे कि वह हाँफती-काँपती हमारे घर की ओर दौड़ी आ रही है। मैं खड़ा हो गया। जब वह मेरे कमरे में आई तो मैंने खड़े होकर पूछा - 'क्या बात है?'

'लोग कहते हैं, बीबी मर गई।'

मैं और कुटुम्बराव स्तब्ध खड़े रह गये। हमारे मुँह से निकला

हम दोनों सड़क पर आये। भीड़ में मरेन्ना भी था। उसके पीछे मस्तान दर्जी था।

'क्या हो गया था? कैसे मर गई?'

मस्तान वहाँ से धीरे-धीरें हमारे घर आया। बरामदे में बिछी हुई बेंच पर बैठ कर उसने गहरी साँस ली और कहने लगा - 'हवाई जहाज से गिर कर मर गई।'

जब हमने दुर्घटना को विस्तार के साथ कहने के लिए आग्रह किया तो मस्तान नें कहना शुरू किया - 'सचाई तो खुदा जानता है, बीबी का दूसरा पति हाफिज हवाईजहाज में काम करने वाली एक औरत से प्यार करने लगा है। वह औरत हवाई जहाज कें यात्रियों को चाय पिलाती है। हाफिज उस औरत को भी काम सिखाने के लिए अपने साथ हवाईजहाज में ले जाता है। बीबी ने यह बात सुनी तो उसे बहुत बुरा लगा। हाफिज ने कह रखा था कि औरतें हवाई अड्डे पर नहीं जा सकतीं किन्तु यह क्या, हवाई जहाज चलाना सिखाने के बहाने से उसका पति रोजाना दूसरी युवती को साथ ले जाता है। बीबी ने अपना सन्देह पति के सामने प्रकट भी किया किन्तु पति ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। बीबी ने देखा वह युवती हवाई जहाज में ही नहीं जीप पर भी उसके पति के साथ सैर को जाती है। इस बात को वह सहन नहीं कर सकी।'

'उस दिन हाफिज हवाई अड्डे के लिए घर से निकलने लगा तो

ने साथ चलना चाहा। हाफिज ने जब मना किया तो उसने चलने की हठ पकड़ ली। हाफिज उसकी उपेक्षा करके दौड़ने लगा तो वह उसके साथ हो ली। बीबी की माँ ने भी उसे बहुत रोका था।'

'हवाई अड्डा सूना पड़ा था। हाफिज और हवाई जहाज चलाने की शिक्षा लेने वाली वह मारवाड़ी युवती एक वायुयान पर सवार हो गये। अन्दर पहुँच कर उन्होंने हवाई जहाज का दरवाजा बन्द कर लिया। बीबी दौड़ती-दौड़ती हवाई जहाज के निकट पहुँची। हवाई जहाज चलने वाला ही था कि बीबी ने उसे न चलाने का आग्रह किया। उसकी बात हाफिज ने नहीं सुनी। बीबी ने उछल कर दरवाजा पकड़ना चाहा, हाथ फिसल गया और वह धम से नीचे गिर गई। गिरते ही मर गई। यह सब उस मारवाडी युवती ने बताया है।'

'किन्तु हाफिज कहता है-बीबी हवाई जहाज के सामने खड़ी हो गई थी। हवाई जहाज चल पड़ा तब भी वह अपनी जगह से नहीं हिली। हवाई जहाज उससे टकराकर आगे बढ़ गया। एक फर्लांग जाकर मैंने उसे रोका। नीचे उतर कर देखता हूँ तो बीबी का कहीं पता नहीं।'

'सचाई क्या है, भगवान ही जानते हैं। किन्तु यह बात माननी पड़ेगी कि बीबी बहुत पानीदार औरत थी।' इतना कह कर मस्तान अपने घुटनों को देखने लगा।

कुटुम्बराव की आँखे गीली हो गईं। मेरी आँखों में भी अनायास आँसू आ गये। मैंने दस्ती से आँखें पोंछीं।

'हाफिज ने जान बूझ कर उस बेचारी को हवाई जहाज की टक्कर दी। इसीलिए तो पुलिस ने उसे गिरफतार कर लिया। उस युवती को....।'

मस्तान भला क्यों मौका चूकता? वह स्वयं हाफिज से मिला था। उसने अपनी इस भेंट का हाल सुनाया-'हाफिज रोता रहता है, उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि बेचारी बीबी इस तरह मर जाएगी। जब बीबी ने हवाई-जहाज रोकने के लिए कहा था तो हाफिज ने सोचा था मजाक कर रही है। बीबी तो हवाई जहाज के नीचे

पिस गई थी। लोग रात भर लालटेन ले-लेकर उसे ढूँढ़ते रहे, पता नहीं चला। प्रातःकाल झाड़ियों में बीबी के कपड़े और गहने दिखाई दिये। पुलिस ने उन कपड़ों और गहनों को पहचानने के लिए मेरे पास आदमी भेजा था। मैं मरेन्ना को भी साथ ले गया। रात में मोटर से गये थे, दोपहर में औरंगाबाद पहुँचे। मैंने देखते ही बीबी के कपड़े पहचान लिये। पुलिस ने हाफिज और उस मारवडी युवती को पकड़ लिया। अधिकारियों का कहना है कि वे दोनों जल्दी ही छोड़ दिये जाएँगे।'

'उफ़! मैं भी इन पुलिस अफसर के साथ औरंगाबाद से हवाई जहाज में आया हूँ।' मरेन्ना ने कहा।

चाय की दूकान से फिर संगीत सुनाई देने लगा। भीड़ धीरे-धीरे छँट गई। दैनिक जीवन फिर पूर्ववत् चलने लगा। सूर्य ऊपर चढ़ता जा रहा था। उस दिन मुझे खाने की इच्छा नहीं हुई। कुटुम्बराव दूध के साथ डबल रोटी खा कर सो गया। आकाश में दूज का चाँद बादलों की ओट में छिप गया, बेचारा अपना उदास मुँह कैसे दिखाता?

मैं और कुटुम्बराव देर तक बीबी की मृत्यु की चर्चा करते रहे। हम दोनों इस निर्णय पर पहुँचें कि हवाई-जहाज के रवाना होते समय बीबी ने उसे रोकने का प्रयत्न किया होगा। उसने हवाई जहाज के बगल में जाकर कुछ उपाय करना चाहा होगा। जब वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया तो वह सामने खड़ी हो गई होगी। उसने चिल्ला कर हवाई जहज रोकने का अनुरोध किया होगा, किन्तु उनकी बात हाफिज तक नहीं पहुँची होगी। जब हवाई-जहाज चलने लगा होगा तो बीबी ने पंख पकड़ कर रोकने का प्रयत्न किया होगा। उसका स्वभाव ही ऐसा था। हवाई-जहाज के पंखे ने उसे घुमा-फिरा कर चकनाचूर कर दिया होगा। इसीलिए उसके मांस-खण्डों का पहचानना किसी के लिए संभव नहीं था।

इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए हमें अपनी बुद्धि पर उचित गर्व हुआ। मृत्यु का कारण कुछ भी रहा हो, हमने तो कारण खोज लिया था।

मैं एक पत्थर पर जा बैठा। आकाश के तारे धुँधले-धुँधले दिखाई

देने लगे। दूर से किसी जानवर के चीखने की आवाज़ सुनाई दी। मेरे पाँवों के पास झिंगुर का रुदन प्रारंभ हुआ। रात के उस सन्नाटे में मेरी साँस का क्या मूल्य था? मैं एक गहरी साँस छोड़ कर कमरे में लौट आया।

किसी मृत्यु के साथ कहानी का अन्त सरलता से किया जा सकता है। जीवन-घटनाएँ इस रूप में उपलब्ध नहीं होतीं कि हम उन्हें जैसे का तैसा कहानी के चौखटे में बिठा दें, किन्तु बीबी की जीवनी बनी-बनाई कहानी है, फिर मैं अपनी कल्पना से काम क्यों लूँ अथवा अपनी व्याख्या के साथ उसे क्यों समाप्त करूँ? इस कहानी को पूरा पढ़ने के पश्चात कोई विशेष तात्पर्य तक नहीं पहुँच सकता। यदि कोई सज्जन इस कहानी के तात्पर्य से मुझे अवगत करा सके तो मुझे प्रसन्नता होगी।

कहानी का कोई न कोई आशय निकले तो मन को शान्ति मिलती है। किसी न किसी उद्देश्य से मनुष्य को इस सृष्टि में भेजा जाता है। संभवत: निसर्ग किसी व्यक्ति को जन्म देकर अपने अस्तित्व को प्रकट करती है। मनुष्य की सहायता के लिए अन्य प्राणी जन्म लेते हैं। प्रत्येक प्राणी इस सृष्टि के अनुसन्धान में लगा हुआ है। प्रकृति अच्छी तरह जानती है कि कौन अपना उद्देश्य पा सका और कौन असफल रह गया। कुपथ में पाँव रखनेवालों, घमण्डी और क्रोधी व्यक्तियों को प्रकृति सावधान करती रहती है। कुछ मनुष्य अपने से अधिक शक्तिशाली को सहन नहीं कर सकता। बीबी भी उसी श्रेणी की महिला थी।

सृष्टि के आरंभ में सब कुछ अंडाकार था। कौन बता सकता है, कि यह ब्रह्माण्ड उस समय एक गोले की भाँति क्यों भटक रहा था। कौन जानता है कि वह गोला कहाँ से आया था? आरंभ में इस गोले को किसी नें घुमा कर छोड़ दिया होगा, तब से लेकर अब तक वह घूम रहा है। अनन्त काल के इस परिभ्रमण में अणुओं के दबाव से बहुत-सी सामग्री टूट कर बिखर गई, इस विखण्डित सामग्री ने ग्रहों का रूप धारण किया। ये ग्रह भी घूमने लगे। इन ग्रहों में से भी छोटे-छोटे टूटते रहे और इन खण्डों से उपग्रहों की रचना हुई। यद्यपि वह गोला

अनेक खण्डों में बँट कर बहुत-से ग्रहों और उपग्रहों का रूप धारण कर चुका है, फिर भी उन सब खण्डों में परस्पर आकर्षण बना हुआ है। वे सब निश्चित मार्ग पर, निर्धारित दूरी पर घूमते रहते हैं। ग्रहों-उपग्रहों की संख्या बढ़ती जा रही है। कुछ अधूरे न रह कर पूरे बनते जा रहे हैं, कुछ छोटे से बड़े बन रहे हैं। विश्व का प्रत्येक अंश घूम रहा है। इस परिभ्रमण को कोई रोक नहीं सकता। जिस शक्ति ने आरंभ में इस ब्रह्मांड को घुमाया था, वह भी इस के परिभ्रमण को आज रोकना चाहे तब भी यह ब्रह्मांड रुकेगा नहीं। विश्व के अनन्त विस्तार में मनुष्य का अवलोकन किया जाये तो मानव कितना अकिंचन दिखाई देगा। किन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि सृष्टि के विस्तार को नापने की महान शक्ति और इसके रहस्यों को समझने की अद्भुत चेतना केवल इस अकिंचन मनुष्य में ही है। मानव अपने अनुमान के द्वारा ही तो अपनी अकिंचनता का पता चलाता है।

इस विश्व के रहस्य को जानने की जिज्ञासा एक अलग चीज है और इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर अपनी इच्छा को क्रियान्वित करना तथा रहस्य का पता चलाने में अपने आप को खो देना दूसरी बात है। बीबी इस गतिशील सृष्टि को, भ्रमणशील विश्व को क्षण भर के लिए रोकना चाहती थी। इस प्रकार की इच्छा यौवन के लिए तो और भी अनुपयुक्त है। बेचारी का शरीर इस प्रकार की जिज्ञासा को गुप्त रखने अथवा वहन करने में असमर्थ सिद्ध हुआ। बेचारी बीबी यह जानती थी कि जो कार्य देवताओं के लिए भी असंभव है, वह उसके लिए कैसे संभव होती। इस प्रकार की जिज्ञासा के साथ विधाता ने उसे इस सृष्टि में क्यों भेजा था? अन्ततः सृष्टि ने उसे अनुपयुक्त सिद्ध करके उसका अस्तित्व ही मिटा दिया।

कुछ दूर मरेन्ना एक चट्टान पर बैठा था। उसे देखते ही मेरी विचार श्रृंखला रुक गई। मैंने उससे पूछा-

'मरेन्ना, यहाँ अकेले क्या कर रहे हो?'

'यों ही आया था। कुछ सूझ नहीं रहा है।'

'क्या हुआ ?'

'बीबी के बारे में सोचता हूँ तो ....।' इतना कह कर उसने जेब से एक पुड़िया निकाली। पुड़िया खोलते हुए बोला - 'हम लोग रात भर उसे खोजते रहे। कहीं पता नहीं चला। सवेरे झाड़ियों में उसके लीर-लीर बने कपड़े मिले। वहाँ यह बाल भी पड़ा था।'

मरेंत्रा ने पुड़िया से लम्बा बाल निकाल कर हथेली पर रखा। बोला - 'यह बीबी की चोटी का बाल है।'

'तुम्हें कैसे मालूम कि यह बीबी की चोटी का बाल है?'

'देखिये, इस बाल में गुलझट - सी है न। बीबी की माँ के बाल घुँघराले हैं। बीबी के बाल भी घुँघराले थे। बीबी को घुंघराले बाल पसंद नहीं थे, उसने अपने बालों को सीधा करने का बहुत प्रयत्न किया था ....।'

मैं चलने को उद्यत हुआ तो मरेंत्रा भी मेरे साथ चलने लगा। थोड़ी दूर जाने के बाद वह बोला - 'हमें इन बातों से क्या? उसकी सारी बातें भुलानी होंगी।' इतना कह कर उसने बाल हवा में उड़ा दिया। हवा ने भी बाल का नग्न शरीर अपने में समेट लिया। प्राचीन कथाओं में तात्पर्य जोड़ने की परम्परा है। इस कथा को समाप्त करते समय मैं कहना चाहता हूँ - 'गति को रोकने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।'

मरेंत्रा का कहना है - 'किसी चीज से सम्पर्क नहीं बढ़ाना चाहिए।' गीता भी यही उपदेश देती है। मुझे इच्छा हुई मरेंत्रा ही नहीं, विश्व के समस्त प्राणियों को अणु में परिवर्त्तित करके मैं अपनी मुट्ठी में बन्द कर लूँ और उस बन्द मुट्ठी को हृदय से लगा लूँ। मुझे अनुभव हुआ कि एक क्षणिक अनुभूति के लिए अपना जीवान तक समाप्त करने वाली बीबी 'जीवन के रहस्य को खोजने में सफल हो गई।'

करुण कुमार

वेंकन्ना

'रेड्डी साहब ने लगान वसूल करने के लिए भेजा है हमें, सुनते हो रागैयाजी!' तड़के ही तड़के दो अरदली दरवाज़े पर यमराज की तरह आकर खड़े हो गये।

रागैया सत्तर साल का बूढ़ा है। अब तक सो रहा था। अरदलियों की आवाज़ सुन कर बैठा हो गया। बोला - 'दो दिन और ठहर जा भाई! लड़का बाहर गया है। लौटते ही पटवारी के यहाँ हिसाब देख कर लगान दे देगा।'

'पटेल साहब नहीं मान रहे हैं। कहा है, आज किसी भी तरह वसूल करके लाओ। लगान न देने की सूरत में तुम्हारे बैल खोल कर लाने का आदेश दिया है।' इतना कह कर अरदली अपनी-अपनी लाठी कन्धे पर सँभाल कर अकड़ के साथ खड़े हो गये।

'बैल खोल कर लाने के लिए कहा है!' रागैया के कानों में जैसे ही यह बात पड़ी उसके हृदय में भाला-सा-चुभा। सत्तर वर्ष की आयु में उसने ऐसी बात नहीं सुनी थी। हजार-पन्द्रह सौ रुपये वार्षिक लगान देने वाले बड़े-बड़े रेड्डी लोग भी समय पर लगान नहीं दे पाते थे, किन्तु मामूली किसान होते हुए भी रागैया ने आज तक ठीक समय पर लगान दे कर रसीद प्राप्त की है। वह दूसरों को सलाह दिया करता था, उसने दूसरे से कभी परामर्श नहीं लिया। किन्तु आज यह दिन भी देखना पड़ा। आजकल उसकी हालत अच्छी नहीं है। घर की जमा-पूँजी सब ठिकाने लग चुकी है। केवल एक बैल बचा है, यह बैल उसके घर में पैदा हुआ, घर में ही बड़ा हुआ। जोड़ी का बैल घर में नहीं है,

एक भैंसा खरीद लाया है। भैंसे और बैल की जोड़ी बना कर चार एकड़ जमीन में खेती करता है। बैल को वह अपने पुत्र रमणैया के समान मानता है। आज पटेल साहब उसी बैल को कुरक करना चाहते हैं! कितने बुरे दिन आ गये हैं। रागैया मन ही मन सोचने लगा।

रागैया की आँखें डबडबा आईं। आज तक उसने गौरव के साथ जीवन बिताया है। आज सब लोगों के सामने अपने बैल को कुरक होता हुआ कैसे देख सकेगा? बैल खुलने से पहले यदि उसका सिर कट कर पृथ्वी पर गिर पड़े तो अच्छा। कुरक कराने की अपेक्षा किसी कसाई के हाथ बैल बेच कर लगान चुकाना कहीं अच्छा रहेगा।

क्रोध के मारे रागैया की आँखें लाल हो गईं। उसने पलकों पर झुकी अपनी भौंहों को उठाया। झुर्रियों से भरे चेहरे में दोंनो नेत्र जल रहे थे। जैसे ही उसने भौंहें उठाईं, उन लाल-लाल नेत्रों से आँसू की दो बूँदें झर गईं। भौंहों के उठाते ही माथे में नाग के बच्चों की तरह तीन त्यौरियाँ पड़ गईं।

'सुनो, पटेल साहब से जाकर कह दो, मैं दस बजे तक लगान भिजवा दूँगा। यदि दस बजे तक लगान नहीं पहुँचा तो तुम लोग बैल खोल कर ले जा सकते हो।' रागैया ने गंभीर स्वर में कहा।

अरदली चले गये।

'आप क्या कहते हैं? बैल खोल कर ले जाएँगे वे लोग?' रागैया की पत्नी लक्ष्मम्मा घर के आँगन में बर्तन माँज रही थी। उसने बाहर निकल कर पति से पूछा।

'यदि हम सरकार का लगान समय पर न चुकाएँ तो क्या पटेल चुप बैठा रहेगा? पटेल ने कहलाया है कि या तो मैं लगान भरूँ या बैल कुरक कराया जाएगा।' रागैया ने कहा।

'कैसा जमाना आ गया है! हम क्या लगान भरने से इन्कार कर रहे हैं। सभी लोग तो पटेल साहब की तरह अमीर नहीं हैं। एक दिन आगे या दो दिन पीछे चुका दिया जाएगा।'

'इसमें पटेल का क्या दोष है? वे तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं।' रागैया ने पटेल के कार्य का औचित्य सिद्ध किया।

'आखिर पटेल भी तो हमारी जाति के किसान हैं, उन्हें क्या हमारे घर अरदली भेजना चाहिए? हमारा बैल कुरक कराने का आदेश देना चाहिए? इस वर्ष एक सेर अन्न भी तो नहीं हुआ खेत में। पटेल को लगान वसूल करने की इच्छा कैसे हुई?'

'हमारी चीख-पुकार बेकार है। तुम व्यर्थ में दुखी हो रही हो। कुछ भी हो, सरकार का पैसा तो चुकाना ही पड़ेगा।'

'तुम सदा ऐसा ही उपदेश देते हो तुम्हारे इन उपदेशों से ही तो हमारा घर बरबाद हो गया। आज ही लगान चुकाने की कोई आवश्यकता नहीं। बेटे को लौट आने दो। वही पटवारी के यहाँ जाकर हिसाब देखेगा और फिर लगान चुकता कर आएगा।'

'सरकार को कौन समझाये? वह किसी पर दया नहीं करती!'

'तब आपकी इच्छा। जी चाहे कीजिये।' लक्ष्मम्मा मारे खीज के भीतर चली गई।

आज तक लक्ष्मम्मा ने अपने पति के सामने मुँह नहीं खोला था। उसने अरदलियों की बात सुन कर सोचा था कि पटेल उसके पति से व्यर्थ में लगान वसूल कर रहा है। इसीलिए उसे क्रोध आ गया था, और मारे क्रोध के वह सारी जिम्मेदारी पति पर डाल कर घर में चली गई।

[२]

उस गाँव में एक सप्ताह से बैलों के व्यापारियों का पड़ाव था।

रागैया का बेटा रमणरेड्डी दस दिन पहले तमाखू के व्यापार के लिए नदी पार के गाँव गया था। जाते समय उसने एक सप्ताह में लौट आने की बात कही थी। किन्तु दस दिन हो गये। न जाने कब लौटेगा? उसके लौटने तक लगान कैसे रोका जा सकता? और लगान देने के लिए घर में पैसे कहाँ हैं? उसने दस बजे तक लगान भेजने का वचन दिया था। यदि वह नहीं भेज सका तो पटेल बैल कुरक करा लेगा। अन्तिम

वादा किया है उसने। पटवारी ने बताया था कि सब मिलकर बीस रुपये लगान निकलता है। इस साल तो खाने के लिए भी अन्न नहीं हुआ। गहना रख कर किसी से रुपये लाये जा सकते हैं, किन्तु उसकी पत्नी के गले में मंगलसूत्र के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। बेटा गांव में होता तो कहीं से उधार भी ला सकता था। वह स्वयं काफी वृद्ध हो चुका है। किसी से माँगते समय स्वाभिमान आहत होता है। पहले उसने निश्चय किया कि वह किसी के आगे हाथ नहीं फैलाएगा, किन्तु फिर सोचने लगा, माँगने में हानि क्या है? उसने एक महाजन से पच्चीस रुपये माँगे किन्तु महाजन ने कहा स्टाम्प पर उसके बेटे के भी हस्ताक्षर होने चाहिएँ और प्रतिमास एक रुपया व्याज देना पड़ेगा।

बेटा गाँव में होता तो इतनी झंझट न होती।

रागैया ने कुछ देर बाद सोचा कि भैंसा बेचा जा सकता है, किन्तु कठिनाई यह थी कि उस भैंसे की आठ-दस रुपये से ज्यादा कीमत नहीं मिल सकती थी। बैल के चालीस-पचास रुपये उठ सकते हैं। व्यापारी भी बहुत चालाक होते हैं। यदि हम अपनी गर्ज से बेचने जाएँ तो दस रुपये की चीज के पाँच रुपये लगाते हैं, एक पैसा ज्यादा देने को तैयार नहीं होते। किन्तु कठिनाई यह थी कि लगान आज ही चुकता न किया जाये तो पटेल साहब बैल खोल ले जाएँगे। प्राण रहते उससे यह नहीं देखा जाएगा कि अरदली उस के घर से बैल खोल ले जाये। इससे तो यही अच्छा होगा कि वह चुपचाप बैल बेच दे। इस तरह उसकी इज्जत भी बनी रहेगी। अब तक उसने क्या-क्या नहीं बेचा। उसके पिता कितनी जायदाद छोड़ गये थे। घर में कितने ढोर थे तब! एक-एक कर के सब बिक गये। जमीन भी बहुत कुछ चली गई। यह बैल घर ही में पाला गया है, इसीलिए उसके प्रति इतनी ममता है। अन्यथा इस बैल से क्या उसका पूरा पड़ेगा? जैसे इतने जानवर चले गये, यह भी चला जाए। रागैया के मस्तिष्क में कई विचार उत्पन्न हुए और कई विलीन हो गये।

रागैया की पत्नी तक को पता नहीं चला। उसने पत्नी से सलाह भी

नहीं ली। चुपचाप चप्पल पहन कर गाँव के बाहर बैलों के व्यापारियों के पास पहुँचा। दो-तीन व्यापारियों को घर बुला लाया। व्यापारियों ने पचास रुपये में बैल खरीदा। जैसे ही उसने बैल की रस्सी व्यापारी के हाथ में थमाई, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह अपने दुःख पर काबू नहीं पा सका। लक्ष्मम्मा ने यह दृश्य देखा तो वह भी रोने लगी।

'रोने से क्या लाभ? इस बैल के साथ हमारा इतना ही सम्बन्ध था।' रागैया ने पत्नी को सान्त्वना दी।

'मैंने यह बैल अपने बच्चे की तरह पाला था। इसकी माँ के बच्चे नहीं जीते थे। मेरे बच्चे भी तो छोटी आयु में ही मर जाते थे। मैंने वेंकटेश्वर भगवान की मानता की थी कि गाय का बच्चा जीवित बचेगा तो उसका नाम 'वेंकन्ना' (वेंकटेश्वर) रखूँगी। यह बैल मेरा बेटा ही तो था। अरे वेंकन्ना, जा रहे हो? तुम आज के बाद फिर मुझे कभी दिखाई नहीं दोगे। तुम्हारे बिना मैं इस घर में कैसे रह सकूँगी, वेंकन्ना? तुम घर में दिखाई नहीं दोगे तो रमणैया भी खाना-पीना छोड़ देगा....लक्ष्मम्मा ने रोते हुए वेंकन्ना की पीठ पर हाथ फेरा।

रागैया भीतर ही भीतर घुला जा रहा था। उसने जीवन में कई उतार-चढ़ाव देखे थे। औरतों की तरह रोने से कैसे काम चलता? उसे बड़े लोगों की बात याद आई-पति, पत्नी, पुत्र आदि से जितने दिन का सम्बन्ध होता है, उतने दिन ही हम साथ रहते हैं।'

'इस बैल में हमें इतनी ममता नहीं रखनी चाहिए। ऋण चुकाते ही वह हम से बिछुड़ रहा है।' रागैया ने एक बार फिर पत्नी को धैर्य बँधाया।

व्यापारी लोग रस्सा खींचकर बैल को अपने साथ ले गये। घर के पिछवाड़े बैल की थान सूनी देख कर लक्ष्मम्मा धाड़ मार मार कर रोने लगी। रागैया ने घर में आकर चुट्टा जलाया और फिर किवाड़ के पास दीवार से सटकर उकड़ू बैठ गया। उसका हृदय मारे दुःख के काँप रहा था। वह किसी तरह अपने को आश्वस्त करने के प्रयत्न में लगा रहा। उसे सबसे अधिक भय इस बात का लग रहा था कि रमणैया घर लौटने पर उससे झगड़ा

करेगा। रमणैया बैल को बहुत चाहता है। फिर उसने अपने को समझाया। क्या करता? किसी तरह लगान तो देना ही था। मेरी कठिनाई समझ कर रमणैया भी शान्त हो जाएगा।

रास्ते में अचानक अरदलियों से भेंट हो गई। रांगैया ने उनसे पूछा - 'मुझे कितना लगान देना है? पटवारी से हिसाब का पुर्जा लिखा लाओ, मैं अभी पूरा रुपया चुका दूँगा।'

'पटेल - पटवारी दोनों कचहरी में बैठे हैं, आप स्वयं जा कर क्यों नहीं चुका देते?' अरदलियों ने कहा।

रांगैया लोगों के सामने नहीं जाना चाहता था। इस में उसे लज्जा आ रही थी। पटेल - पटवारी के सामने जाकर उसे सिर झुकाना पड़ता, इसीलिए उसका मन विद्रोह करने लगा।

'भाई, जाकर कह दो, मैंने तुम लोगों को भेजा है। मेरा स्वाथ्य ठीक नहीं है। वहाँ तक चला नहीं जाएगा। पुर्जा लिखा लाओ। रुपये तैयार हैं।' रांगैया ने अनुरोध किया।

पटवारी ने हिसाब लगाया, चार बार वायदा करके लगान नहीं दिया, वचन - भंग का जुर्माना; बिना अनुमति लिये पानी से खेत सींचा गया, उसका जुर्माना; मार्ग - कर, शिक्षा कर, पी. डब्लू. डी. के ओवरसियर को दी जानेवाली रिश्वत आदि - आदि, सब मिला कर उन्नीस रुपये बारह आने हुए। पटवारी ने हिसाब कागज पर लिख दिया। अर्दलियों को लगान के रुपये चुकाने के बाद रांगैया के पास तीस रुपये चार आने बच गये। यह रकम उसने सँभालकर पेटी में रखी।

लक्ष्मम्मा चाँवल चढ़ा कर रोने लगी तो रोती ही गई। रांगैया ने गाँव के बाहर व्यापारियों के डेरे के पास जाकर अपना बैल देखा तो उसके हृदय से गहरी साँस निकली।

दूसरे दिन व्यापारी लोग बहुत तड़के अपने बैलों के साथ पश्चिम की ओर चले गये।

[३]

रांगैया के आठ बेटे-बेटी हुए, दो को छोड़ कर सब मर गये। रमणैया और वेंकन्ना भी सब के अन्त में बुढ़ापे में हुए थे, बेटी अपने पति के साथ ससुराल में आनन्द से जीवन बिता रही है। रामणैया अब पच्चीस वर्ष का युवक है। कुछ दिन पहले ही उसका विवाह मामा की बेटी के साथ हुआ है। उसकी पत्नी अभी ऋतुमती नहीं हुई है, इसलिए पीहर में रहती है।

रांगैया का पिता मरते समय सोलह एकड़ उपजाऊ जमीन छोड़ गया था, चार एकड़ बंजर जमीन थी, जहाँ पर्याप्त मात्रा में घास पैदा होती थी। दो एकड़ में फलों का बगीचा था, पक्का कुआ, दो अच्छे मकान, चार जानवर, और कुछ नकद रुपया भी था। इस चल-अचल सम्पत्ति के साथ-साथ चार हजार रुपये की देनदारी भी थी। जवानी में रांगैया ने खूब मेहनत की थी। फसल बेच कर उसने कर्ज चुकाना चाहा, किन्तु अकेला चना भाड़ थोड़े ही फोड़ सकता है! चार हजार का ऋण चुकाना क्या साधारण बात है? ब्याज दिन दूना बढ़ता गया। फसल, गाय के बछड़े, मिर्च आदि के बेचने से जो पैसा मिलता उससे केवल ब्याज चुकाया जाता। असल ज्यों का त्यों बना रहा। जब ब्याज चुकाते-चुकाते भी चार वर्ष में चार हजार के छह हजार हो गये तो रांगैया अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सका। नदी के निकट की दस एकड़ तरी जमीन और बाग बेच कर उसने ऋण चुका दिया। जो जमीन बच गई, उसी से घर का काम चलता था।

जी तोड़ मेहनत करने पर खेत से जो कुछ मिल जाता है, उसी से रांगैया के परिवार का गुजारा चलता है। लगान चुकाने और खेती का खर्च कटने के बाद खाने भर को मिल जाता है। किन्तु रांगैया भी क्या करे, पिछले दिनों जो तूफान आये, नदियों में बाढ़ें तथा अन्य प्राकृतिक उत्पातों के कारण किसान लोग तबाह हो गये। इसीलिए रमणैया किसानी के अतिरिक्त तमाखू का भी व्यापार करने लगा था।

दस दिन हुए रमणैया सिर पर तमाखू की गठरी रख कर व्यापार के लिए गया था। एक सप्ताह से अधिक तो वह कभी नहीं ठहरा था।

वेंकन्ना को बिके छह दिन हो गये। माँ - बाप, बेटे को बहुत प्यार करते हैं। रमणैया भी अपने माता - पिता के प्रति अगाध श्रद्धा रखता है। बेटे को घर पर देख कर माता - पिता का मन बहल जाता है। वह घर में नहीं होता, माँ - बाप उदास रहते हैं। दोनों इस बार बेटे की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से करने लगे।

सातवें दिन रमणैया घर लौटा। उसकी आहट पाकर रागैया खाट पर बैठा हो गया। बाप ने स्नेह - सिक्त स्वर से पूछा - 'इस बार बहुत दिन लगाये बेटा!'

'हाँ विलम्ब हो ही गया। फिर लौटते - लौटते विचार आया मामा को देखता चलूँ। वहाँ कुछ दिन और लग गये।'

बेटे की आवाज़ सुनकर लक्ष्मम्मा भी वहाँ आ गई। बोली - 'बेटा मामा के यहाँ सब कुशल से तो हैं?' 'और तो सब ठीक हैं, किन्तु मामा का पाँव बैल ने कुचल दिया है। पाँव बहुत सूज गया है। चल-फिर नहीं सकते।'

'मुझे सूचना क्यों नहीं दी। एक बार देख आती।'

'अब भय की कोई बात नहीं है माँ! नाई रोजाना तेल की मालिश करता है। मालिश से इतना हो गया है कि वे थोड़ा - बहुत चलने - फिरने लगे हैं।

'अच्छा' कह कर लक्ष्मम्मा भीतर गई।

'हाथ मुँह धोकर कुछ खा लो बेटा। तुम्हारा चेहरा बहुत उतर गया है।'

हाथ - मुँह धोने के लिए रमणैया पिछवाड़े गया तो उसे बैल दिखाई नहीं दिया। हाथ मुँह धोकर जब वह घर में आया तो उसने माँ से पूछा - 'माँ, तुमने आज चराने के लिए बैल को खेत में हाँक दिया क्या?'

माँ ने गहरी साँस ली। आँखें सजल हो गईं। रुँधे कंठ से बोली - 'बाबूजी ने बैल पचास रुपये में बेच दिया' क्या कहूँ?'

माँ के इस वाक्य को सुनते ही रमणैया की कमर टूट गई। दौड़ कर वह दालान में पिता के पास आया। उसने पिता से पूछा - 'बैल बेचने की क्या आवश्यकता थी पिताजी?'

'लगान चुकाने के लिए बेचना पड़ा बेटा! तुम तो घर पर थे नहीं। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। क्या करता ....?' रांगैया कुछ अधिक कहना चाहता था।

रमणैया को क्रोध आ गया।

'कैसा लगान? इस वर्ष फसल ही नहीं हुई। मुझसे पटवारी ने कहा था कि इस साल लगान माफ हो जाएगा।'

'मुझे क्या मालूम बेटा! लगान के बीस रुपये न भरता तो पटेल बैल कुरक करा लेता था। यही तो धमकी दी थी उन लोगों ने।'

'कम से कम मेरे लौटने तक तो ठहर जाते। कितना सुडौल और सुन्दर था हमारा बैल! किस तरह बेच सके उसे?'

'मैंने ठहरने के लिए कहा था बेटा! गिड़गिड़ा कर प्रार्थना भी की थी। उन लोगों ने मेरी बात नहीं मानी। क्या करता?'

'आपको बैल बेचनें की सलाह किसने दी थी: हम लोगों ने वह बैल कितने प्यार से पाला था। हम लोग अब खेती कैसे करेंगे? खाएँगे क्या?' रमणैया फूट-फूट कर रोने लगा।

'रोओ मत बेटा। उसके साथ हमारा इतने दिनों का हीं नाता था। मैं भी सात दिन से रो रही हूँ। मन मानता ही नहीं। ये भी क्या करते? बैल का कुरक होना कैसे देख सकते थे? आज हम लोगों ने अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की है। बैल को कुरक होता देख सब के सामने इनका सिर मारे लज्जा के झुक न जाता बेटा? रो मत बेटा। शान्ति रखो।' लक्ष्मम्मा ने अपने बेटे को सान्त्वना दी।

रमणैया सिसकियाँ भरने लगा। बोला - 'वह पशु की जून में था, किन्तु पशु नहीं था वह। वह सारी बातें समझता था। ऐसा समझदार जानवर किसी ने देखा है? हम लोगों को कितनी खुशी थी कि तिरुपति के वेंकटेश्वर ने ही हमारे घर में जन्म लिया है। हमने सोच रखा था इसी घर में उसने जन्म लिया है और इसी घर में उसकी मृत्यु होगी। लेकिन क्या से क्या हो गया!'

'व्यापारियों के हाथ में पड़ गया हमारा बैल। कहीं उन लोगों ने कसाई को बेच दिया तो! मेरा तो कलेजा फटा जा रहा है बेटा! आज तक वह हमारी सेवा करता रहा, लेकिन हम लोग कृतज्ञ नहीं निकले। उसका ऋण कभी नहीं चुकाया जा सकता।' लक्ष्मम्मा इतना कह कर आँसू पोंछने लगी।

रमणैया का क्रोध गाँव के पटेल-पटवारी पर उतरा। यदि वे सप्ताह भर ठहर जाते तो उनका बैल न बिकता। वह पटेल-पटवारी को खूब खरी-खोटी सुनाना चाहता था, जब उसने अपने मन की बात पिता को बताई तो रागैया समझ गया, उसका बेटा पटेल-पटवारी के घर जाकर झगड़ा खड़ा करेगा। उसने बेटे को समझाया - 'बेटा, जल्दबाजी से काम बिगड़ता है। पटेल-पटवारी की दुश्मनी से हमारी ही हानि है। वे लोग हमारी किस्मत तो नहीं बदल सकते!'

'मैं झगड़ा नहीं करूँगा। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि उन्होंने हम लोगों से इतनी रकम कैसे वसूल की? हमारी ओर तो बहुत कम रुपये निकलते थे।'

इतना कह कर रमणैया लम्बे डग भरता चौपाल पहुँचा। पटेल-पटवारी दोनों वसूली में डूबे हुए थे। चार-पाँच आसामी अपना हिसाब करा रहे थे।

'पटेल साहब, सरकार ने आपको कुछ अधिकार दिये हैं, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि आप हम जैसे गरीब किसानों का गला ही घोट दें।' रमणैया के स्वर में क्रोध था।

'हम किसी का गला घोटेंगे तो सरकार हमें फाँसी पर चढ़ा देगी।' पटेल ने हँसते हुए कहा।

'मैं घर पर नहीं था, तो क्या आप वसूल के लिए मेरा बैल बेच सकते थे? आप भी किसान हैं, आपके यहाँ भी बैल हैं, आप भी खेत रखते हैं। विचार से तो काम लेते।'

'हाँ, मेरे भी बैल हैं। किन्तु तुम्हारे पिता को बैल बेचने के लिए किसने विवश किया था?'

'लगान न चुकाने पर कुरक करने की धमकी दी थी आपने! इस धमकी का क्या अर्थ था?'

'भाई, यदि कोई किसान समय पर लगान न चुकाये तो उसका बैल ही कुरक होगा। क्या उस स्थिति में हम लोगों को किसान की पीठ थपकनी चाहिए।'

'मैं दो-तीन दिन में लौटने वाला था। इतनी जल्दी क्या थी? थोड़ा ठहर जाते तो क्या सरकार आप लोगों का गला उड़ा देती?'

'अरे भाई, सभी आसामी इसी तरह हीला-हवाला करते हैं। बताओ रिआयत करने से वसूली कब तक खत्म होगी?'

'आप लोगों ने हमारा सर्वनाश कर दिया। हम जैसे गरीबों को सता कर आप जैसे बड़े लोगों का भला नहीं हो सकता। कभी भला नहीं होगा। अब हम खेती कैसे करेंगे?' इतना कह कर रमणैया ने उपस्थित किसानों पर दीनता भरी दृष्टि डाली।

रमणैया के भोलेपन पर उपस्थित किसानों को ही नहीं पटेल और पटवारी को भी हँसी आ गई।

'हँसते क्यों हैं आप लोग? बूढ़े से बीस रुपये ऐंठ लिये। इतनी रकम तो हमारी तरफ नहीं निकलती थी?'

'पटवारी से हिसाब क्यों नहीं माँगते? सब कुछ मालूम हो जाएगा।' पटेल ने कहा।

जब रमणैया ने पटवारी से पूछा तो वह मुस्कराने लगा। बोला- 'नदीमातृका की चार एकड भूमि का लगान बाईस रुपये।'

'राम, राम, इस साल तो उस भूमि में सेर भर नाज भी नहीं हुआ। आप ही ने तो खेत देख कर कहा था कि इस वर्ष लगान में छूट मिलेगी।'

'कहा था, किन्तु तुम्हारी साढ़े तीन एकड़ भूमि की फसल खराब हुई, आधा एकड़ में तो पैदावर हुई है।'

'आधा एकड़ भूमि में पैदावार हुई है तो आप पूरे चार एकड़ का लगान लेंगे?'

'क्यों नहीं। देना पड़ेगा। मैंने और मेरे कारिंदों ने बताया था कि तुम्हारे खेत में रुपये में एक आना फसल हुई है, किन्तु तहसीलदार हमारी बात नहीं माना। उसने लिख दिया कि रुपये में दो आने फसल हुई है। किसी खेत में रुपये में दो आने फसल हो तो लगान में छूट नहीं मिलती।

'अच्छा, बाईस रुपये ही सहीं। मैंने पहले ही दो किश्तों में ग्यारह रुपये चुका दिये थे। ग्यारह रुपये चुकाने पर भी बाईस कहाँ से आ गये।'

'बंजर जमीन का लगान भूल गये!'

'उसका कितना लगान हुआ?'

'चार आने कम सात रुपये।'

'क्या कहा? जिस जमीन में दो सेर अनाज भी नहीं हुआ, उसका लगान सात रुपये। हमारा दीवाला निकालना चाहते हैं आप?'

'तुम्हें जुर्माना भी देना पड़ा है। खुश्की की जमीन में बिना अनुमति के नहर के पानी से सिंचाई की। जुर्माना और लगान दोनों की रकम पौने सात रुपये हुए थे।'

'वाह, यह भी खूब रही। दो सेर अनाज के लिए पौने सात रुपये लगान! लगता है, हम लोगों को यह गाँव छोड़ना पड़ेगा।' रमणैया ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

'हम भी सबेरें से अपना दुखड़ा रो रहे हैं, बेटा, लेकिन यहाँ हमारी शिकायत कौन सुनता है? भगवान सब देख रहे हैं। हम में से सभी को पाँच-पाँच रुपये जुर्माना भरना पड़ा है। हम को पता ही नहीं चलता कि आखिर हमें कितना लगान देना है।'

'पटवारी जी, आपके कहने से ही मैंने अपने खेत की सिंचाई की थी। यदि जुर्माना देना पड़ता तो मैं क्यों सींचता?'

'हाँ, मैंने तुमसे कहा था कि तुम नहर का पानी ले लो, किन्तु मैं क्या करूँ? पिछले साल गाँव के बड़े-बड़े किसानों ने आपस में झगड़ा

किया। इस झगड़े के कारण ओवरसियर को खुश नहीं किया जा सका। इसीलिए उसने इस गाँव को कोई रिआयत नहीं दी। उल्टे, सरकार को सूचना दें दी।'

'जिसकी लाठी उसकी भैंस, यह कहावत झूठी नहीं हो सकती। आप लोगों की दृष्टि में हम सब मूर्ख हैं, जानवर हैं। हमें क्या मालूम कि किस-किस की जेब गरम करके काम बनाया जा सकता है। हम तो आप दोनों को ही माँ-बाप मानते हैं। आप लोग ही धोखा देने लगे तो भरोसा किस पर किया जाये? आप लोगों ने चुपचाप हमारा गला काट दिया। यदि वह दिन देखने को न मिलता तो बहुत अच्छा रहता। जहर खा कर हम लोगों को मर जाना चाहिए था।'

रमणैया अपना गुस्सा उतार कर घर लौटा।

[४]

रमणैया ने लाख कोशिश की, किन्तु वह 'वेंकन्ना' को नहीं भूल सका। उस बैल को लौटा लाने के लिए कई गाँव छान डाले। कहीं व्यापारियों का पता नहीं चला। निराश घर लौट आया। घर में गले की घंटी, और पाँव कें घुँघरू देख कर वेंकन्ना याद आ गया। उसके मुँह से अनायास निकल गया-'वेंकन्ना, हमारी खेती कैसे होगी?'

'रमणैया रोता रहा। माँ-बाप ने बहुत समझाया, बेटा, खाना-पीना छोड़ कर इस तरह रोते रहने से काम कैसे चलेगा? तुम मर्द हो। मेहनत करोगे तो ऐसे बीस बैल खरीद लोगे।'

रमणैया के साथ रागैया भी दुखी था। पति-पुत्र को दुखी देख कर लक्ष्मम्मा कई बार विचलित हो उठती थी। रामणैया को पता चला कि उसके दु:ख से पिता भी बहुत व्यथित हैं तो उसका दिल पिघल गया। उसने उठ कर भोजन दिया।

दिन बीतने लगे। एक दिन अचानक वृद्ध रागैया को बुखार ने घर दबाया। बुखार के कारण ही बूढ़े की मृत्यु हो गई। घर का पूरा बोझ रमणैया के कन्धों पर आ गया।

दूसरे महीने रमणैया की पत्नी भी पीहर से आ गई। यहाँ से रमणैया के जीवन में दुख-सुख का सिलसिला प्रारंभ हुआ। गृहस्थ के बोझ ने कहीं भारी हो कर और कहीं हलका बन कर अपना परिचय दिया।

इतना सब होते हुए भी रमणैया वेंकन्ना को नहीं भूल सका। जहाँ कहीं कोई बैल दिखाई देता, वह चौंक पड़ता और सोचता, यह वेंकन्ना लौट आया। धीरे-धीरे उसकी वेंकन्ना को देखने की आशा समाप्त हो गई और वह परिवार की जिम्मेदारी तथा दुःख-सुख की श्रृंखला में पूरी तरह खो गया।

[५]

समय किसकी परवाह करता है? उसकी गति बहुत तीव्र होती है। मार्गशीर्ष का महीना था। वेंकन्ना को बेचे हुए सात मास बीत गये थे। कड़ाके का जाड़ा पड़ा रहा था।

लक्ष्मम्मा नित्य की भाँति इस दिन भी तड़के ही उठ गई। बहू-बेटे अभी सो रहे थे। मुर्गा बाँग लगा रहा था।

चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। लक्ष्मम्मा आँगन साफ करने के लिए हाथ में बुहारी लाई। उसने दरवाजा खोला ही था कि एक दुबला-पतला बैल घर में घुस आया। वह सींग सामने कर के घुसता ही गया। लक्ष्मम्मा को डर लगा, कहीं यह बैल सींग न मार बैठे। बैल सीधा घर के पिछवाड़े चला गया। लक्ष्मम्मा ने उसे बाहर निकालने की बहुत कोशिश की। अन्त में उसने विवश होकर बेटे को जगाया-'बेटा रमणैया, किसी का बैल भीतर घुस आया है। कहीं सींग न मार बैठे।'

रमणैया चौंक कर उठ खड़ा हुआ। कमर में अँगोछा बाँध कर वह पिछवाड़े की ओर दौड़ा।

रमणैया ने पिछवाड़े जाकर देखा-बैल भैंसे के खूँटे के सामने खड़ा है। भैंसा घबराया हुआ चौकन्ना बैल की ओर ताक रहा था।

रमणैया लाठी के साथ बैल के पास पहुँचा। रमणैया को देखते ही

बैल दो कदम आगे आ कर इस तरह खड़ा हो गया जैसे वह रमणैया के कान में कुछ कहना चाहता है। बैल और रमणैया चिरकाल के परिचित दिखाई दिये।

उजाला फैल रहा था। रमणैया ने बैल की ओर चकित नेत्रों से देखा। बैल की प्रदक्षिणा करके उसने बैल के कन्धे पर हाथ रख दिया। एक-दूसरे को पहचान गये। पुराना परिचय फिर ताजा हो गया।

'माँ, वेंकन्ना आ गया, वेंकन्ना आ गया माँ।' रमणैया जोर से चिल्ला उठा।

'ओह, मेरा वेंकन्ना आ गया! मेरा वेंकन्ना!!' लक्ष्मम्मा पुकारती हुई पिछवाड़े की ओर भागी। लक्ष्मम्मा ने देखा, उसके दोनों बेटे एक-दूसरे के दुःख-सुख की बात सुन रहे हैं।

'बेटा, कितना विश्वास है इसमें? कितनी कृतज्ञता है! सात महीने बीत गये तो क्या हुआ? कितनी अच्छी स्मृति है इसकी! न जाने किस गाँव से भाग कर आ रहा है बेचारा! कब चला होगा?' लक्ष्मम्मा बैल के निकट आ गई।

'वेंकन्ना मेरे, तुम कितने दुर्बल हो गये हो! तुम्हारी तो हड्डियाँ ही निकल आईं!' सजल नेत्रों से बैल की ओर देखते हुए उसने कहा-'हम लोगों ने सोचा था तुम भूल गये हम लोगों को। आज तक कहाँ रहे बेटा? तुम्हारा भाई रमणैया याद रहा? मुझे तो नहीं भूल गये? वे तो तुम्हें याद करते-करते चले गये। तुम्हें फिर देखने का भाग्य उन्होंने नहीं पाया था। आज तुम्हें अपने घर में देख कर वे कितने प्रसन्न होते! फूले न समाते!'

रमणैया और वेंकन्ना एक-दूसरे को देख कर खड़े के खड़े रह गये।

'तुम्हारे प्राण तो तुम्हारी आँखों में आगये लाल! तुम को मैं पहचान भी नहीं सकी। हमारी याद में तुम सूख कर काँटा हो गये।' लक्ष्मम्मा बैल की पीठ पर हाथ फेरने लगी।

इसी समय दो आदमी दरवाजे पर आकर खड़े हो गये। बोले-'हम चमार हैं माताजी। हमने परसों ही आठ रुपये में खरीदा था यह बैल।'

'तुम लोग कसाई हो कसाई। ओह, मेरे वेंकन्ना के कितने दिन लगे हैं।' लक्ष्मम्मा रोने लगी।

'यहाँ से ढोरों के व्यापारी इसे खरीद ले गये। कोटपाडु गाँव में यह पचपन रुपये में बेचा गया। व्यापारियों ने यानादि रेड्डी को बेचा था। यानादि रेड्डी के यहाँ इस बैल ने न तो चारा खाया, न पानी पिया। रेड्डी ने सोचा बैल बीमार हो गया। उसने तरह-तरह की दवाएँ दीं। कल रात इसे हाँकते हुए हम अपने गाँव ले जा रहे थे। हमको चकमा देकर यहाँ चला आया। इसे खोजते हुए हम यहाँ आये हैं। इस बैल में जितना प्यार है, उतना किसी आदमी में भी नहीं होगा।' चमारों ने वेंकन्ना का वृत्तान्त सुनाया। लक्ष्मम्मा और वेंकन्ना अवाक् रह गये।

रमणैया ने वेंकन्ना का सिर अपनी दोनों बाहुओं में समेट लिया। अपने आँसुओं से बैल के सिर का अभिषेक करने लगा। लक्ष्मम्मा अपने आँसू पोंछ रही थी। ठुड्डी के नीचे लाठी टिकाये दोनों चमार विस्मय से इस दृश्य को देख रहे थे।

बैल की पुतलियाँ स्थिर हो गईं। रमणैया घबराकर बैल की आँखों में देखे इतने में नन्दी की तरह सामने के घुटने टेक कर रमणैया लेट गया। रमणैया ने उसका सिर अपने हथों में थाम लिया। वेंकन्ना ने शान्ति पूर्वक अपनी आँखें बन्द कर लीं - सदा के लिए।

मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री

नहले पर दहला

इस कहानी का आधार वस्तुतः उस रात की वर्षा है। हम लोग क्लब के एक कोने में बैठे इत्मीनान के साथ ताश खेल रहे थे। खेल में बहुत आनन्द आ रहा था। हम लोगों का मेज पर खेल चल रहा था, किसी ने कहा 'डबल्स', किसी ने कहा 'रि डबल्स'।

हमारी मेज पर सब से अधिक हो हल्ला और शोरगुल होता था। यदि शर्मा साहब वहाँ उपस्थित हों तो शोरगुल का क्या पूछना? उनकी हलचल और उत्साह के सामने सभी को हार माननी पड़ती थी।

उस दिन हम लोग इसी प्रकार के शोरगुल में डूबे हुए थे। किसी को पता ही नहीं चला कि बाहर बादल छा गये हैं। देखते-देखते आकाश पर घनघोर घटा छा गई। चारों ओर अँधेरा फैल गया। मूसलाधार पानी बरसने लगा।

टेनिस खेलने वाले, आँगन में बैठ कर गपशप करने वाले, राजनीतिक विषयों पर चर्चा करने वाले सभी क्लब में घुस आये। अब तक हम निश्चिन्तता से खेल रहे थे, इतने लोगों के रहते हम कैसे खेल सकते थे? खेल बन्द करके हम लोग बातचीत करने लगे।

हम स्थानीय समाचारों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय धोखा-धड़ी की घटनाओं पर पहुँच गये। वर्षा देर तक होती रही। जिन लोगों का विवाह हो चुका था और जिनके घर में पत्नी थी, वे अपने-अपने घरों को चले गये। फिर भी २५–३० आदमी क्लब में बच ही गये। राजनीतिक बातें प्रारंभ हुईं। कुछ समय में ही वर्षा के साथ-साथ बातचीत ने भी जोर पकड़ा। दो भिन्न विचार रखने वालों में चर्चा प्रारंभ हुई। एक जस्टिस पार्टी से सम्बद्ध थे

और दूसरें काँग्रेसी विचार रखते थे। मैंने पहले सज्जन को कभी एक आना खर्च करके जस्टिस पार्टी का अखबार खरीदते नहीं देखा और न दूसरे सज्जन को सदस्यता की चौअन्नी देते देखा है। वे दोनों बड़ी तेजी से वाद-विवाद कर रहे थे। बात कहीं की कहीं पहुँच गई। दोनों एक दूसरे पर व्यक्तिगत आक्षेप करने लगे। बात हाथापाई तक पहुँच गई। स्थिति बिगड़ती देख कर भी हम लोग कुर्सियों से नहीं उठे। जम कर बैठे रहे।

इसी समय संयोग से वहाँ एक साँप निकल आया। किसी की दृष्टि साँप पर पड़ी, फिर तो 'साँप–साँप' की आवाज़ पूरे क्लब में गूँज गई। सब उठ खड़े हुए। कुछ लोग अपनी-अपनी छड़ी सँभाल कर झपटे। दस आदमियों के सामने बेचारा साँप क्या करता? मार डाला गया। लोग एक-एक करके शूरवीर की भाँति अपनी-अपनी कुर्सी पर लौट आये।

'न जाने कौन-सा साँप था?' किसी ने यों ही कह दिया- 'धारियों वाला साँप था।' किसी ने किसी से कहा-'यह है।' किसी ने कहा-'वह है।' साँप की सभी जातियाँ गिना दी गईं। किसी ने क्रोध में आकर कहा-'अगर आप लोगों को मालूम नहीं है तो ऊटपटांग क्यों बकते हैं?'

किसी ने कुछ भी कहा हो, हमारे शर्माजी ने निर्णय सुना ही दिया- 'मैंने ही तो उसे सब से पहले देखा था, मैंने ही मारा हैं। आप लोग मुझे क्या सिखाते हैं?' दो-तीन नौजवान उनके सामने आ खडे हुए, एक-एक बोलने लगा-'मैंने मारा है; मैंने मारा है।' इसी बीच चपरासी साँप को बाहर फेंककर अन्द आया। बोला-'वाह, आप सब लोग मिलकर पानी का साँप मार सकते हैं!' जिन नवयुवकों ने शर्माजी को चुनौती दी थी, वे एक-एक करके साँप के मारने की वीरता को छोड़ कर अलग हो गये। शर्माजी अकेले रह गये। तब से जनाब डींग मार रहे थे, अब पीछे हटने की जगह नहीं रह गई थी। इसी से हम लोग इनको सताते रहे। किसी ने साँप की कहानी प्रारंभ करके कहा-'एक

समय मैंने साँप देखा था। साँप मुझे देखते ही जमीन पर फ़न मारने लगा।'

एक वृद्ध ने कहा - 'एक बार एक नाग मुझ से शत्रुता करने लगा। दो वर्ष तक मैं मुँह छिपाये इधर - उधर भटकता रहा। जब मैं घर आया तो मेरे घर वालों ने मुझे नाम लेकर पुकारा। नाम का सुनना था कि नाग बाहर निकल आया। सब लोगों ने मिल कर उसे मारा था।'

दूसरे ने कहा - 'एक बार एक साँप ने मुझे काटा था। मैंने उसे पकड कर जहर की थैली निकाल ली। थैली का पूरा जहर पी गया। अब भी जीवित हूँ।'

एक बूढ़े महाशय नें विश्वास दिलाते हुए कहा - 'एक बार मैंने ऐसा साँप देखा जो मुँह से चिनगारियाँ उगल रहा था।' एक अन्य सज्जन ने कहा - 'किसी जादूगर ने एक चिट्ठी लिख कर गिरगिट की पूँछ में बाँध दी थी। वह गिरगिट साँप के बिल में छोड़ा गया। गिरगिट बिल में जाकर बहुत दिनों से छिपे हुए एक साँप को बाहर निकाल लाया। साँप का शरीर सूर्य की भाँति देदीप्यमान था।'

जब प्रत्येक व्यक्ति साँप के सम्बन्ध में अपना अपना अनुभव बता रहा था, हमारे शर्माजी से भी चुप नहीं रहा गया। बोले - एक बार गोदावरी में बहुत बाढ़ आई थी। सहस्त्रों ग्राम जलमग्न हो गये। मैं एक दिन गोदावरी में तैरने गया। मैं मझधार में था कि मुझे चमकता हुआ तार दिखाई दिया। जब मैं उस तार के निकट गया तो पता चला यह तो साँप है। लौट रहा था कि साँप मेरा पीछा करने लगा। किसी तरह किनारे पर पहुँचा तो वह मुझ से पहले वहाँ उपस्थित था। किनारे पर जो लोग खड़े थे, उन्होंने बड़ी कठिनाई से उसे मारा। उस साँप के माथे में एक मणि जगमगा रही थी। उस मणि को देख कर सभी का मन ललचाया, किन्तु निकट जाने का साहस किसी को नहीं हो रहा था। अन्त में सबने एक स्वर से स्वीकार किया कि यह कोई श्रेष्ठ जाति का साँप है। कोई इसे स्पर्श न करे। चन्दन की लकडियों से उसकी चिता

रची गई। फिर उस चिता में उस साँप के शव का दाह संस्कार किया गया। मैं इस घटना से ऐसा डरा था कि तीन मास तक बीमार पड़ा रहा। सर्वत्र सर्प ही सर्प दिखाई देते थे।'

हम लोग अब तक बड़ी सहनशीलता से सुनते रहे। चुपचाप देख रहे थे। शर्माजी की कहानी समाप्त होते न होते हम सब लोग एक साथ हँस पड़े। शर्माजी का चेहरा उतर गया। मारे क्रोध के इस तरह देखने लगे मानो हम सब को कच्चा चबा जाएँगे।

सब लोग कोई न कोई कहानी सुना रहे थे, किन्तु हमारे डाक्टर साहब सिगरेट पर सिगरेट धुनकते हुए किसी चिन्ता में डूबे हुए थे। उनकी पलक भी नहीं गिर रही थीं। जब हमारी हँसी कुछ कम हुई तो शर्माजी कुछ कहने को हुए। इतने में डाक्टर ने मुँह से सिगरेट निकाल कर दूर फेंक दी, और बोले-'मुझे भी एक बार बहुत भयानक दुर्घटना का सामना करना पड़ा। आज भी उस दुर्घटना का स्मरण हो आता है, तो रोम-रोम खड़ा हो जाता है।'

शर्माजी का मुँह खुला का खुला रह गया। हम सब की हँसी सहसा रुक गई। डाक्टर साहब का चेहरा देखने से पता चला कि वे कोई आश्चर्यजनक घटना सुनानेवाले हैं। हम सब चुपचाप उनके मुँह की ओर ताकने लगे। किसी ने पूछा-'भूत की कहानी है?' डाक्टर साहब ने उत्तर नहीं दिया।

'साँप तो नहीं था?' एक अन्य व्यक्ति ने प्रश्न किया। डाक्टर ने इस प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया। इसके बाद किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। 'मुझे कुछ समय के लिए एजेन्सी के एक गाँव में रहना पड़ा था।' डाक्टर साहब ने कहानी प्रारंभ की-उस गाँव की कोई विशेषता नहीं थी, फिर भी सरकार ने वहाँ अपना कार्यालय खोला था। गाँव छोटा और सुन्दर था। गाँव के बाहर एक छोटी-सी टेकड़ी है, जिस पर एक बँगला बना हुआ था। यह बँगला आज भी है। यह बँगला मुझे बहुत पसन्द था। मैं सोचा करता था कि कभी अवसर मिलेगा तो इस बँगले में

कुछ समय बिताऊँगा। आते-जाते मैंने देखा उस बँगले में कोई रहता नहीं है। उस ओर कोई जाता भी नहीं दिखाई दिया। मैंने सोचा यह तो अच्छी बात है। कम मूल्य पर मिल गया तो खरीद लूँगा। इसके बाद मैंने बँगले के बारे में जानकारी पाने का प्रयत्न किया। जिससे पूछा, उसीने कहा -इस घर में पाँव रखना भी ठीक नहीं। सभी ने मुझे किसी न किसी कारण से रोकना चाहा, किन्तु किसी ने यह नहीं बताया कि मुझे बँगले में क्यों नहीं जाना चाहिए। कुछ परिचित लोगों से कारण बताने के लिए आग्रह किया तो बोले-'यह घर किसी के लिए शुभ नहीं हुआ।' मैंने पूछा-'कोई इस घर में मर गया था?' उत्तर मिला 'एक नहीं।' किसी अन्य व्यक्ति से मैंने प्रश्न किया-'क्या उस बँगले में भूत-प्रेत हैं?' एक बूढ़े ने कहा-'भूत-प्रेत तो नहीं हैं। जब आप पूरी बात सुनना ही चाहते हैं तो सुनिये। उस बँगले में न जाने कब, कहीं से, एक बड़ा साँप आ गया। गत पच्चीस वर्ष से उस बँगले में कोई नहीं रहा। सुनते हैं, उस से बीस वर्ष पहले से यह बँगला खाली था। जो लोग वहाँ रहते थे, उनमें से दो को उस साँप ने डँस लिया था। इसीलिए उस घर में कोई नहीं रहता। तब से साँप उसी घर में रहता है। रास्ते पर चलने वाले लोगों को भी उस साँप ने काटा है। बहुत से लोग उसे देख चुके हैं। कुछ तो उसे देख कर मारे डर के मर गये। सुनते हैं, वह साँप बीस फुट लंबा, खूब मोटा और काले रंग का है। तीन फन हैं उसके! इन बातों में कोई सचाई हो, या न हो, किन्तु इस में सन्देह नहीं कि उस बँगले में एक जहरीला साँप रहता अवश्य है। बंगले के चारों ओर घना जंगल है। वास्तव में वह किस जाति का साँप है? उसकी विशेषताएँ क्या हैं? इसे कोई नहीं जानता। अनावश्यक किसी संकट में पड़ना उचित नहीं है। इसीलिए कहता हूँ, अभी युवक हो, न जाने संसार में क्या क्या करोगे। नया घर बसाने जा रहे हो। जान-बूझ कर साँप के बिल में उँगली क्यों दे रहे हो? आगे तुम्हारी इच्छा, जैसा चाहे करो।'

मुझे उस वृद्ध की बातों पर विश्वास नहीं आया। मैं अन्य लोगों से

भी पूछता रहा। जिससे पूछा उसींने बताया कि लोगों ने वहाँ साँप देखा है। मुझे इन बातों में कोई सार दिखाई नहीं दिया। मैंने किसी को सूचना नहीं दी, प्रतिदिन सन्ध्या को उस बँगले की ओर सैर के लिए चला जाता था। किसी दिन भीं तो कुछ दिखाई नहीं दिया। मैंने निश्चय कर लिया कि कुछ भीं हो, मैं उस बँगले के बारे में जानकारी प्राप्त करके रहूँगा। मैंने अपने कुछ मित्रों के साथ वहाँ रात भर रहने का प्रयत्न किया, किन्तु सभी मित्र मेरी बात सुनकर चकित रह गये। कहने लगे - 'पागल तो नहीं हो गये हो?' मैंनें उनसे कहा - 'नहीं, हाँ! उस साँप को देखने कीं उत्कट इच्छा है। आप लोग कुछ भी कहें, मैं इस दिशा में प्रयत्न करता रहूँगा।' मेरे मित्रों नें कहा - 'जब आप निश्चय हीं कर चुके है तो हमारे मना करने पर थोड़े ही मानेंगे! आप स्वयं बुद्धिमान मनुष्य है। आपकी इच्छा।'

मैंने उस बँगले में रात बिताने का निश्चय किया।

लोगों के सामने तो मैंने बढ़ - बढ़ कर डींग हाँकीं थी। किन्तु घर पहुँचते हीं घबरा - सा गया। सोचा, इस विषय में पड़ने की मुझे ही क्या पड़ीं है? मारो गोली। किन्तु तुरन्त ध्यान आया, जब इतना आगे बढ़ गया हूँ तो पीछे हटना ठीक न होगा। अन्त में मैंने बंगले में रात बिताने का निश्चय किया। घर पत्र लिख दिया। पत्र क्या था, अच्छा खासा वसीयतनामा था। सामान ठींक किया। पिस्तौल और टार्च लाइट सँभाल लीं। मेरे निर्णय का पता समूचे गाँव को चला गया। सब लोग मुझे बिदा करने आये, जैसे पुराने युग में विधवा को सती होने के लिए बिदा करते थे।

एक सफरीं खाट, जलता हुआ गैस का हंडा तथा बुहारी लेकर मैं उस सुनसान बंगले में प्रविष्ट हुआ। ज्यों ही उस बँगले के चमगादड़ों ने मुझे देखा सब के सब मेरे साहस पर आश्चर्य चकित रह गये। एक - एक करके बाहर निकलने लगे। मैंने दालान में चारपाई बिछाई और बत्तीं कुछ धीमी करके सो गया।'

क्लब में बैठे हुए लोग कहानी का यह अंश सुन कर चकित रह गये। साँस साध कर बैठ गये। किसी के मुँह से कुछ भीं नहीं निकला। सब एक बात हीं सोच् रहे थे, महाशय किस तरह उस बँगले से बच कर आये। सब सीमिट कर बैठे थे। बाहर मूसलाधार वर्षा रुक चुकीं थी। हवा भी धीमी पड़ गई। बादल छँट गये। सडक पर लोगों के आनें-जाने की आहट सुनाई देने लगी थी।

डाक्टर ने कहानी आगे बढ़ाई - 'मुझे देर तक नींद नहीं आई। स्मशान जैसा सन्नाटा, गहरे अँधेरे में एकाकी सोने से हृदय काँप जाता है। आखिर मैं इतनी हठ पर क्यों आ गाया था। इसी बात पर विचार कर रहा था।

ऐसे स्थान पर साँप का आना ही आवश्यक नहीं। डर से भी प्राण निकल सकते हैं। सन्ध्या को इस ओर कोई आता-जाता भी नहीं था। मैं इतनी देर तक इस घर में लेटा रहा, यही क्या कम बहादुरी थी। इसी में मेरी सफलता है। इससे पहले कि कोई विपत्ति आये, मुझे यहाँ से चल देना चाहिए। दूसरे ही क्षण विचार आया, मैं एक बहादुर आदमी हूँ। चाहे कुछ भी हो, प्रात:काल होने तक यही रहूँगा। जब मैं इस निश्चय पर पहुँच गया तो फिर सोचने लगा, यदि कुछ ऐसा-वैसा हो जाए तो घर में माता-पिता बहुत दु:खी होंगे। मेरी नई नवेली दुलहन प्रतीक्षा कर रही होगी कि कब मैं घर लौटूँ। कहीं बेचारी के भाग्य में विधवा होने का तो योग नहीं है? इसी तरह के भयानक-भयानक विचार मेरे मस्तिष्क में आने लगे। मेरी इतनी पढ़ाई पर किया गया अत्यधिक व्यय, सब कुछ व्यर्थ हो जाएगा। इसी उधेड़-बुन में न जाने कब आँख लग गई। अकस्मात किसी ने मुझ पर प्रहार किया। चोट पड़ते ही नींद टूट गई। मेरे हृदय की धड़कन रुक गई। मैं पसीना पसीना हो गया। मुझे आभास हुआ, जैसे मेरा अन्तिम समय निकट आ गया हैं। आँख खोलकर इधर-उधर देखा, अंधेरा ही अंधेरा। कोई आवाज़ भी सुनाई नहीं दी। यह भी अनुभव हुआ कि कमरे में मेरें अतिरिक्त कोई अन्य

प्राणी भी है, मैं अकेला नहीं हूँ। वह प्राणी किस कोने में है, क्या कर रहा है, मुझे मालूम नहीं था। शरीर पर मेरा अधिकार नहीं रहा। सिर से पाँव तक मैं थर-थर काँप रहा था। लेटे रहने में कोई लाभ नहीं था। इसलिए मैं बैठ गया। मैंने अनुभव किया जैसे कोई जानवर मुझे चारों ओर से लपटे हुए है। मेरे पाँव काँप-काँप कर आपस में टकराने लगे। आते जैसा निकल रही थी। भगवान से प्रार्थना की। अपनी हठ का दंड मिल गया। इसी समय दाँए पाँव के अंगूठे से कोई ठंडी-ठंडी चीज़ छू गई। मेरी चीख निकल गई। यह चीख आसपास के जंगल में गूँज उठी।'

क्लब में बैठ कर कहानी सुननेवालों के रोंगटे खड़े हो गये। हम लोगों को पता चला कि हमारी भी चीख निकली है। कुर्सियों पर सिकुड़ कर बहुत धीमे से हम लोगों ने पूछा-'वह साँप ही था?'

'मुझे अपनी टार्च और पिस्तौल की याद आई। जब कुछ सँभल गया तो मैंने सोचा टार्च से जानवर का मुँह देख कर गोली मार दूँगा। मैंने चुपके से टार्च निकाल कर प्रकाश डाला।'

हम लोगों ने फिर उद्विग्नता से पूछा-'साँप था?' हम सब को एक मिनट एक युग मालूम हुआ। डाक्टर साहब ने धीरे से कहा-'वह तो मेरे पाँव का अंगूठा था।'

हम लोग दो मिनट तक साँस रोक कर बैठे रहे। डाक्टर साहब इतनी देर तक हम लोगों को आतंकित किये रहे। अब हम सोच रहे थे कि कहानी के इस परिणाम पर हँसे या रोएँ?

डाक्टर साहब धीरें से उठे और सिगरेट सिलगा कर बोले-'खाने का समय बीत चुका है। बाहर वर्षा भी रुक चुकी है।'

शर्माजी ने इस कहानी को अपने लिए अपमानजनक समझा। मुँह बना कर वहीं बैठे रहे।

'अरे शर्मा, उठ, जरा देख तो आ। कहीं मेरा मारा हुआ साँप से हवा में जीवित हो गया हो?' डाक्टर ने कहा।

शर्माजी मारें लज्जा के और गंभीर हो गये।

श्री राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री

आम्रवृक्ष

श्री नीलमणि ने पाँच सौ वर्ग गज जमीन खरीद कर उस में रहने के लिए घर बनवाया है। जमीन में पहले से एक कुआ, छोटा - सा पोखर, फुलवारीं और आम का बहुत अच्छा पेड़ था। गृह - प्रवेश हो चुका था। मैंने भी उनके यहाँ किराये पर घर लेने का निश्चय किया।

आम के पेड़ के लिए मेरे मन में अत्यधिक प्रेम है। आम का पेड़ किसीं किस्म का हो, मैं बैठे बैठे उसे घंटों देख सकता हूँ। मेरे मन की अनेक कल्पनाएँ आम्रवृक्षों पर आधारित हैं।

दस वर्ष पहले की बात है, उस समय मेरी आयु १५ वर्ष की थी। एक दिन अपने गाँव में दोपहर के समय मैं गाँव के बाहर खेत में दौड़ रहा था। उस समय धूप ऐसी चिलचिला रही थी, जैसे पारा बिछा हो, छोटे - छोटे बादल हवा में तैर रहे थे। मैंने कुए के निकट एक आम्रवृक्ष देखा। बौर आया हुआ था। उस आम्रवृक्ष की सुन्दरता का वर्णन मुझ से नहीं हो सकता। ससुराल जानेवाली मुग्ध नायिका की भाँति कोमल, करुण। दोपहरकी चिलकती धूप औंर तेज आँधी में आम का वह पेड़ अबला और असहाय स्त्री जैसा दिखाई दिया।

इतनी चिलकती धूप में, भर दोपहरी में, एक युवती कुए से पानी भर कर, कलश सिर पर उठाये धीरे - धीरे जा रही है। शरीर पर कोई विशेष गहना नहीं है, किन्तु अंग - अंग से सुन्दरता उमड़ी पड़ रही है, जैसे वह उसके कोमल शरीर में समा नहीं रही है। कलश से रह रह कर पानी छलक जाता है, पानी की बूँद जूड़े से धीरे-धीरे टपक कर कपोलों पर आ जाती है। आम्रवृक्ष और ग्रामीण युवती जैसे ही याद आते हैं;

मेरी आँखों के आगे श्रम तथा सौन्दर्य, कष्ट और कमनीयता, बोझ और व्यथा जीवन के विभिन्न रूप अंकित हो जाते हैं।

धूप में मेघ-खंड के समान वह युवती देखने में बहुत शीतल प्रतीत हुई थी। वह युवती और वह आम्रवृक्ष दोनों मेरे मन में बस गये। इसका कारण मैं स्वयं नहीं बता सकता। जब कभी मैं दोपहर के समय मेघखंड देखता हूँ तो मंजरित आम्रवृक्ष और वह युवती दोनों स्मरण हो जाते हैं। दोनों के स्मरण से मुझे सुख और दुःख दोनों होते हैं।

नीलमणि ने अपने मकान के अगले कमरे का किराया २० रुपया बताया था। किराया कुछ अधिक ही लगा था, फिर भी मैंने कमरा ले लिया, इसका कारण यह था कि मकान के सामने लहलहाता आम्रवृक्ष था। मुझे दो-तीन कमरे और मिल रहे थे। इन कमरों का किराया भी कम था। किन्तु मैंने वहाँ जाना पसन्द नहीं किया। उन कमरों में जगह कम थी, साथ ही जहाँ तक दृष्टि जातीं थी आसपास पेड़-पौधे का निशान तक नहीं था। इसीलिए मैंने नीलमणि की सभी बातें स्वीकार कर लीं और रहने के लिए उस कमरे में आ गया।

नीलमणि ने मेरें सामने शर्तों की एक लंबी सूची रखी थी। शर्तें थीं - पहली तारीख की सन्ध्या तक पूरा किराया चुकाना होगा, बिजली की बत्ती का किराया दो रुपये महीना; ये दो रुपये भी किराये के साथ देने होंगे। रात में ग्यारह बजे के बाद गोला नहीं जलेगा। कमरें में कोई दूसरा नहीं रह सकेगा। माता, बहन, बेटी और बूढ़ी नौकरानी के अतिरिक्त कोई अन्य स्त्री कमरें में प्रवेश नहीं कर सकेगी। कमरे में किसी तरह का शोरगुल नहीं होगा। नीलमणि जब इस तरह शर्त पर शर्त गिनाने लगा तो मैंने बीच में ही टोक कर कहा - 'मैं सब कुछ समझ गया। बाकी शर्तें रहने दीजिये।'

मेरी बात सुनकर भौंहें तन गईं। मैंने सोचा वह क्रुद्ध हो गया है। मैंने उसे शान्त करने के लिए दस-दस के दो नोट हाथ में थमा दिये। बोला - 'लीजिये, अग्रिम है।' नीलमणि ने चटपट दोनों नोट

बनियान कीं जेब में रख लिये। उनका बर्ताव तुरन्त बदल गया।

'रसीद नहीं चाहिए।' मैंने कहा।

'कोई बात नहीं। दे दूँगा।'

'कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन देखिये तो, अभी - अभी मैंने बरामदे में जिसे देखा है, वह कोई स्त्री थी क्या?' मैंने प्रश्न पूछा।

'कौन? ओह हो! अरे स्त्री ही तो थी!'

'यदि वह स्त्री है तो उसे मेरे कमरे में मत आने दीजिये। मैं औरतों से बहुत घृणा करता हूँ।' मैं बातचीत समाप्त कर के अपना सामान लाने दौड़ा।'

राजस्व विभाग में काम करते हुए नीलमणि ने विश्व के दो महायुद्ध देखे हैं। देश को पराधीन करनेवाले गोरों के बूँट देखे हैं, पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह करनेवाली जनता को देखा है। गान्धीजी को भी देखा है। शनिवार को ही नहीं इतवार को भीं कार्यालय में जाकर बेगार भरी है। नौकरी के अन्तिम दिनों में तहसीलदार बने और फिर सेवा - निवृत्त हो गये। निजी घर बनाया। घर का एक हिस्सा मुझे किराये पर उठाया है, दो हिस्से और भी किराये पर दिये जा चुके हैं। कोई भिखारीं दिखाई दिया कि उसे दूर से भगा देते हैं। बच्चों को कोसों दूर रखते हैं। खरीदने में काफी मोल - भाव करते हैं। प्रतिदिन दूसरों से माँग कर समाचार पत्र पढ़ते हैं।

नीलमणि, मकान मालिक का नाम मुझे बहुत भाया। वैसे मैं मकान - मालिक ही नहीं, उसके परिवार के किसी भी सदस्य को पसंद नहीं करता। नीलमणि इमली के जले हुए लक्कड के समान और उसकी पत्नी बदाम के पके पेड़ - सी लगती है। आपने नारियल के ऐसे पेड़ अवश्य देखे होंगे, जो देखने में बहुत ऊँचे और घने होते हैं, किन्तु जिनमें फल नहीं लगता। नीलमणि का एक लड़का नारियल का ऐसा ही पेड़ दृष्टिगोचर होता है। उन दिनों वह कानून कीं परीक्षा की तैयारीं कर रहा था और साथ ही किसी तेल - कम्पनी में नौकरी के लिए प्रयत्न शील भी था। नीलमणि

की लड़की दिखाई देती थी। उसका पति इतना भयभीत हुआ उसे देख कर कि फिर कभी बुलाने का नाम नहीं लिया। उस लड़की को भी एक लड़की है। लड़की क्या है, बिल्ली है बिल्ली।

इसीलिए तो मैं नीलमणि के परिवार के किसी व्यक्ति को पसंद नहीं करता। लेकिन मैं अपने कमरे की खिड़की के पास कुर्सी बिछा कर आम के पेड़ को देखते रहना चाहता हूँ। वह पेड़ मेरे कमरे से बीस फुट दूर है। बाँई ओर दो पौधे और हैं। इनके अतिरिक्त आँगन में कोई पेड़-पौधा नहीं है। उस आम्रवृक्ष के पार से सूर्य-चन्द्र का उदय होता है, रात के समय उसकी शाखाओं के अग्रभाग पर तारें नृत्य करते हैं। दिन के समय उस वृक्ष के समीप धूप-छाया आँख मिचौनी खेलती हैं। उसी पेड़ की छाया में एक बूढ़ी मक्का के भुट्टे बेचती है। मैं उस पेड़ की ओर देखता रहता हूँ। मेरे देखते-देखते उसकी शाखाओं पर तोतों की जोड़ियाँ आ बैठती हैं। उसकी टहनियों को छू-छू कर आने वाले पवन के झोखे मुझे असंख्य अनुभूतियों में सराबोर कर देते हैं।

वह आम्रवृक्ष मुझे जीवन देता है, किन्तु....

एक रात आकाश में कहीं बादल नहीं थे। सर्वत्र तारे टिमटिमा रहे थे। दीपक के प्रकाश में जैसे बच्चों की आँखें दमकती हैं, उसी तरह वे तारे आकाश में टिमटिमा रहे थे। हवा नहीं चल रही थी। हवा के न चलने पर भी गरमी नहीं थी। मैं नित्य की भाँति कुर्सी पर बैठा खिड़की से बाहर देख रहा था। मेरे सामने घूँघट में मुँह छिपाने वाली तरुणी के समान आम्रवृक्ष खड़ा था। आठ बज चुके थे। कहीं से मधुर गीत की ध्वनि सुनाई दी। कितना मधुर स्वर था! गीत का अधिक आनन्द उठाने के लिए मैंने सिगरेट जलाई। सिगरेट की घूँट खींचते हुए मैंने आँखें बन्द कर लीं।

जब मैंने आँखें खोलीं तो मेरें सामने एक साँवले रंग की तरुणी खड़ी थी। उसके मुख पर किसी प्रकार का आवरण नहीं था। दीपक के प्रकाश आकृति स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

देखा जाय तो कोई विशेष बात नहीं थी। पड़ोसियों ने आम के पेड़ की डाल में बिजली का गोला लगा रखा था। इस समय वह गोला जगमगा रहा था। पेड़ के नीचे मेज के आसपास चार कुर्सियाँ बिछा कर बड़ी आयु के चार व्यक्ति तास खेल रहे थे। एक ने कहा - 'यह जगह बहुत अच्छी है।' दूसरे ने कहा - 'आज तक हमें इस जगह का पता ही नहीं था।' तीसरा बोला - 'नीलमणि तो आम तोड़ना जानता है, उसे क्या पता कि इस पेड़ का उपयोग कैसे किया जाना चाहिए।' चौथे ने कहा - 'जोर से मत बोलो भाई! नीलमणि ने हमारी बात सुन ली तो हम सब को कच्चा चबा जाएगा।'

चारों में से एक व्यक्ति ने कहा - 'इस पेड़ के सारे पत्ते नीलमणि के हैं और फल हमारे।' सब के सब हँस पड़े।

मैंने मन ही मन सोचा - यदि इन की बातें नीलमणि सुन ले तो आफ़त खड़ी हो जाए। इसी समय बरामदे में किसी के चलने की आहट सुनाई दी। मैंने चुपके से हट कर देखा, बरामदे में बिना प्रकाश किये नीलमणि उन लोगों की ओर ऐसे ताक रहा है, जैसे शिकार की ताक में झाड़ियों में छिपा हिंस पशु देखता है। मुझे नीलमणि की ओर देखने का साहस नहीं हुआ।

रात के समय चार दिन तक लगातर आम्रवृक्ष के नीचे लोग ताश खेलते रहे। पाँचवें दिन संध्या को नीलमणि मेरे कमरे में आकर बोला - 'तुम देख रहे हो न?'

उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत देकर मैंने पूछा - 'बात क्या है?'

नीलमणि बैठा नहीं। मैली सी बनियान और लाल रंगकी धोती, ऐसा लग रहा था जैसे आग में अधजला इमली का लक्कड़। उसने कहा - 'इन लोगों की ज्यादती देख रहे हैं न?'

'हाँ देख रहा हूँ। ताश खेलना कोई अच्छी आदत नहीं है।' मैंने कहा।

'अच्छी आदत हो या बुरी, खेलना हो तो अपने घर में खेलें। यदि

घर में न खेल सकें तो मशान में जाकर खेलें, खेल-खेल कर बरबाद हो जाएँ, मुझे क्या? लेकिन मेरे पेड़ के नीचे क्यों खेलते हैं?'

'जगह तो उन लोगों की है।'

'जगह उनकी हो, किन्तु पेड़ तो मेरा है। उसकी छाया में क्यों

'तब आप उन लोगों से क्यों नहीं कहते?'

'क्यों नहीं कहूँगा? मैंने उनसे कह भी दिया है।'

'आप कह चुके हैं? क्या जवाब दिया उन लोगों ने?'

'बोले, कहनेवाले तुम कौन होते हो?'

'मैं कौन हूँ? इस बात का पता लग जाएगा। जरूर पता चलेगा।' नीलमणि इतना कह कर तेजी से बाहर निकल गया।

आम का पेड़ नीलमणि का है, उसके अहाते में लगा हुआ है, लेकिन पेड़ की हरी-भरी शाखाएँ कुछ तो सड़क पर गई हुई हैं। और कुछ पडोसी की जमीन पर छाया करती हैं। इस स्थिति में नीलमणि क्या कर सकता है?

इस घटना के दो दिन बाद मैं एक बजे के लगभग अपने कमरे को लौट रहा था। निकट पहुँचने पर कुछ शोर सुनाई दिया। कोई बुढ़िया गाली बक रही थी। ऐसी गालियाँ कि सुननेवाले के कान में छेद हो जायें। निकट जाकर देखा, बुढ़िया कोई और नहीं, मक्का के भुट्टे बेचनेवाली है। मुझे समझने में देर नहीं लगी कि लड़ाई अभी-अभी बंद हुई है और मैदान बुढ़िया के हाथ रहा है। दुश्मन मैदान छोड़ कर भाग गया है।

मैंने पूछा - 'बूढ़ी माँ, यह शोर कैसा है?'

'देखो बाबू, वह मुँडे सिर का है न, उसी के साथ लड़ाई हुई है।' नीलमणि का सिर सदैव घोटम घोट रहता है।

'क्या हुआ?' मैंने पूछा -

'कहता है पेड़ उसका है, अतः शाखाएँ भी उसकी हैं। इस पेड़ छाया में कोई नहीं बैठ सकता। कहता है यहाँ बैठना उसे पसंद नहीं

आता। हम लोगों को उसका जीना भी पसंद नहीं है। हमें उसका रहना भी पसंद नहीं है, तो क्या वह यहाँ से चला जाएगा? यह जमीन उसकी है। लेकिम मैं पूछना चाहती हूँ कि क्या यह सड़क भी उसकी है? यह सड़क क्या उसने खरीद ली है? क्या उसने सड़क बनाने के लिए मजदूरों को मजदूरी दी है? क्या इस सड़क पर चलने का अधिकार किसी अन्य व्यक्ति को नहीं है? वह यह तो कहे कि सड़क उसकी है, फिर मैं भी देखूँ। उसका मुँडा सिर और मुँडवा दूँ, उसकी औरत को हाट में और बेटी को पनघट पर न भिजवा दूँ तो...।' उसने सौगन्ध खाई कि यदि वह ऐसा न करेगी तो असल बाप की बेटी नहीं।

मुझे भी नीलमणि की यह बात पसंद नहीं आई कि पेड़ के साथ-साथ पेड़ की छाया पर भी उसी का अधिकार है।

मैं ज्यों ही कमरे के निकट पहुँचा, नीलमाणि का लड़का मेरें सामने आ गया।

मैंने पूछा - 'क्या सोच रहे हो?'

'गालियाँ सुन रहा था।' उसने उत्तर दिया।

'आखिर क्या किया जा सकता है?' मैंने पूछा।

'हाँ, क्या किया जा सकता है। नीची जाति के लोगों से तंग आ गया हूँ।'

दो दिन बाद मामला बहुत गंभीर हो गया। मैं उस दिन रात में सात बजे घर लौटा था। पड़ोसी लोग आम की छाया में ताश खेल रहे थे, किन्तु पहले की तरह पेड़ की डाल पर बिजली का गोला नहीं जल रहा था। मेज पर बिजली का लैंप रखा था और उसके प्रकाश में खेल रहे थे। बरामदे में कुर्सी बिछा कर नीलमणि बैठा था। मुझे देखते ही दाँत दिखा कर बोला - 'देखते हो न, आज पेड़ पर बत्ती नहीं जल रही है!'

'जी हाँ, देखा तो मैंने भी है।' मैंने कहा।

'यदि आज बत्ती जलाते तो मैं सब को मार ही डालता!'

नीलमणि को इस बात का दुःख हो रहा था कि पडौसी ने गोला

पेड़ से हटा लिया है। इसीलिए वह उन लोगों की जान नहीं ले सका। कुछ रुककर नीलमणि ने कहा - 'आज नहीं तो कल, ये लोग अवश्य मेरे हाथ आएँगे। सब कसर निकाल लूँगा।'

'अच्छा, देख लेंगे भाई।' मैंने कहा।

'आज तो मैंने एक की खबर ले ही डाली।' नीलमणि ने कहा।

'किसकी खबर ले डाली?'

'उसी की, वह जो भुट्टे बेचती है न, उसी की।'

'अच्छा?'

हाँ मैंने नगरपालिका के सिपाही को समझाया कि यह सड़क तो तुम लोगों की है। मैंने तीन रुपये उसके हाथ में थमाये। उसने बाल पकड़ कर उस राँड को सड़क पर खूब घसीटा। वह अपना अधिकार जता रही है।'

दूसरे दिन रात में मैं कुछ देर से घर लौटा था। नीलमणि क्रोध के मारे आग उगल रहा था। उसकी पत्नी और बेटी बरामदे में उदास बैठी थीं। मैं बरामदे में पहुँच गया तब भी नीलमणि ने अपनी पत्नी तथा बेटी को भीतर जाने का आदेश नहीं दिया। मैंने समझा आज स्थिति गंभीर हो

उस दिन पड़ोसी के बच्चे दोपहर के समय आम की डाल पर झूला डाले झूल रहे थे। नीलमणि ने बच्चों को फटकारा था, और कहा था कि झूले से नीचे उतर जाएँ तथा रस्सी खोल लें। न तो बच्चे उतरे और न झूले की रस्सी खोली गई। नीलमणि बच्चों को जबर्दस्ती हटाने के लिए पड़ोसी के घर पहुँचा। बच्चों ने कहा कि यदि उनके घर में वह घुस आया तो पैर तोड़ दिये जाएँगे। नीलमणि वहाँ से न हटा, तो बच्चों ने पत्थर फेंकने की धमकी दी।

'मारपीट तो नहीं हुई?' मैंने पूछा।

'मैंने बीच - बचाव किया, अन्यथा सिर फूट जाते।' नीलमणि की [illegible]नी ने कहा।

नीलमणि बोला-' इस बीच मक्का के भुट्टे बेचनेवाली बुढ़िया भी घटना-स्थल पर पहुँच गई। गालियाँ देनी शुरू कीं तो नीलमणि ने पुलिस को सूचित किया। पुलिसवालों ने कहा - ' जाने भी दो। बेचारी गरीब बुढ़िया

नीलमणि को बाद में बताया गया कि पुलिस और बुढ़िया में पहले ही समझौता हो चुका था। बुढ़िया ने पुलिस के सिपाही को प्रतिदिन दो भुट्टे देने का वचन दिया था। सिपाही ने कहा था कि वह किसी की परवाह न करे।

'यदि पुलिस के सिपाही और बुढ़िया में यह समझौता न हुआ होता तो क्या वह यहाँ आने का साहस करती? उस में इतनी हिम्मत कहाँ से आई। मैंने पुलिस की शिकायत की है। शिकायत के पत्र पर मैंने हस्ताक्षर नहीं किये। अधिकारी लोग समझेंगे किसी अन्य व्यक्ति ने शिकायत की है। खैर, जाने दो उस चुड़ेल को, बच्चों का झूला तो मेरी आँखों के सामने फाँसी की रस्सी बन गया है। पुलिस में रपट लिखाना ठीक रहेगा? तुम पुलिस के किसी अफसर को जानते हो?' नीलमणि ने पूछा।

धनी लोग पुलिस के अधिकारियों से परिचय रख कर लाभ उठा सकते हैं, किन्तु हम जैसे लोगों को तो हानि ही होती है। मैंने नीलमणि को बता दिया कि मैं किसी अधिकारी को नहीं जानता।

'भाई, तुम पुलिस के कार्यालय में तो काम करते हो, फिर भी किसी को नहीं जानते?' नीलमणि मुझ पर क्रोधित हो गया।

'मैं तो मजिस्ट्रेट की अदालत में क्लर्क हूँ।'

'तब तो और भी अच्छा है।'

'नया नया आया हूँ। किसी को जानता नहीं हूँ।'

'अच्छा रहने दो। यह तो बताओ किसी वकील से जान-पहचान

एक - दो वकीलों से परिचय है

वे वकील होशियार हैं न?'

'होशियार होने से मतलब?'

'सलाह के लिए भी फीस लेते हैं?'

'मुझे क्या मालूम?'

उन्होंने मुझसे कहा कि आते-जाते किसी वकील से सलाह करना। मैंने यह काम अपने जिम्मे ले लिया।

वकीलों ने बताया नीलमणि के आम का पेड़ उस घर में ही सीमित रहना चाहिए। उसकी डालें पड़ोसी के घर में नहीं जा सकतीं। यदि पड़ोसी लोग डाल काट कर नीलमणि के घर में फेंक दें, तब भी कोई अपराध नहीं माना जाएगा।

वकीलों की इस सलाह से मैं और नीलमणि दोनों भयभीत हो गये। कुछ समय तक विचार करने के पश्चात नीलमणि ने कहा -

'वे लोग मेरे पेड़ की डाल नहीं काटेंगे।'

'क्यों नहीं काटेंगे?' मैंने पूछा।

'डाल काट देंगे तो फल कहाँ लगेंगे?'

'फल न लगने से उन्हें क्या हानि होगी?'

'तुम्हें इस संसार का कोई अनुभव नहीं है। वे लोग कैरियाँ भी तो तोड़ना चाहते हैं।' नीलमणि ने कहा।

'नौकरानी कह रही थी, वे लोग कल कुछ गड़बड़ करेंगे।' नीलमणि की बेटी ने कहा।

मुझे उसी समय आभास हुआ था कि यह बूँदा बाँदी किसी भी समय तूफान का रूप धारण कर सकती है। मेरी आशंका सच निकली।

दूसरें दिन कार्यालय से घर लौटा तो नीलमणि नहीं मिला। घर में सन्नाटा था। जैसे ही मैंने कमरे का दरवाजा खोला, आहट पाकर नीलमणि की पत्नी मेरे पास आई।

'नीलमणि कहाँ है?' मैंने पूछा।

'मेरें मुँह से बात नहीं निकल रही है।' नीलमणि की पत्नी ने कहा।

'क्यों क्या हो गया?'

'खून नहीं हुआ, और क्या शेष रह गया?' नीलमणि की पत्नी बोली।

'दोपहर में ठीक एक बजा था। घड़ी में चाबी दे रहे थे। अचानक जोर का हो-हल्ला मचा। देखते हैं तो लड़कों का दल वानर-दल की भाँति पड़ोसी के यहाँ जमा हो गया। सब के सब हमारे आम के पेड़ पर चढ़ गये - डालियाँ पकड़ - पकड़ कर झूलने लगे। फिर लगे डालियाँ तोड़ने। टहनियाँ और पत्ते हवा में उड़ने लगे। उन्होंने लड़कों से उतरने के लिए कहा तो लड़के गालियाँ देने लगे। नीची जाति के लोग भी ऐसी गालियाँ नहीं दे सकते। हमारी बिल्ली उस ओर निकल गई तो मुओं ने उसे पूँछ पकड़ कर फेंक दिया। बेचारी की एक टाँग टूट गई। उसकी पीड़ा हमसे देखी नहीं जाती। बिल्ली को भी थाने में ले गये हैं।'

मैंने पूछा - 'थाने में क्यों गये हैं?'

'क्या बताऊँ बेटा? उन लोगों ने हमारे पेड़ का सत्यानाश कर दिया, हमें गालियाँ दीं और हमारे विरुद्ध ही थाने में रपट लिखा दी कि मेरी बेटी नें उनके बच्चों को पींटा है। तहसीलदार की बेटी किसी को पीट सकती है? थाने में रपट लिखाने गये हैं।'

मैंने सोचा आखिर यह मामला हमारीं अदालत में आएगा। अभी से क्यों चिन्ता करूँ? मैं सो गया। आधी रात के समय किसी ने दरवाजा खटखटाया। मेरे नाम का तार था। किसी आवश्यक कार्य से घर वालों ने बुलाया था।

दिन निकलने से पहले मैं अपने गाँव चला गया। वहाँ भीं काम नहीं बना। मैं चौथे दिन वापिस आ गया।

अपनी व्यस्तता के कारण मैं आम के पेड़ का झगड़ा भूल चुका था। रिक्शे से उतरा तो ऐसा लगा जैसे मैं किसी दूसरे घर पहुँच गया हूँ। क्या यह नीलमणि का घर है? मैं चकित हो कर इधर - उधर देखने लगा।

कुछ क्षण बीतने पर मैंने नीलमणि को बुला कर पूछा - 'यह क्या हो गया?'

नीलमणि ने उछल - उछल कर क्रोध भरे स्वर में जो कुछ कहा, उसका सारांश इस प्रकार है -

'मेरें मन में जो आता है, वही मैं करता हूँ। मुझसे पूछनेवाले तुम कौन होते हो? कोई कौन होता है? मुझसे क्यों पूछते हो? यदि तुम में हिम्मत हो तो उन लोगों से जाकर पूछो। मैंने उन पर मुकदमा दायर किया है। मुझे सुखी देख कर वे लोग जलते हैं। मेरी छाया में रह कर मुझे ही बरबाद करना चाहते हैं। मेरें पेड़ की छाया पर ही जब मेरा अधिकार नहीं रहा तो फल खानें का अधिकार क्या मिलेगा? वे लोग फल मेरें हाथ लगने देंगे? रास्ता चलंने वाली औरतें चुप रहेंगी? मेरी डालें मेरी नहीं रहीं, पत्ते भी मेरे नहीं रहे। जब मैं अपने पेड़ का लाभ नहीं उठा सकता तो औरों को क्यों लाभ उठाने दूँगा? मान लो तुम्हारा पेड़ है तो क्या तुम मुझे एक चौथाई फल भी दोगे? कोई दूसरा आदमी अपने पेड़ का फल मुझे लेने देगा? नहीं। इसीलिए मैंने अपनी इच्छा पूरी की है, आगे भी मैं अपने मन की करूँगा। मुझसे कोई क्यों पूछता है?'

मैंने नीलमणि से बात करना निरर्थक समझा। मैं चुप रहा। मुझे पूरा घर नीलमणि के सिर की भाँति घोटमघोट दिखाई दिया। आँगन स्मशान बना हुआ था। आम के पेड़ की सब डलियाँ कट चुकी थीं। पेड़ ठूँठ बना खड़ा था। मकान की शोभा न जाने कहाँ विलुप्त हो चुकी थी। पत्ते सूख कर हवा में उड़ रहे थे। धूप के कारण मेरा कमरा गरम हो गया था। पेड़ के नीचे बैठ कर मक्का के भुट्टे बेचनेवाली बुढ़िया न जाने कहाँ चली गई थी।

मैंने दूसरे दिन कमरा खाली कर दिया।

पी. श्रीदेवी

धूप - छाँह

'तुम में सुन्दरता और आत्मीयता दोनों है सुधा ! फिर भी मुझे आनंद क्यों नहीं होगा ? ' सारथी ने कहा । सारथी की भुजाओं पर अपना सिर रख कर सुधा फफक फफक कर रो रही थी । सारथी उसे सान्त्वना दे रहा था ।

दो सप्ताह पहले सुधा को माता निकली थी । आज या कल उसे दवाखाने से छुटकारा मिल जाएगा । माता निकलते ही उसे अस्पताल में भरती कराया गया था । लोगों का कहना है, टीका लगवाने के बाद चेचक नहीं निकलती । सुधा प्रति दो वर्ष में एक बार टीका लगवाती आ रही है । हाँ, इस वर्ष उसने अब तक टीका नहीं लगवाया था । वह सोच रही थी गरमी की छुट्टी समाप्त होने पर जब कालेज जाएगी तो वहाँ लगवा लेगी । भाग्य का खेल, टीका लगवाने से पहले ही चेचक का शिकार बनना पड़ा ।

इस बात के बताने की कोई आवश्यकता नहीं कि जन्मजात सुन्दर नारियों में सुधा सुन्दरतम है । पतली और लम्बी देह, लचकीली पतली कमर, अंग - प्रत्यंग की सुन्दर गठन, सन्तुलित आकृति, बड़ी-बड़ी आँखें । स्वर्ण यष्टि के समान देह - कान्ति, लम्बे - लम्बे चमकते हुए केश, सभी कुछ तो उसके सौन्दर्य का परिचय देते थे । अठारह वर्ष की आयु । बी.ए. के दूसरे वर्ष में पढ़ती है ।

सारथी सुधा की बुआ का लड़का है । वह भी सुन्दर और गठीला युवक है । रंग साँवला, देखनेवाला उसके प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता । सुधा १०-१२ वर्ष की थी कि उसके साथ सारथी के विवाह की बात चलने लगी थी । सारथी की माँ सुन्दरता के कारण ही उसे अपनी बहू बनाना चाहती थी ।

सारथी भी समय - समय पर सुधा के घर जाता था। सुधा के पिता ने गत वर्ष दोनों का विवाह करना चाहा था किन्तु सुधा तैयार नहीं थी। उसने कहा - बी.ए. कर लूँ, तब विवाह कीजिए। सारथी नें भी कहा कि वह पहले बी.ए. (आनर्स) करके कहीं नौकरी खोजेगा और फिर विवाह करेगा।

बी.ए. के प्रथम वर्ष की पढ़ाई समाप्त करके सुधा गरमी की छुट्टियों में घर आई थी। अकस्मात् उसे बुखार आने लगा। जब दस दिन में भी बुखार नहीं उतरा तो उसने सारथी को सूचित करने का आग्रह किया। सुधा के पिता सूर्यनारायण ने तत्काल अपने भावी जामाता को पत्र लिखा - ' सुधा तुमको देखना चाहती है।'

बुखार चढ़ने के पन्द्रहवें दिन सारथी सुधा के घर पहुँचा।

एक समय था जब सुधा सुन्दरता की खान थी, चेचक ने उसे विद्रूप कर दिया। शरीर दुबला हो गया, स्वर्णिम देह कालिमा से आवृत्त हो गई। मुँह और हाथों पर बड़े - बड़े काले दाग पड़ गये। सिर के बाल झड़ गये।

सारथी के आने का समाचार सुन कर सुधा ने साफ़ - सुथरी साड़ी पहनी, नर्स से दो वेणियाँ गुँथवाईं। खाट पर बैठे - बैठे उसने एक बार दर्पण में अपना मुँह देखा। बीमार पड़ने के बाद सुधा ने पहली बार अपना मुँह देखा तो अपने चेहरे को देख तो कर स्तब्ध रह गई। हृदय में शोक का समुद्र उमड़ पड़ा। उसने दर्पण फेंक दिया, फिर फूट - फूट कर रोने लगी! नर्स ने समझाते हुए कहा-' बहन, तुम पढ़ी-लिखी लड़की हो। ज्यादा रोने से बुखार आ जाएगा। दाग धीरे - धीरे मिट जाएँगे। अच्छे होने के बाद तुमने स्नान भी नहीं किया है।'

सुधा अच्छी तरह जानती थी कि एक बार जो रूप चला जाता है, वह फिर लौट कर नहीं आता। वह उसी तरह रोती रही और अन्त में रोती - रोती सो गई। सारथी जब दवाखाने में पहुँचा तो नर्स ने सुधा को

सारथी को देखते ही उसके दु:ख का बाँध टूट गया। वह इस

बात को भूल ही गई कि उन दोनों के अतिरिक्त वहाँ नर्स भी खड़ी हुई है। उसने सारथी से पूछा - 'मुझे देख कर तुम्हें घृणा नहीं होती?' और उत्तर सुने बिना उसने आँचल से अपना मुँह ढँक लिया और फूट-फूट रोने लगी।

सुधा को देख कर सारथी को भी चोट लगी। वह खड़ा-खड़ा साहस बटोरने लगा। सुधा की व्यथा का अनुमान लगाया जा सकता था।

'सारथी, तुम्हें मैं खुश नहीं कर सकती। मुझे स्वयं अपने ऊपर घृणा हो रही है। मुझ से तुम्हें सुख नहीं मिल सकता।' सारथी उसके पास बैठ गया था। सुधा ने उसकी भुजाओं पर सिर रखते हुए यह बात कही।

सारथी ने कहा था - 'तुम्हारे मन में सुन्दरता और आत्मीयता की कमी नहीं है सुधा! मुझे आनन्द क्यों नहीं मिलेगा?' असह्य दुःख से पीड़ित व्यक्ति को सान्त्वना दी जाये तो उसका दुःख बाँध तोड़ कर बहने-वाली नदी के समान उमड़ पड़ता है। सुधा ने अपनी समग्र व्यथा आँसुओं में परिवर्तित कर दी। आँसुओं से सारथी की भुजा भीग गई।

सारथी ने सुधा की पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे निकट खींच लिया। बोला - 'उठो सुधा, मेरे रहते तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए। रोओगी तो फिर बीमार पड़ जाओगी। बहुत कमजोर हो गई हो, रोओगी तो और कमजोर हो जाओगी।'

सारथी की इतनी सान्त्वना पाकर सुधा का अपने ऊपर से वश जाता रहा। उसने सारथी के हाथों में अपने आप को बन्दी बना डाला। अपने प्रेम की आँखों में झाँकते हुए उसने कहा - 'सारथी, मैं तुम से अलग नहीं हो सकती। मेरे हृदय में तुम, केवल तुम हो। कुरूपता के कारण मुझे त्याग मत देना।'

नर्स इसी समय थर्मामीटर लेकर आई। उसने दरवाजा खटखटाया तो वह खाट पर बैठ गई। उसका प्रेमोन्माद कम हो चुका था। उसने अपनी साड़ी सँभाली। नर्स ने अन्दर आकर सारथी को सावधान किया

बहुत संक्रामक बीमारी है। आप को रोगी की चारपाई पर बैठना नहीं चाहिए था।'

नर्स की बात से सुधा के मन में एक नया भय समा गया। वह सोचने लगी - मुझ से कितनी बड़ी गलती हो गई। स्वास्थ्य - स्नान से पहले उसे सारथी को नहीं छूना चाहिए था। सारथी को छुआ ही नहीं वह उसकी गोद में लेट गई थी। सारथी ने उसे अपनी भुजाओं में भर कर चूमा भी था। कहीं सारथी को माता निकल आये तो....।

'मुझ से बड़ी भूल हो गई सारथी। मैं अपनी बीमारी की बात भूल कर....।'

कोई बात नहीं सुधा। लोग यों ही कहते हैं, किन्तु यह बताओ तुम्हारे छूने से किस-किस को माता निकली है?'

'सारथी मुझे बहुत चिन्ता हो रही है। हम दोनों इतने निकट बैठे हैं। कहीं तुम को कुछ हो गया तो···।' पागलों की तरह आँखें फैलाकर सुधा ने कहा।

'पगली कहीं की। अच्छा ही होगा, तुम्हें माता निकली, मुझे भी यह बीमारी लग जाये तो हम दोनों बराबर हो जाएँगे। तुम डरो मत। मुझे यह बीमारी नहीं लगेगी। तुम्हें इस तरह घबराना नहीं चाहिए।' सारथी ने सुधा को समझाया।

सुधा ने मन ही मन न जाने कितने देवताओं से प्रार्थना की कि उसके सारथी को यह बीमारी न हो।

× × × ×

सारथी एक बार फिर सुधा को देखने उसके गाँव गया था। गरमी की छुट्टियाँ समाप्त हो गईं और वह पढ़ने के लिए विशाखपत्तन चला आया। सुधा ने सारथी को पत्र लिखा था - 'मैं आगे पढ़ना नहीं चाहती। अपनी सहेलियों के साथ बाहर निकलने में भी मुझे लज्जा आती है।' सारथी ने उत्तर में सहानुभूति के दो शब्द लिखे - 'यदि तुम्हारी इच्छा तो तुम अपनी पढ़ाई बन्द कर दो।'

सुधा के पिताजी सूर्यनारायण से मिलनें विशाखपत्तन गये। वहाँ अपनी बेटी के विवाह का प्रस्ताव रखते हुए नम्रता के साथ कहा - 'पढ़ाई के कारण हम लोग सुधा का विवाह टालते आये थे। यदि तुम्हारी स्वीकृति मिल जाये तो उसका विवाह जल्दी से जल्दी कर दिया जाये। सुधा ने तुम्हें बचपन से ही वर रखा है। बेचारी के माँ नहीं है। तुम उसके हृदय से अच्छी तरह परिचित हो। बेचारी का भाग्य ही खोटा निकला। बच गई यही बड़ी बात है। अब तुम्हें अपना विचार नहीं बदलना चाहिए। मेरी बात स्वीकार कर लो।' कहते - कहते सूर्यनारायण ने सारथी के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये। आँखों से आँसू टपकने लगे थे।

'सुधा यदि उद्विग्न हो उठती है तो उसका कारण है, किन्तु आपको बेचैन नहीं होना चाहिए। उसके चमड़े का रंग बदल गया है तो क्या मुझे मेरे मन तथा विचारों का रंग भी बदल देना चाहिए। यह असंभव बात है। आप किसी तरह चिन्ता मत कीजिये। मेरे पिताजी से मिल कर विवाह की तिथि निश्चित कर लीजिये। निश्चित तिथि की सूचना मुझे कुछ समय पहले मिल जानी चाहिए।' सारथी ने सूर्यनारायण को आश्वस्त करके बिदा किया।

सारथी उस वर्ष की पढ़ाई समाप्त करके विवाह करना चाहता था। सुधा और उसके पिता को आशंका था कि संभवतः सारथी का विचार बदल जाये। इन लोगों की चिन्ता दूर करने के लिए सारथी ने जल्दी ही विवाह करने की अनुमति दे दी।

विवाह की तिथि निश्चित करने से पहले सारथी के माता - पिता ने विरोध किया था। उन लोगों का कहना था कि वचन देने से ही हम विवाह करने के लिए बाध्य नहीं हैं। जब रोग के कारण लड़की का मुँह भद्दा हो चुका है तब उसके साथ विवाह क्यों किया जाये?

एकलौता बेटा, अच्छी खासी जमीन - जायदाद। माता - पिता का विचार था कि सारथी का विवाह किसी अच्छे घर में हो सकता है उन्होंने अपने बेटे को कई पत्र लिखे थे कि सुधा से विवाह करने

जन्म भर पछताना पड़ेगा। उसे सोच विचार कर काम करना चाहिए। सुधा से विवाह करने की बात मन से निकाल देनी चाहिए। माँ - बाप के ऐसे विचारों पर सारथी को बहुत क्रोध आया था।

सारथी सुधा को हृदय से प्यार करता था। सारथी तथा सुधा का विचार था कि वे बचपन में ही पति - पत्नी बन चुके हैं। अब यह विरोध क्यों? यदि चेचक निकलने से पहले विवाह हो चुका होता तो क्या माँ - बाप उसे किसी दूसरी लड़की के पाणिग्रहण का परामर्श देते?

सारथी ने पिता को अपने दृढ़ निश्चय से अवगत करा दिया।

यों तो श्रावण मास में सुधा और सारथी का विवाह हुआ था, किन्तु परीक्षा होने तक वह सुधा को अपने साथ नहीं ले गया। बी. ए. (आनर्स) का परिणाम निकलते ही सारथी की नियुक्ति विश्वविद्यालय में डिमांस्ट्रेटर के पद पर हो गई। सुधा उसके साथ विशाखपत्तन चली आई।

× × × ×

चेचक से छुटकारा मिलने के बाद सुधा कुछ मोटी हो गई थी। कुछ समय बीतने पर उसका रंग भी निखर गया। इतना सब होते हुए भी वह मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ नहीं हो सकी थी। सारथी का विचार था, विवाह के पश्चात् सुधा प्रसन्न रहने लगेगी और उसकी आशंका दूर हो जाएगी, किन्तु सुहागरात को सुधा का जैसा व्यवहार रहा, उस से सारथी चकित रह गया।

उस रात सारथी ने प्रेमोन्माद से सुधा को अपने निकट खींचा तो वह फूट - फूट कर रोने लगी। सारथी उसकी ओर चकित नेत्रों से ताकता रह गया। उसने दिलासा देते हुए कहा - 'तुम रोती क्यों हो सुधा? कुछ कारण भी तो बताओ।'

सुधा ने कोई उत्तर नहीं दिया। रोती - रोती सो गई।

कितनी भोली है! संभवत: सभी औरतें ऐसी होती हैं। सारथी ने मन ही मन सोचा। उसने सुधा को उत्साहित करने के अनेक प्रयत्न किये।

एक समय था जब सुधा हिरण की तरह भ्रूभंग करती उछलती -

कूदती घूमती थी, किन्तु आज वह गन्तव्य स्थान को भूले हुए कछुए की भाँति विशण्ण है।

वह भी समय था जब सुधा ताजा खिले हुए चमेली के फूल की सुगन्धि जैसी लगती थी, किन्तु आज अमुकुलित कली के समान अपने आप में सिमटती जा रही है।

सुधा प्रकृति सुन्दरी की भाँति हृदय को गुदागुदा देती थी, जो प्रकृति तन्वंगी पवन कुमारियों के कंठ में वसंत का राग भरती और आँख मिचौनी खेलने वाली मधु राका के रूप में चारों ओर अमृत बरसाती है, किन्तु आज सुधा वर्षा ऋतु के ऐसे स्तब्ध वातावरण सी लगती है, जब पावस के आरंभ में आकाश घटाओं से घिर जाता है। ऐसी घटाएँ जो गरजती - तरजती नहीं हैं।

सारथी कई बार सोचता - सुधा की बुद्धि तो नष्ट नहीं हो गई? वह पागल तो नहीं हो गई है?

एक दिन संध्या के समय कुछ जल्दी घर पहुँच कर सारथी ने सुधा से पूछा - 'चलो सुधा, सिनेमा देखने चलें। अँग्रेजी का अच्छा खेल आया है।'

'ओह! अब मेरे लिए एक सिनेमा देखना ही बचा है। आप देख आइये- मैं नहीं आऊँगी। मैं लज्जा अनुभव करती हूँ।' सुधा ने उत्तर दिया था।

सुधा बाहर निकलने में लज्जा अनुभव करती है। वह सोचती है - उसकी बदसूरती पर दस लोग न जाने क्या सोचें? वह इस बात का विचार नहीं करती कि सारथी ने कितने उत्साह से प्रस्ताव रखा है। वह समझती है कि सारथी केवल उसे प्रसन्न रखने के लिए बाहर चलने की बात कहता है। वह केवल औपचारिक रूप से प्रस्ताव रखता है और अपनी बात को यथार्थ सिद्ध करने के लिए अभिनय करता है। वह सिनेमा जाये तो सारथी को प्रसन्नता नहीं हो सकती। उस दिन सुधा का उत्तर सुन कर सारथी चुपचाप उदास चेहरें से बाहर चला गया था।

एक दिन घर लौट कर सारथी ने देखा - सुधा चमेली के पौधे से फूल चुन-चुन कर माला बना रही है। उसने हलके गुलाबी रंग की रेशमी साडी और काले रंग की रेशमी चोली पहन रखी थी। उसको माला गूँथते देख कर सारथी का मन पुलकित हो गया। उसके हृदय में उल्लास उमड़ने लगा। उसने पीछे से चुपचाप सुधा की आँखों पर हाथ रख दिया। सुधा ने हँसते हुए हाथ हटाया और बोली - 'आज इतनी जल्दी क्यों आ गये?'

'हाँ, देखो, आज इस माला से किसी चित्र को मत सजाना। अपनी वेणी में गूँथना यह माला। तुम्हारे काले बालों में ये फूल बहुत सुन्दर लगेंगे। जरा मुझे देना माला, मैं इसे वेणी में गूँथ दूँ।' सारथी ने वह माला जबर्दस्ती लेनी चाही।

देखते - देखते सुधा की हँसी गायब हो गई। उसने जोर लगा कर सारथी के हाथ से माला छीन ली। बोली - 'हाँ, झड़े हुए बालों और इस सुन्दर मुँह के लिए बस इस माला की कसर है!'

सारथी को क्रोध आया-'मेरे मरने तक तुम इसी तरह रहोगी!' इतना कह कर सारथी ने माला फेंक दी। लंबे डग भरता वह बाहर चला गया।

पति - पत्नी में इस प्रकार की न जाने कितनी घटनाएँ घटित हुई। सारथी को कई बार क्रोध आया, किन्तु कुछ क्षणों के लिए ही। क्रोध आने के तत्काल पश्चात् वह सोचता - 'इतना समय बीत गया फिर भी सुधा क्यों मानसिक यातना भोग रही है! अपनी विद्रूपता पर वह ग्लानि क्यों अनुभव करती है? मैं उसे अपने नेत्रों में, नेत्रों में ही क्यों हृदय में रखने के लिए प्रस्तुत हूँ।'

उसने कई बार सुधा को आश्वस्त किया - 'तुम एक पढ़ी - लिखी स्त्री हो, दुनिया को समझती हो। फिर ऐसी हठ क्यों ठाने हुए हो? तुम सोचती हो तुम्हारी सुन्दरता नष्ट हो चुकी है, किन्तु मुझे तो पहले से भी अधिक सुन्दर दिखाई देती हो। तुम्हारे बाह्य रूप में चाहे जितना परिवर्तन हो गया हो, किन्तु तुम्हारी आत्मा का सौन्दर्य तो अक्षुण्ण है। तुम्हें बद-

.कौन कहता है?'

सारथी ने यह बात हृदय से कही थी। वह सुधा में सौन्दर्य की कमीं नहीं पाता। सारथी के मन में उसके प्रति अगाध स्नेह है।

किन्तु सुधा ऐसी नहीं है। वह सोचती है- सारथी बहुत उदार व्यक्ति है। उसके मन में सहानुभूति की कमी नहीं है। इसीलिए उसने विवाह किया है। उसका दृढ़ विश्वास है कि सारथी उस पर दया करता है। वास्तव में वह प्रसन्न नहीं है। उस जैसी बदसूरत स्त्री से कोई प्रसन्न नहीं रह सकता।

सुधा का स्वभाव विचित्र ढंग से बदलता गया। जब से उसने होश सँभला उसे इस बात का बहुत गर्व था कि वह बहुत सुन्दर है। जो देखता वही कहता - 'सुन्दरता की मूर्ति है यह लड़की। सौन्दर्य में इसकी तुलना कौन कर सकता है?' जब कहीं सुधा का नाम आता लोग उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते थे।

सुधा ने खूब पढ़ा है, किन्तु उसके मन में प्रौढता नहीं आ सकी। इसी स्थिति में उसका रूप जाता रहा। वह सुन्दर से असुन्दर बन गई। इस कुरूपता से उसका मन आहत हो गया। यह घाव भर नहीं सका। अपनी सुन्दरता का अभिमान करनेवाली सुधा आज अपनी कुरूपता से घृणा करने लगी है।

बचपन में सुधा की अनेक मुद्राओं के चित्र लिये गये थे। ससुराल आते समय सुधा उन सब चित्रों को साथ ले आई थी, किन्तु उन्हें पति से छिपा कर रखती थी। इन दिनों वह अपना मुँह दर्पण में नहीं देखती। बिना आईने के वेणी गूँथ लेती है, बिना आईने के ही बिंदी लगती है।

सुधा आजकल घर से बाहर नहीं निकलती। किसी से अधिक बात भी नहीं करती। हँसना जैसे कभी आता ही नहीं था, कभी हँसी आती भी है तो बहुत फीकी। कई बार ऐसा लगता है, जैसे वह किसी गहरे सोच में डूबी हो।

समय पर सारथी को काफ़ी पिलाती है, समय पर भोजन कराती

कई बार लगता है, सुधा में जैसे स्त्रीत्व का लोप होता जा रहा है। कोई इच्छा नहीं, जीवन में प्रसन्नता तथा आनंद नहीं, प्रेम नहीं। जैसे जड़ बन गई हो, कोई यंत्र है जिसे किसी नें मंत्र द्वारा कीलित कर दिया हो। स्तब्ध बनी अपने मकान में घूमती रहती है।

सारथी की स्थिति सुधा से सर्वथा भिन्न है। स्वभावतः वह उत्साही युवक है। अनेक आकाक्षाएँ हैं उसके मन में। वह चाहता है - पत्नी के साथ सिनेमा देखने जाये, समुद्र तट पर सैर करने जाये। पत्नी के साथ घूमने में उसे प्रसन्नता होती है। सुधा इन बातों को पसंद नहीं करती इसीलिए सारथी ने आग्रह करना छोड़ दिया है।

वह सुधा से शिकायत नहीं करता, किन्तु मन ही मन दुःख अनुभव करता है।

सुधा यह जानने का प्रयत्न भी नहीं करती कि उसका पति उदास रहता है तो क्यों रहता है। सारथी अलबत्ता सुधा की वेदना को पहचानता है। इसीलिए वह सदैव उसे सान्त्वना देता रहता है। उसे मनाने का प्रयत्न करता है, किन्तु सुधा है कि वह सारथी को समझ नहीं पाती।

सुधा अपनी पीडा से पीडित है।

सारथी भी अपनी व्यथा से व्यथित है।

दिन, और दिन के बाद मास बीतते गये। सारथी भी मशीन की तरह जीवन बिताने का अभ्यस्त हो गया है।

दोनों में अधिक बातचीत नहीं होती। दोनों में न कभी कहा - सुनी होती है और न कभी प्रेमालाप।

दोनों-जड मूर्ति की भाँति जीवन बिता रहे हैं।

× × × ×

प्रकृति सदैव एक - सी नहीं रहती। जब वायु रुक जाती है और बहुत अधिक ऊमस होती है तो आकाश में बादल गरजने - तरजने लगते कभी बिजली कौंधती है, कभी आँधी चलने लगती है, कभी तूफान है तो कभी वर्षा होने लगती है।

सारथी क्लब का सदस्य बन गया। ताश खेलने लगा। पहले रात में सात बजे तक घर आ जाता था, अब घर आने में दस-ग्यारह बज जाते हैं। किसी दिन कालेज से सीधा क्लब चला जाता है, रात में घर आकर कह देता है - मुझे भूख नहीं है, आज भोजन नहीं करूँगा।

सुधा को पहले पति की ओर से कोई चिन्ता नहीं थी। अब वह देर से घर आने लगा तो दुःखित रहती है। किन्तु उसने एक दिन भी तो नहीं पूछा कि 'देर से घर क्यों आते हो?' पूछने में भय लगता है, संकोच होता है। अपराधी की भाँति लुका-छिपी रहती है।

एक दिन रात में १२ बजे घर लौटा। सुधा ने उस दिन भोजन नहीं किया था, प्रतीक्षा करती-करती सो गई। उसने सारथी से पूछा - 'आज इतनी देर क्यों हो गई?'

'मैं चाहे जब आऊँ, तुम्हें क्या?'

'अच्छा, रहने दीजिए। भोजन कर के सोइये।'

'मुझे भूख नहीं है।'

'थोड़ा दही-भात खा लीजिये।' वह मनाने लगी।

'मुझे कुछ नहीं चाहिए। आगे से तुम मेरी प्रतीक्षा में मत बैठी रहा करो। भोजन करके सो जाओ।' सारथी ने कहा।

सुधा के मन का दुःख उमड़ आया। बोली - 'आपके भोजन किये बिना मैं कैसे खा सकती हूँ। अच्छा यह तो बताओ तुम मुझ से इतने अप्रसन्न क्यों रहते हो?'

सारथी ने सुधा को उत्तर नहीं दिया। वह वहाँ से अपने कमरे में गया और कपड़े उतार कर लेट गया। सुधा को कुछ सूझ नहीं रहा था। उसने सारथी के पास जाकर उसकी भुजा अपनी ओर खींचनी चाही। बोली- 'मुझ से क्या अपराध हुआ है? तुम मुझ से नाराज क्यों रहते हो?'

सामान्य स्थिति में सुधा की इस बात से सारथी द्रवित हो जाता, किन्तु आज वह बहुत अस्थिर और उदास था। कल ही तो एक मित्र ने क्लब में व्यंग कसा था - 'भाई सारथी, आधी रात तक ताश खेलते

तुम्हारे विवाह को एक वर्ष भी तो नहीं बीता। बेचारी पत्नी को व्यर्थ सता रहे हो!' मित्र की बात सारथी के मन को लगी थी।

उसकी शादी हो चुकी है, किन्तु क्या उसने सचमुच दाम्पत्य सुख भोगा है? लोग क्यों जानने लगे कि आखिर मैं इतनी रात गये क्लब से क्यों लौटता हूँ?

उस दिन क्लब जाने की इच्छा नहीं हुई। सिनेमा देखने गया तो वहाँ मन नहीं लगा। आधा खेल देख कर चला आया। समुद्र किनारे जाकर कई मील तक पैदल चला गया। रात में कहीं कुछ खाया भी नहीं। सवेरे से रात के बारह बजे तक कमर सीधी नहीं की। इसीलिए मन उद्विग्न बना हुआ है।

सोचा था सुधा जीवन में सुधा बरसायेगी; किन्तु सुधा - सुधा नहीं विष की गाँठ निकली। वह मानवी नहीं पाषाण - मूर्ति है। इतनी उदास क्यों रहती है? सुधा के संबन्ध में इतने कठोर विचार आज से पहले कभी मन में नहीं आये थे।

शरीर थका हुआ, हृदय भारी और विचार बोझल, इन सब ने उसके स्वभाव को ही बदल दिया। सुधा ने जैसे ही कहा-' तुम नाराज क्यों हो?' सारथी विचलित हो उठा। आपे से बाहर हो कर उसने क्रोध में कहा - ' तुमसे मैं बात भी नहीं करना चाहता। मुझे सताओ मत। दूर हटो, सो जाओ। '

सुधा के मन में पहले ही व्यथा की कमी नहीं थी, जब उसे पता चला कि पति भी उस से घृणा करता है तो पीड़ा की सीमा नहीं रही।

' हाँ मैं जानती हूँ आप मुझ से घृणा करते हैं। मुझ से बात करना भी पसंद नहीं है। आज नहीं, मैं कई दिनों से आपकी घृणा को जानती हूँ। मैं घृणास्पद जो हूँ। ' सुधा इतना कह कर चली गई।

' तुम घृणास्पद नहीं हो, घृणा तो मुझ से है तुम्हें। इस घर में मेरे लिए सुख कहाँ?' सारथी इतना कह कर बाहर चला गया। सुधा ने

नहीं। वहीं खड़ी चुपचाप देखती रही।

मानव का मन भी कितना विचित्र है। जहाँ राह नहीं वहाँ राह बना लेता है, जहाँ किसी प्रकार का सन्देह नहीं वहाँ सन्देह की सृष्टि करता है। अनेक प्रकार की कल्पनाओं से इस सन्देह को पुष्टि मिलती है।

सन्देह का कारण चाहे जो हो, किन्तु वह समय पाकर भयानक रूप धारण कर लेता है। छोटी - सी चिनगारी से बड़े - बड़े जंगल भस्म हो जाते हैं।

'इस घर में मेरे लिए सुख कहाँ?' इस वाक्य में सुधा को न जाने क्या-क्या सुझाई दे गया। उन्हें इस घर में सुख क्यों मिलने लगा? मुझ जैसी कुरूप स्त्री से उन्हें क्या सुख मिलेगा? संभवतः उन्हें किसी दूसरे घर में सुख मिलता है? तभी इस घर में नहीं रहते, आधी - आधी रात गये लौटते हैं। मैं जिसके लिए डरती थी, आखिर वही होकर रहा।' सुधा सोचती रही।

सुधा यह नहीं सोच सकी कि सारथी जब इस छोटे - से घर में सुख नहीं पा सका तो सुख की खोज करने के लिए बाहर चला गया। सारथी ने सोचा होगा - संभवतः इस अनन्त विश्व में ही सुख मिल जाये।

आवेश के कारण सारथी घर से चला आया था, किन्तु उसका अन्तःकरण भीतर ही भीतर कचोट रहा था कि वह अकारण ही सुधा पर इतना क्रोध कर बैठा। सुधा से आज कोई भूल नहीं हुई थी। प्रतीत होता है, आजकल वह ठीक बर्ताव करने लगी है। ऐसे अवसर पर सारथी ने ही गलत रास्ते पर पाँव रखा है। इस सोच विचार में उसने समुद्र तट पर रात बिता दी। प्रातःकाल घर लौटते - लौटते उसने मन ही मन अनेक संकल्प किये। जैसे ही उसने दरवाजा खटखटाया, सुधा ने किवाड़ खोल दिये। सुधा की आँखें जल रही थीं, उसमें क्रोध अपमान और दुःख एक साथ प्रतिबिंबित हो रहे थे।

'पगली, रात भर सोई नहीं! क्या रात भर रोती रही?' सारथी सुधा के मुँह के पास अपना मुँह ले गया। उसने अपने हाथ सुधा के कंधे पर रख दिये और फिर एकटक देखते हुए यह वाक्य कहा। उसके स्वर में दया थी।

सुधा मारें क्रोध के काँपने लगी। रात भर हृदय पर चोट करते रहे और अब सान्त्वना दे रहे हैं। अब यह समझौता क्यों? वह उसके मार्ग की बाधा नहीं बन रही है। उसके मन में विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ।

'अपनी सहानुभूति रहने दीजिये। मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। आपने रात का पिछला प्रहर तो सुख में बिताया है न? मेरा रोना क्या आज का है? मुझे तो हमेशा रोते रहना है? तुम इतनी जल्दी क्यों लौट आये? अडोसी-पड़ौसी देख न लें क्या इसी डर से मुँह अँधेरे चले आये आप को किसका डर है? मुझ से आप को सुख नहीं मिल सकता, यदि किसी दूसरें से आप को सुख मिलता है तो मुझे प्रसन्न होना चाहिए।' सुधा अपनी उद्विग्नता को नहीं रोक सकी।

सारथी ने अनुभव किया जैसे एक साथ हजारों बिच्छू उसे डंक मार रहे हैं। उसने अनुभव किया जैसे वह बीच समुद्र में बहा जा रहा है। सुधा के कंधे से उसका हाथ फिसल गया। गले से आवाज नहीं निकली। आवेश, अपमान और क्रोध तीनों ने मिल कर उसे गूँगा बना दिया। उसका अपमानित हृदय बदला लेने के लिए मचल उठा। मुँह लाल हो गया और आँखों में खून उतर आया। वह उस समय चोट खाये हुए साँप और घायल सिंह की भाँति क्रुद्ध हो उठा था। कोई उसका मुँह देखता तो भयभीत हुए बिना नहीं रहता।

सुधा उसकी आकृति को देख कर स्तब्ध रह गई। उसके मुँह से एक चीख निकल गई। मुँह आँचल से ढँक लिया उसने। सिर से पाँव तक थर-थर काँपने लगी। उसे प्रतीत हुआ जैसे प्रलय होने जा रही है। आँचल सें ढँके उसके मुँह पर सारथी ने पूरी शक्ति के साथ एक थप्पड़ जड़ दिया। थप्पड़ खाते ही उसका मस्तिष्क चकरा गया। वह तत्काल धरती पर गिर गई। उसने आँख खोली तो सारथी घर में नहीं था। सुधा धीरे से उठ कर घर में चली गई।

× × × ×

इस घटना के पश्चात इस घर में अनेक परिवर्तन हुए। पति-पत्नी

दोनों के स्वभाव में अन्तरर आ गया, सारथी लेक्चरर बन गया। घर के काम के लिए उसने एक लड़का नौकर रख लिया।
आज कल सारथी भूल कर भी सुधा से बात नहीं करता। नौकर को ही आदेश देता है - 'राम, मेरे कमरे में भोजन ले आओ।' 'छोकरें पानी लाना।' 'घर में पूछ कर आना कितने रुपये चाहिएँ?' इसी तरह काम चल जाता है।

सारथी नहा-धोकर, भोजन कर के कालेज चला जाता है। सन्ध्या को वह घर नहीं आता, आता भी है तो कपड़े बदल कर तुरंत चला जाता है। रात गये घर लौटता है। नौकर दरवाजा खोलता है और वह सीधे अपने कमरे में चला जाता है। सुधा के सामने नहीं जाता। सुधा भी जब जी चाहता है, भोजन करकें दूसरें कमरे में सो जाती है।

समय बड़ा बलवान है। वह एक करवट थोड़े ही रहता है। सारथी में तो किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ, किन्तु सुधा की दिनचर्या बदलने लगी। कभी-कभी घर से बाहर जाने लगी। सहेलियाँ घर आने लगीं। सहेलियों से घंटों बात करती रहती। अपने बनाव-श्रृंगार में आनन्द अनुभव करने लगी, किन्तु उसकी सज्जा को सारथी कभी देख नहीं सका।

सारथी दिन-दिन दुबला होता जा रहा है। कभी-कभी खाँसी चलने लगती है तो रुकने का नाम नहीं लेती। एक दिन सुधा ने नौकर से पुछवाया - साहब से कहो आपका स्वास्थ अच्छा नहीं मालूम होता। डाक्टर को बुलवा लिया जाये।

सारथी ने नौकर को उत्तर दिया - 'मैं अपने स्वास्थ्य के बारे में खूब जानता हूँ। मुझे तुम लोगों की सहायता नहीं चाहिए।'

नौकर छोटा-सा लड़का है, १२ वर्ष का। वह पति-पत्नी के मन-मुटाय को क्या जाने? दोनों के बीच संवाद लाने-ले जाने का काम कर सकता है। उसने सुधा से कहा - 'मालिक अपने स्वास्थ्य के बारे में सब जानते हैं।'

सुधा की चिन्ता बढ़ गई। उसने एक दिन डाक्टर को बुलवा भेजा। डाक्टर ने घर में घुसते ही कहा - 'सारथी, सुना है तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है?'

सारथी ने चकित होकर पूछा - 'आपको किसने सूचना दी?'

'आपकी श्रीमतीजी ने।' डाक्टर ने कहा।

साहस कर के सुधा वहाँ पहुँच गई। धीरे से बोली - डाक्टर, ये दिन पर दिन कमजोर होते जा रहे हैं। कभी कभी खाँसते भी हैं।

सारथी को सुधा के आगमन पर आश्चर्य हुआ। कई दिनों बाद उसने सुधा को देखा। नवीनता दिखाई दी। उसने अपने से प्रश्न किया - क्या यही सुधा है। अपने को सँभाल कर डाक्टर से कहा - 'जी हाँ, डाक्टर। कभी - कभी कुछ खाँसी आ जाती है।'

'रात में बहुत देर तक पढ़ते रहते हैं। संभवतः नींद नहीं आती। इनसे कहिये रात में जल्दी सो जाया करें।' सुधा ने डाक्टर की ओर देख कर कहा।

डाक्टर ने हँसते हुए कहा - 'सुनते हो, आपकी श्रीमतीजी क्या कह रही हैं। अधिक जागने से आपका स्वास्थ्य अवश्य खराब होगा।'

सारथी ने तीव्र दृष्टि से सुधा को देखा। उस दृष्टि में क्रोध था या आश्चर्य कहा नहीं जा सकता। सारथी ने मन ही मन सोचा, डाक्टर के आगे स्पष्ट कहने की अपेक्षा सुधा ने देर तक जागने का बहाना बनाया है।

'जी हाँ, पुस्तकों में खो जाता हूँ तो समय का ध्यान नहीं रहता। आगे से जल्दी सोया करूँगा।' सारथी ने डाक्टर से कहा। डाक्टर ने उसके स्वास्थ्य की जाँच करके नुस्खा लिख दिया।

सुधा का विचार था - इस घटना के पश्चात् सारथी में अवश्य परिवर्तन होगा। उसने यह भी सोचा था कि डाक्टर के जाने के बाद या तो सारथी को क्रोध आएगा या वह कुछ न कुछ कहेगा। किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। वह पूर्ववत् मौन साधे रहा। सुधा अच्छी तरह जानती है कि

के टूटने तक उसकी समस्या नहीं

3)

एक दिन अकस्मात् सुधा की एक सहेली घर आ गई। सुधा के विवाह के पश्चात् यह सहेली पहली बार मिलने आई थी। सारथी घर पर नहीं था। दोनों सहेलियाँ अपने-अपने मन को खोलने लगीं।

कुशल-मंगल पूछने के पश्चात् सुजाता ने कहा - 'सुधा तुम इतना बदल गई हो कि पहचानी नहीं जाती।'

यदि कुछ समय पूर्व कोई यह बात कहता तो सुधा को दुःख हुए बिना नहीं रहता। किन्तु आजकल ऐसी बात नहीं है। उसने बात टालने के लिए कहा - 'जाने भी दो इस बात को। हमारे वश में क्या है? सब भाग्य का खेल है!'

'हाँ, और क्या। तुम्हें इस बात से तो प्रसन्नता है कि सारथी जैसा पति मिल गया। तुम चाहे जैसीं हो, सारथी तुम से प्यार करता है।' सुजाता ने यह कहते हुए धीरे से सुधा के गालों पर चपत जमाई।

सुजाता की बात से सुधा के मन में हलचल मच गई। वह मन ही मन दुःख अनुभव करने लगी। सारथी का स्वभाव बहुत अच्छा है। इसीलिए तो उन्होंने मेरा तिरस्कार नहीं किया। विवाह के लिए तैयार हो गये। दोष उसका अपना है जो उनका मन दुखा कर ऐसा वतावरण बनाये हुए है।

'तुम्हारे पति देवता कब तक घर लौटते हैं? मैंने उन्हें देखा नहीं है। तुम को परिचय कराना पड़ेगा।' सुजाता ने अनुरोध किया।

सन्ध्या को सारथी कालेज से लौटा तो सुधा ने नौकर के हाथ काफ़ी नहीं भेजी। स्वयं काफ़ी लेकर कमरे में गई। सुधा का आना सारथी को ज्ञात नहीं हुआ, इसीलिए उसने कोट उतारते हुए कहा - 'लड़कें, आज घर में कोई नई औरत आई है, कौन है?'

'मेरी सहेलीं है। मैं कई बार चर्चा कर चुकी हूँ कि मेरी सुजाता नामक एक सहेली है। वह अनुसन्धाता के रूप में यहाँ विश्वविद्यालय में पढ़ने आई है। जब तक छात्रावास में जगह नहीं मिलती, वह हमारें यहाँ रहना चाहती है।' सुधा ने यह कह कर काफ़ी का ट्रे मेज़

रख दिया। सारथी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने सुजाता को बुलाया - 'अरी सुजाता, यहाँ आना।'

सुजाता मटकती हुई वहाँ आ गई। लजाती हुई बोली - 'नमस्ते।' सारथी ने नमस्कार का उत्तर दिया। सुजाता ने कहा - 'मैं आप लोगों के विवाह में सम्मिलित होना चाहती थी, किन्तु उन्हीं दिनों मेरे पिताजी का परिवर्तन हो गया और मैं आ नहीं सकी।'

'बैठिये, आप किस कालेज में पढ़ी हैं!'

'राजमहेन्द्री कालेज में।' सुजाता ने कहा।

औपचारिक ढंग से कुछ बातें करके सारथी बाहर चला गया। स्त्रियों से बात करने में उसे संकोच होता है। सारथी को इस बात से प्रसन्नता हुई कि उस में और सुधा में जो मौन बना हुआ है, वह सुजाता के आने से टूटने लगा है। फिर भी उसे आशंका हुई कि सुधा कहीं अपनी सहेली के आगे अभिनय तो नहीं कर रही है।

सुजाता छोटे कद की होते हुए भी सुन्दर है। उसके बोलने का ढंग किसी को भी आकर्षित कर सकता है। बहुत बातून है।

सुजाता और सारथी में परिचय बढ़ने लगा। एक दिन सारथी कालेज जा रहा था, सुजाता ने कहा - 'देखिये, आज सुधा सिनेमा देखना चाहती है, जल्दी लौटिएगा।'

'यह भी अच्छी रही। तुम सिनेमा देखना चाहती हो या मैं?' सुधा ने कहा।

'आप दोनों देख आओ। मुझे समय नहीं है।'

'वाह, आप भी कैसे आदमी हैं। सिनेमा देखने का प्रस्ताव आपको करना चाहिए था। पूछना तो दूर, हम लोगों के आग्रह करने पर भी आप बचना चाहते हैं। यदि हम दोनों ही जाना चाहतीं तो आप से पूछने की क्या आवश्यकता थी। यह नहीं हो सकता। आपको चलना पड़ेगा।' सुजाता ने आग्राह के साथ कहा।

न्ध्या को सारथी सुधा और सुजाता के साथ सिनेमा देखने गया।

दोनों युवतियों ने बनाव-श्रृंगार खूब किया था। सुधा सुन्दर जरी की साड़ी पहने हुए थी। चमेली के फूलों से उसने वेणी सजाई थी। सुजाता की वेणी में पुष्पमाला लटक रही थी। जार्जट-सिल्क की हल्के नीले रंग की साड़ी थी।

उन दोनों को देख सारथी को ईर्ष्या होने लगी। उसने सोचा - मैंने कितनी बार सुधा से कहा कि वह अपनी वेणी को फूलों से सजाया करे, किन्तु उसने कभी बात नहीं मानी। आज अपनी सहेली से बाजी मारने के लिए किस सज-धज से बाहर आई है।

तीनों सिनेमा - हाल में पहुँचे। सबसे पहले सुधा कुर्सी पर बैठी, उसके बाद सुजाता के पास बैठने में सारथी को संकोच हुआ। एक अविवाहित युवती के पास बैठने का अवसर क्यों दिया है सुधा ने? उसे सुधा पर क्रोध आने लगा। वह सुजाता को पहले बैठा कर स्वयं उसके साथ बैठ सकती थी।

सिनेमा की कहानी है - नायक-नायिका पर क्रुद्ध होता है, उसे दंड देने के लिए पीहर भेज देता है। इसी अवसर से लाभ उठा कर एक सुशिक्षित युवती नायक के सम्पर्क में आती है। वह युवती स्वभाव से चंचल है। नायक उसके प्रेम में फँस कर परेशान होता है। पत्नी को पीहर से बुलाना उसके आत्मसम्मान के अनुकूल नहीं है। इधर उस चंचल लड़की से तंग आ जाता है।....

सारथी का मन विचलित होने लगा। स्वभावत: वह सुधा से दूर नहीं रहना चाहता, किन्तु एक के बाद एक ऐसी घटना हुई कि वे दोनों पृथक होते गये। सारथी को स्पष्ट दिखाई दिया कि खेल की नायिका और कोई नहीं सुजाता है। सिनेमा देखते समय सुजाता जिस ढंग का बर्ताव कर रही थी, वह भी सारथी को अच्छा नहीं लगा।

जब सारथी, सुधा तथा सुजाता सिनेमा आ रहे थे, मार्ग में सुजाता सारथी की ओर देख - देख कर हँस पड़ती थी। उसने कई बार सारथी को छुआ। कई बार विचित्र ढंग से देखती रह गई थी। सारथी ने सोचा - सुजाता शिक्षित होते हुए भी सुसंस्कृत नहीं है।

का नायक उस चंचल युवती के जाल में फँस गया। सारथी का विचार था कि खेल के इस अंश से सुधा अवश्य दुःखी होगी।

सिनेमा से लौटते हुए सुजाता ने अपनी सहेली से कहा - 'नायक अजीब था। स्त्री को देख कर इतना घबराता क्यों था?'

सुधा ने गंभीरता से कहा 'क्या करता बेचारा, स्त्री ही तो सारे अनर्थों की जड़ है।'

दूसरे दिन सारथी को ज्वर आ गया। उसने अवकाश के लिए पत्र लिख दिया। डाक्टर ने परीक्षा करके औषधि दी, किन्तु बुखार बढ़ता ही गया।

बातचीत में सुजाता ने मजाक किया, 'सिनेमा देखने से ज्वर आ गया? संभवतः यह सिनेमा का ही प्रभाव है। बताइये शरीर का ज्वर है या मन का?'

सारथी को क्रोध आया, किन्तु उसने कहा कुछ भी नहीं।

सुजाता स्नान करने गई तो सारथी ने नौकर भेज कर सुधा को बुलवाया। प्रश्न किया - 'सुजाता और कितने दिन रहेगी यहाँ? उसका बर्ताव मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'चिन्ता न करें, वह कल चली जाएगी।' सुधा इतना कह कर चली गई।

सारथी का विचार था, जब उसने स्वयं सुधा को बुलाया है तो कुछ क्षण ठहरेगी, कुछ बात करेगी। उसका यह रूखा व्यवहार सारथी को अच्छा नहीं लगा।

रात में नींद नहीं आई। सुजाता का सन्देह ठीक निकला। इस समय मन का ज्वर अधिक तीव्र हो गया। सुधा का व्यवहार उसकी समझ में नहीं आ रहा था। वह सोचने लगा - इस समय सुधा चैन से सो रही होगी। मेरी तरह जागती थोड़े ही होगी। प्रयत्न करने पर भी सारथी को नींद नहीं आई।

लम्बे चौड़े पलंग पर अकेले करवटें बदलते हुए उसने अनुभव किया,

वह विस्तृत मरुभूमि में अकेला यात्रा कर रहा है। प्रातःकाल ज्वर उतर गया, कमजोरी बनी रही।

उस दिन सन्ध्या को सुजाता ने सारथी से कहा - 'मुझे छात्रावास में जगह मिल गई है। मैं जा रही हूँ। अनुमति दीजिये।'

सारथी से आज्ञा लेकर वह छात्रावास चली गई। सारथी का मन हल्का हो गया। उसने लम्बी साँस ली।

उस दिन रात को अकस्मात् सारथी के माता - पिता आ गये।

अन्दर आकर माँ ने पूछा - 'कैसा स्वास्थ्य है बेटा?'

सारथी ने इस प्रश्न पर ध्यान न दे कर पूछा - 'तुम लोगों ने आने की सूचना भी नहीं दी। मैं स्टेशन पर आ जाता।'

'वाह, स्वास्थ्य तो इतना खराब है' स्टेशन पर लेने आते? सारथी के पिता ने कहा।

'तुम लोगों को किसने सूचना दी कि मेरा स्वास्थ्य खराब है!'

बहू की ओर देखते हुए सारथी की माँ ने कहा - 'बहू तुम्हींने तो तार दिया था।'

'कल दिन भर तेज बुखार रहा। रात भर बड़बड़ाते रहे। मुझे डर लगा। इसीलिए तार किया था। यदि मैं पूछती तो तार करने की अनुमति थोड़े ही देते।' सुधा ने मुस्कराते हुए कहा।

बहुत दिन बाद सारथी ने सुधा के मुँह पर ऐसी सरल और स्वाभाविक हँसी देखी थी।

सुधा ने तार दिया? क्यों दिया? मैं कहाँ बड़बड़ा रहा था! मुझे तो रात में नींद ही नहीं आई। इस तरह विचार करते समय सारथी को आश्चर्य हुआ। किन्तु आश्चर्य व्यक्त नहीं किया। बोला - 'कल कुछ ज्वर आ गया था। घबरा कर दे दिया होगा।' सारथी ने सुधा का समर्थन किया।

सुधा सास - ससुर को भोजन परस रही थी। सारथी ने नौकर के कान में धीमे से कहा-' तुम्हारी मालकिन का बिस्तर इसी कमरे में बिछा दे।

राम ने हँसते हुए इस तरह सिर हिलाया, जैसे बात उसके दिमाग में बैठ गई है।

सारथी अपनी विवशता पर लज्जित हुआ। वह अपने और सुधा के मनमुटाव को माँ - बाप के सामने प्रकट नहीं करना चाहता था। यदि माँ - बाप को कुछ भी आभास हो गया तो अवश्य कहेंगे - 'हमने तो पहले ही कहा था। अब अपना भोग भोगो।'

सबने भोजन कर लिया। सारथी को भूख लग रही थी, किन्तु कुछ खाने के लिए डाक्टर ने मना किया था। यदि डाक्टर की सलाह की उपेक्षा करके भोजन करता भी तो क्या माँ - बाप करनें देते? सुधा ने पूछा तो फलों का रस पीकर लेट गया। पिछली रात नींद नहीं आई थी, आज लेटते ही सो गया।

रात में नींद टूटी। खिड़की से ठंडी हवा आ रही थी। ठंड लगी तो उसने पगाँयते से चादर लेने के लिए हाथ बढ़ाया। हाथ सुधा के गाल से छू गया। वह चौंक कर बैठा हो गया।

आश्चर्य, सुधा सिमट कर उसके पाँवों में सो रही है। चाँदनी में उसकी आकृति स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वेणी में चमेली के फूल गुँथे हुए थे। फूलों की सुगन्ध से पूरा कमरा महक रहा था। मन्दार पुष्प के रंग की रेशमी साड़ी हवा के झोकों में उड़-उड़ कर सरसरा रही थी। सारथी को वह रंग बहुत पसंद था। सुहाग रात को उसने यह साड़ी दी थी। पीले रंग की रेशमी चोली सुन्दरता को चार चाँद लगा रही थी।

सारथी कुछ क्षण तक सुधा को अपलक देखता रहा। सुधा ने अपने को खूब सजाया था। वह इस समय कितनी गहरी नींद में है! सारथी को अनुभव हुआ कि जरा से हिलाने पर उसकी नींद टूट जाएगी।

किन्तु, चमेली के फूल की महक, चाँदनी, और सुधा। उसे लगा से नशा गहरा होता जा रहा है। उस रात उसे सुंदरता अनिर्वचनीय अचानक उसने सुधा को अपनी गोद में भर लिया। सुधा ने

करवट बदली और सारथी की छाती में अपना मुँह छिपाते हुए कोमल स्वर में बोली - 'मुझे क्षमा कीजिये।'

सारथी हर्ष-विभोर हो गया। उसका मन नाचने लगा। नस-नस में बिजली दौड़ गई। हृदय चाँदनी से ढँक गया। उसने सुधा को और निकट कर लिया। उत्साह उमड़ा पड़ रह था। लालसा जाग गई। सारथी ने सुधा को समेट लिया।

चन्द्रमा जैसे गगन में, पुतली जैसे आँख में और छाया जैसे पुतली में लीन होती है, उसीं तरह सुधा सारथी में समा गई। न जाने वे कितनी देर तक एक-दूसरे में तल्लीन रहे। अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करते रहे। कुछ समय बाद सारथी को सुध आई। सुधा अविरल अश्रुधारा बहा रही थी। आँसुओं से सारथी की छाती भीग गई। उसने सुधा को चूमते हुए कहा - 'आँसू क्यों बहा रही हो? दुःख भूल जाओ। भूत काल को बिसरा कर एक बार खुले मन से हँस दो। हमारे जीवन की कली खिल गई है। अब हमारा जीवन फूल बन कर महकने लगेगा।'

सारथी आनन्द में डूबा बोलता गया। उस समय वह रस में सराबोर था। आनन्द और अनुराग ने दोनों तट छू लिये। इतने दिन तक दोनों हृदयों की भावनाएँ मूक बनी हुई थीं, आज वे नई रागिनी आलापने लगीं।

दूसरे दिन सन्ध्या को सारथी ने सुधा को बुलाया। बोला - 'काफी पिलाओ। मैं टहलने जाऊँगा।'

'सुजाता भी आ रही है। कुछ ठहर जाइये। तीनों एक साथ काफी पीएँगे।' सुधाने कहा।

'ओह, सुजाता! तुम उसके साथ काफी पी लेना। मैं तो चला।'

'तुम सुजाता से अप्रसन्न क्यों हो?'

'अप्रसन्न? नहीं, मुझे उससे घृणा है। अजीब लड़की है!'

'आप पहचान नहीं सके। उसने जान-बूझकर ऐसा बर्ताव कि था। वैसे वह बहुत अच्छी लड़की है। आपकी परीक्षा ले र

यदि वह सलाह न देती तो मैं सास-ससुर को बुलाने के लिए तार न करती। तार न करती, तो वे नहीं आते, और वे नहीं आते तो ....।'

'जीजाजी का बुखार न उतरता।' उसी समय कमरे में प्रवेश करते हुए सुजाता ने कहा।

'ओह, यह तुम्हारा षड्यंत्र था? तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद।' सारथी ने कहा।

'आपका धन्यवाद किसने चाहा है? अच्छा-सा खेल दिखाने ले चलिये। आपके साथ सिनेमा देखने में मुझे बहुत आनन्द आता है।' अपनी स्वाभाविक चंचलता का प्रदर्शन करते हुए सुजाता बोली।

'मुझे भी कम सुख नहीं मिलता, किन्तु मेरी ओर से सुधा के मन में सन्देह जो भरा है। मेरा सिनेमा देखने न जाना ही अच्छा।' सुधा की आँखों में झाँकते हुए सारथी ने कहा।

'कहावत भी तो है मार के डर से भूत भी काँपता है। उस दिन तुम्हारे क्रोध को देख कर मेरा क्रोध न जाने कहाँ चला गया।' सुधा मुस्कराते हुए बोली।

भास्कर भटल कृष्णराव

प्रतिष्ठा

आखिर वह अपने निर्णय पर पहुँच ही गया। जल्दी - जल्दी में उसने अपनी अटेची में कपड़े रखे और फिर इधर - उधर दृष्टि डाली कि कोई चीज रखने से बच तो नहीं गई। और जाने के लिए तैयार हो गया।

अचानक किसी की आवाज़ सुनकर वह ठिठक गया - 'कहाँ जा रहे हो रंगराव?'

प्रश्न सुनकर रंगराव के तन - बदन में आग लग गई। उसने कहा - 'पूछ ही बैठे न तुम?'

उसका चेहरा देख कर माँ चुपचाप रसोई घर में लौट गई। अपशकुन हो गया। सन्देह हुआ, बेटा जिस काम के लिए जा रहा है, उस में सफलता मिलेगी या नहीं।

रंगराव चल दिया। आँगन पार करके वह कुछ दुर आगे गया ही था कि किसी ने छींक दिया। रंगराव ने सोचा अब तो मुझे जाना नहीं चाहिए, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपशकुन से अपना ध्यान हटा लिया। लम्बे - लम्बे डग भरता वह स्टेशन की ओर चला गया। पाँच मिनट में ही सिकन्दराबाद स्टेशनके सामने खड़ा था। गाड़ी स्टेशन पर नहीं आई थी। टिकट लेकर प्लेटफार्म पर पहुँचा, पता चला गाड़ी एक घंटा लेट है।

रंगराव प्लेटफार्म पर सिमेंट की बेंच पर बैठ गया। उसके मस्तिष्क में एक साथ अनेक बातें चक्कर काटने लगीं। बहन के विवाह में कै दिन बचे हैं? विवाह का खर्च अलग, केवल दहेज में ही दो हजार रुपये देन हैं' सम्बन्ध अच्छी जगह हुआ है, लड़का समझदार और पढ़ा - लिखा है सचिवालय में नौकर है, सौ रुपये से अधिक मासिक वेतन मिलता है

पद वृद्धि की आशा है। रहने दो, चिन्ता की कोई बात नहीं। इस वेतन में ही पति - पत्नी जीवन बिता सकते हैं। किन्तु अपने घर में तो एक पाई भी नहीं बचती। जो आय है उसमें घर का व्यय चलना भी कठिन है, तीन हजार रुपये का प्रबन्ध कैसे होगा? जमाना कैसा आया है, कोई उधार भी नहीं देता। यदि कहीं से ऋण मिल भी जाये तो उतरेगा कैसे?

रघुनाथपल्ली में दस एकड़ खुश्की की जमीन है, एक बड़ा कुआ है। कुएँ के पास एक एकड़ के लगभग तरी है, इस भूमि पर चार - पाँच हजार रुपये मिल सकते हैं, किन्तु कोई रहन रखे तब न। भूमि इनाम में मिली है। पिताजी की मृत्यु के पश्चात मेरे नाम पर उतर तो चुकी है, किन्तु आजकल ईनाम की भूमि पेर भी उसी का अधिकार माना जाता है, जो उसे जोतता है। मल्लैया का परिवार अपने बाप - दादा के जमाने से उस जमीन को जोतता आ रहा है। मल्लैया प्रायः कहता है, हम एक जगह जनमे, एक साथ पाले - पोसे गये हैं। वह भगवान का भक्त है। सीधे स्वभाव का आदमी है। उसके साथ लिखा - पढ़ी भी नहीं हुई। जितना अनाज रंगराव के परिवार के हिस्से का होता है, अपने आप दे जाता है। इस वर्ष अनाज नहीं दिया कारण यह हो सकता है कि उसने हाल ही में अपनी बेटी का विवाह किया है। और फिर तालाब का बाँध टूट गया है, जिससे आसपास अच्छी खेती नहीं हो रही है। बाँध की मरम्मत कराने की सकत न तो मल्लैया में है और न रंगराव में। कम से कम पाँच सौ रुपये की बात है। मल्लैया ने सरकारी सहायता के लिए आवेदन-पत्र दिया था। राजस्व विभाग के अधिकारियों ने भूमि का निरीक्षण भी किया था, किन्तु बात आगे नहीं बढ़ी। दोष तालाब का था, बरसात में तो पूरा भर जाता था किन्तु गरमी के दिनों में एक बूँद पानी भी नहीं बचता था।

इधर सरकार टेनेन्सी ऐक्ट कियान्वित कर रही थी। सब किसानों के साथ मल्लैया को भी टेनेन्सी का फार्म मिला। इस कानून के अनुसार मल्लैया बेदखल नहीं किया जा सकता था। यदि रंगाराव जमीन बेचना चाहे तो ही बेच सकता है। मल्लैया को इस बात की सुविधा भी प्राप्त है

कि वह एक मुश्त रुपया न देकर किश्तों में दे। मल्लैया के पास रुपया नहीं है किन्तु रुपया न होने पर ही क्या वह जमीन का अधिकार छोड़ देगा ? इन सब बातों का अर्थ तो यह हुआ कि मल्लैया भूमि नहीं छोड़ेगा। पहले की तरह बाँटे का अन्न देता रहेगा।

जब भी वह मिलेगा, उससे बाँटें का अनाज माँगूँगा। किन्तु वह आज बाँटे का अनाज दे नहीं सकता। संभवत: उसे अपने ढोर बेचने पड़ें। गोवर्द्धन-से पता चला है कि मल्लैया ने कर्ज से बचने के लिए दो बैल बेच दिये। एक या दो जानवर बचे होंगे। इस स्थिति में मल्लैया को बेदखल करना सरल होगा? यदि मैं एकड़ डेढ़ एकड जमीन देने का वचन दूँ तो संभवत: वह खेत छोड़ दे। कुछ भी हो, भूमि बेच देनी चाहिए। भूमि बेचने से ही रुपया मिल सकता है और तभी मुसीबत से बचा जा सकता है।

बहुत सावधानी से काम लेना पड़ेगा। पटवारी रामचन्द्रैया के बिना यह काम नहीं हो सकता। रघुनाथपल्ली में पहुँचते ही सबसे पहले उसी से मिलना चाहिए। व्यावहारिकता में पटवारी रामचन्द्रैया की बराबरी कोई नहीं कर सकता। कुछ दे-दिला कर पटवारी से काम निकालना होगा। काम बनते ही पट्टन (नगर) लौट आऊँगा [तब मेरा गाँव से क्या संबंध रहेगा ? सदा के लिए छुटकारा मिल जाएगा]

रघुनाथपल्ली तेलंगाने का एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ अब तक शहर की हवा नहीं पहुँची है। टेनेन्सी-ऐक्ट की खबर अब तक कौन जनता होगा। कुछ समय बीतने पर स्थिति और खराब हो जाएगी। स्थिति बिगड़ने से पहले ही जमीन बच कर निश्चिन्त हो जाना चाहिए। जो खेत जोतता है, जमीन का मालिक वही है, यह बात रघुनाथपल्ली में पहुँच जाएगी तो मुसीबत खड़ी होगी। छाया का विवाह निश्चित हो चुका है। उसी लिए तो विवश हो कर भूमि बेचनी पड़ रही है। अन्यथा बेचने की आवश्यकता क्या थी?

रंगराव ने घड़ी पर दृष्टि डाली, दस बज कर पाँच मिनट हो चुके थे गाडी धीरे-धीरें प्लेटफार्म से लग रहीं थी।

रेल, रेल के बाद बस और फिर लंबी पैदल यात्रा, तब कहीं रघुनाथ-पल्ली दिखाई दी।

रंगराव सीधा पटवारी रामचन्द्रैया के घर पहुँचा। पटवारी ने रंगराव को आश्चर्य से देखा। हाथ जोड़े, झुक कर प्रणाम किया और बोला - 'पधारिये पंडितजी, सीधे यहीं आ रहे हैं क्या?'

रंगराव ने लम्बी साँस लेकर कहा- 'जी, हाँ! सीधे आपके पास ही आ रहा हूँ।' इसके बाद उसने अपने आने का उद्देश्य कह सुनाया।

रामचन्द्रैया ने मूँछ पर ताव देते हुए कहा - 'हाँ, हाँ, क्यों नहीं? मैं अभी मल्लैया को बुलाये लेता हूँ। मल्लैया से पत्र लिखाना आवश्यक है कि उसने जमीन छोड़ दी है। उसकें बाद जमीन बेचने कीं बात हो सकती है।'

'बस, बस मैं आपका उपकार जीवन भर नहीं भूलूँगा। आपको जो कुछ मिलना चाहिए, पाई-पाई दूँगा।'

पटवारी और रंगराव में यह तय हो गया कि भूमि चार हजार रुपये में बिक सकती है और इस कार्य के लिए पटवारी को दो सौ रुपये दिये जायें। इस निश्चय के पश्चात ही रंगराव रामचंद्रय्या कें घर से बाहर निकला।

दूसरे दिन सवेरें आठ बजे फिर रंगराव पटवारी के यहाँ पहुँचा। उस समय मल्लैया को भी बुला लिया गया। न जाने क्या बात थी, रंगराव की बाँई आँख रह-रह कर फड़कने लगी! रंगराव के पहुँचते ही पटवारी ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। मल्लैया ने भी हाथ जोड़े, किन्तु मुँह से एक शब्द नहीं निकला।

बिना किसी भूमिका के रंगराव ने कहा - 'दो साल से बाँटे का अन्न नहीं मिल रहा है मल्लैया! इसलिए मुझे आना पड़ा।'

मल्लैया बोला - 'आज अन्न कहाँ से दूँ? चार दिन ठहरिये, फसल पर बाँटे का पूरा अन्न दे दूँगा।'

इस पर रामचन्द्रैया ने कहा- 'तुम तो साल भर से यही कह रहे हो।'

।'तालाब की दशा तो आप जानते ही हैं, पटवारी जी! कुआँ भी सूख

गया। पहले की तरह अन्न पैदा नहीं हुआ।' मलैया ने जमीन और फसल से संबन्धित सारी बातें बता दीं।

'यह सब नहीं चलेगा' - रामचंद्रैया ने कहा - 'देना हो तो आज इनके हिस्से का पूरा अन्न दे दो, नहीं तो लिख दो कि जमीन पर तुम्हारा अधिकार नहीं रहा,'

मलैया ने दीनता दिखाई - 'मेरे दादा ने, मेरे बाप ने और मैंने यह जमीन जोती है। अब इस भूमि को छोड़ कर कहाँ जाऊँ?' रंगाराव के मन में भी सहानुभूति उमड़ आई, किन्तु क्या करता, उसकी अपनी विवशता थी।

'घर में गहने होंगे? और गहने न हों तो जानवर बेच डालो।' रामचंद्रैया ने सुझाव दिया।

'आप जानते हैं पटवारीजी, लड़की के विवाह में ऋण लेना पड़ा था। ऋण चुका नहीं सका। ऋणदाता मेरे जानवर खोल ले गया। हाल ही में एक बैल मर गया। केवल एक भैंसा बचा है।' मलैया ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी।

मलैया की यह बात सुन कर पटवारी आग-बबूला हो गया। नौकरों की ओर देख कर बोला - 'यह बातों से नहीं मानने का। इसकी कमर पर भारी-सा पत्थर रख दो।'

'मैं आपके पाँवों पड़ता हूँ।' मलैया रंगराव के सामने गिड़गिड़ाया - 'मेरी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाएगी।' वह इतना कह कर जोर-जोर से रोने लगा। नौकरों ने बलपूर्वक उसे झुका कर पीठ पर भारी सा पत्थर रख दिया।

इसके बाद मलैया ने किसी को आँख उठा कर नहीं देखा। आँखें जमीन पर गड़ीं रहीं। आँसू बह रहे थे।

रंगराव से मलैया की दशा नहीं देखी गई। इसीलिए वह मलैया से आँख बचा कर दूसरी ओर देखने लगा। कुछ ही क्षणों में मलैया मूर्च्छित होकर पत्थर के साथ जमीन पर गिर पड़ा। उपस्थित लोगों में कानाफूसी होने लगी। रामचन्द्रैया ने तत्काल लोगों को वहाँ से हटा दिया। रंगरा

एक आदमी को तो पानी के लिए भेजा और दूसरे को मल्लैया की पत्नी को बुलाने के लिए।

पानी के छींटे लगे तो मल्लैया की मूर्च्छा टूटी। बड़बड़ाने लगा - 'मेरी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई, मेरी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल गई। अब जीने से क्या लाभ?

रंगराव को मल्लैया की वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं था। इसी समय मल्लैया की पत्नी रोती - बिलखती पहुँची। वह अपनी साड़ी का आँचल पानी में भिगा कर पति का मुँह पोंछने लगी।

'मेरी प्रतिष्ठा मिट गई।' मल्लैया ने पत्नी से कहा।

एक आदमी दूध का कटोरा लेकर मल्लैया की ओर बढ़ा किन्तु उसने दूध पीने से इंकार कर दिया। रंगराव ने आग्रह किया- 'थोड़ा-सा पी लो मल्लैया।' मल्लैया ने उस आग्रह का उत्तर नहीं दिया। पत्नी ने कहा - 'चलो घर चलें।' मल्लैया धीरे - धीरे खड़ा हो गया। न जाने क्यों, रंगराव भी मल्लैया के पीछे - पीछे हो लिया।

मल्लैया के तीन बरस के बेटे ने दो - तीन अदमियों के सहारे अपने पिता को आते देखा तो बिलख - कर रोने लगा।

'मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई बेटे। तू मेरी इज्जत नहीं रख सका।'

मल्लैया की पत्नी ने अपने पति को खाट पर लिटा दिया। तीन बरस के बेटे को भी उसने उसी खाट पर सुलाया। न जाने मन में क्या आया, मल्लैया सहसा खाट से नीचे उतर कर खड़ा हो गया। पत्नी ने पूछा- 'कहाँ जा रहे हो?' मल्लैया ने कोई उत्तर नहीं दिया। पीतल का एक लोटा बगल में दबा कर घर से बाहर हो गया। पत्नी समझ गई कहाँ जा रहा है।

रात में कोई आठ बजे के लगभग मल्लैया नशे में धुत बना घर लौटा।

'बच्चे को खिला दिया है?'

'हाँ।'

'तुमने भी कुछ खाया - पिया है या नहीं?'

।' पत्नी ने कहा।

'मेरी एक बात मानोगी?'

'बोलो।'

'तुमने विवाह की रात जो साड़ी पहनी थी, वह आज पहननी पड़ेगी।'

मल्ली का मुँह मारे लज्जा के ताँबे की तरह लाल हो गया।

'कारण तो बताओ।'

'तुम को वह साड़ी पहननी पड़ेगी।'

मल्ली विवश थी। उसने अपनी टूटी-सी सन्दूक से निकाल कर वह साड़ी पहनी।

'तू बहुत सुन्दर है मल्ली।' और मल्लैया ने आगे बढ़ कर मल्ली को चूम लिया।

× × × ×

गाँव के चौकीदार ने रात में दो बजने की सूचना दी। मल्लैया बिस्तर से उठा। पत्नी और बालक बेसुध सो रहे थे। मल्लैया ने एक बार बेटे को चूमा। पत्नी के निकट जाने का साहस नहीं कर सका। एक बार उसने मल्ली की ओर दृष्टि डाली और फिर रस्सी लेकर दूसरी में चला गया। भीतर से कुंडी लगा ली।

× × ×

प्रतिदिन की भाँति आज भी तड़के ही मल्ली की आँखें खुलीं। देखा - मल्लैया अपने बिस्तर पर नहीं था। इधर-उधर दृष्टि डाली। पास की कोठरी का दरवाजा भीतर से बन्द था। उसने पहले दरवाजा खटखटाया। अन्दर से कोई उत्तर नहीं मिला। वह रोने-चिल्लाने लगी। पास-पड़ौस के लोग दौड़े। धक्का देकर कोठरी का दरवाजा उतार दिया।

अन्दर लोगों ने देखा - मल्लैया रस्सी से लटक रहा है। मल्ली चिल्ला उठी - 'तुम फाँसी पर लटक गये!'

× × × ×

दो दिन तक रघुनाथपल्ली में पुलिस अधिकारियों की चहल-पहल रही पटवारी रामचन्द्रैया ने यह सिद्ध कर दिया कि मल्लैया ने जान

आत्महत्या की है, किन्तु इस बात को प्रमाणित करने के लिए पटवारी ने जो-जो यातनाएँ भोगीं, उन्हें भगवान ही जानता है।

कुछ लोगों का कहना है कि रंगराव और रामचंद्रैया दोनों ने दो-दो सौ रुपये दे.कर मामला रफा-दफा कराया। चार दिन बाद रंगराव शहर लौट आया।

'गाँव में क्या हुआ बेटा?' रंगराव की माँ ने प्रश्न किया।

'माँ कुछ भी नहीं, छाया की शादी नहीं हो सकती।'

उसी दिन रंगराव ने वर को पत्र लिखा कि कुछ अनिवार्य कारणों से छाया का विवाह आपके साथ नहीं किया जा सकता।

आज तक न तो रंगराव की रघुनाथपल्ली वाली भूमि बिकी है और न उसकी बहन छाया की कहीं सगाई हुई है।

पूसपाटि कृष्णंराजू

अनोखा शिकार

जंगली सूअर का शिकार करके गाँव के कुशल शिकारी घर लौटे। सूर्योदय में अभी विलंब था। युवतियाँ पनघट को जा रही थीं, किन्तु चौपाल के निकट उन्होंने शिकारियों को देखा तो मरे जंगली भैंस के शव के चारों ओर खड़ी हो गईं। खेत पर जाने वाले किसान चलते-चलते शिकार और शिकारियों पर एक नजर डाल कर बढ़ गये। सामने करंज का हरा-भरा पेड़ था। निकट ही एक तालाब था, जिसमें सूर्य का स्वागत करने के लिए कमल खिल रहे थे। बंगार राजा का बड़ा बेटा करंज के पेड़ पर बंदर की तरह उछल-कूद कर दतौन तोड़ रहा था। कुछ लोग सिर पर घड़ा लिये, दतौन चबाते शिकार को ध्यान से देख रहे थे। चौपाल के चबूतरे पर कुँअर लोग उकड़ू बैठे थे। शिकारी कुत्ते खंबों से बाँध दिये गये थे। दीवार के सहारे टिकाये गये भाले धूप में चमक-चमक कर अपनी धार का परिचय दे रहे थे। शिकारी लोग इस तरह बात कर रहे थे, जैसे उन लोगों ने युद्ध-क्षेत्र में विजय-श्री प्राप्त की हो।

'अरे देखो, मुआ कितना मोटा ताजा है। खेत की मूंगफली खा-खा कर कितना तगड़ा हो गया है।' मुँह से दतौन निकाल कर थूकते हुए बंगारी ने कहा।

'बड़े राजा ने इस सूअर से चार गुना तगड़ा सूअर मारा था। उसके दाँत भी इस सूअर से बहुत बड़े थे, उन दिनों मैं उन्हीं के यहाँ काम करती थी। तुझ से क्या कहूँ! उस सूअर का मांस कितना जायकेदार बना था। यह समझ ले कि इस जन्म में वैसा मांस खाने को नहीं मिलेगा
मंगी ने लार टपकाते हुए दीवानखाने की गिरी दीवारों पर दृष्टि

'अरी तू भी अपनी कहे जावे है। मैंने अपनी ससुराल में एक बार राजा साहब की दावत खाई थी। क्या मजेदार भोजन था! राजा के घर का भोजन ही कुछ और तरह का होता है। खाना तो बस राजा लोगों के यहाँ खाते हैं।' चिट्टी बोली।

'अच्छा यह तो बता, तू ने कभी जंगली सूअर का मांस खाया है री?' मंगी ने पूछा।

'ओह हो, जंगली सूअर का मांस तो तुझ अकेली ने खाया है इस गाँव में। घर-घर सूँघती फिरती है। किसी ने कभी एक टुकड़ा दे दिया होगा।' त्यौरियाँ चढ़ाते हुए चिट्टी बोली।

मंगी अधेड़ आयु की महिला है। विवाह से पहले राजा साहब के घर में बर्तन माँजा करती थी। राजा साहब की बैठक की दीवारें उसके सामने गिरी हैं। उसने दीवानखाने को ही नहीं, शासन को भी ढहते देखा है। उन दिनों राजा साहब सदैव गद्दी पर बैठते थे। एक कदम चलने से उन्हें बुखार चढ़ता था। आज उन्हींके सुपुत्र सब से मिलते हैं। जिस दिन दीवानखाने की दीवारें गिरी हैं, उसी दिन राजा के वंशजों की बुद्धि पर पत्थर पड़ गये।

दस साल पहले इस गाँव में भयानक आग लगी थी। लगभग पूरा गाँव स्वाहा हो गया था। भग्नावशिष्ट राजमहल का जो भाग इस आग में जल गया था, वह सिंहद्वार कहाने लगा। जिस भाग की दीवारें गिर गई थीं, लोग उसे दीवानखाना या बैठक कहने लगे। चौपाल का अगला हिस्सा बोंकुलु दिब्बा (झूठा टीला) कहलाया। राजा साहब का सारा ठाट बिखर गया। पिछली पीढ़ी के एक मात्र रामभद्र राजू बच गये हैं। आयु होगी अस्सी वर्ष। मंगी अच्छी तरह जानती है कि राजा लोगों का न तो किला बचा और न पुराना ठाट-बाट, किन्तु आज मरें जंगली सूअर को देख कर उसे वह दिन याद आ गया जब कि स्वर्गीय राजा साहब ने उसे पंगत में बिठा कर खूब खिलाया-पिलाया था।

इस राजू वंश के लोग शिकार में दिलचस्पी लेते रहे हैं। शिकार के

लिए कुत्ते पालते रहे हैं। बरछे-भालों पर न जाने कितनी बार धार चढ़ी है। शिकार खेलने का अभ्यास भी किया गया है। इधर कुछ दिनों से यह शौक फिर से चर्राने लगा है। पिछले छह महीने से इस वंश के लोग शिकार की तलाश करते रहे तब कहीं जाकर यह जंगली सूअर हाथ लगा। आजकल मूँगफली का मौसम है। जंगली सूअर पहाड़ से उतर कर मैदान में खेत बरबाद करने लगे। बंगारी का खेत पहाड़ कीं तलहटी में है। सूअरों ने उसकी फसल मिट्टी में मिला दी। इसीलिए तो वह आज आसमान सिर पर उठाये ले रही है।

'अरी तू तो निर्भय हो कर देख रही है। मुझे तो डर लगे है। देखा नहीं जावे है मरा!' एंकी अपनी बगल में गगरी दबाये खड़ी ही हुई थी कि उसने वहाँ अपनी एक सहली से कहा।

'तूभी कैसी पगली है। वह तो मरा हुआ सूअर है, उससे क्या डर। वह तो आँख खोल कर तेरी ओर देख भी नहीं सकता।' सीतालु ने यह बात कही तो सब औरतें हँसने लगीं।

एंकी को देख कर सभी औरतों का मन गुदगुदाने लगता है। स्वभावत: उससे छेड़खानी करने की इच्छा होती है। भरी जवानी है उसकी, जरी की चौडी किनार की साड़ी पहन रखी है, माथे में अठन्नी के आकार का बेंदा लगा हुआ है। जूड़ा तालफल के समान। जब वह अपनी नथ को हिलाती और हाथ से गगरी उछालती हुई मस्त हाथी की तरह इस गली से निकलती है तो कुँअर लोग लम्बे-लम्बे साँस लेने लगते हैं। एंकी जिस खेत या मैदान में घास खोदने चली जाती है, वही उसकी हँसी से गूँजने लगता है। सुन्दर स्त्री अन्य स्त्रियों में ईर्ष्या उत्पन्न करती है। एंकी बहुत देर तक मरे सूअर के पास नहीं ठहरी। लम्बे-लम्बे डग भरती पनघट की ओर चल पड़ी।

रामभद्र राजू को सभी लोग 'बड़े मलिक' कहते हैं। बड़े मलिक के यहाँ जमींदारी नहीं रही, हाथ-पाँवों ने जवाब दे दिया है। लेकिन वे पर ताव देना कभी नहीं भूलते, वे लाठी उछालते चल पड़े। पीछे-पीछे

बिल्ली की तरह चल रहा था। इधर-उधर के समाचर सुना कर राजा साहब का मनोरंजन करता है। बड़े मालिक जवानी में शिकार खेलने में बहुत प्रसिद्ध थे, हिरन भी उनके बराबर नहीं दौड़ सकता था। उन्हीं-के उत्साहित करने पर आज जंगली सूअर का शिकार खेला गया है। स्वर्गीय राजा साहब के बेटों में रामभद्र राजू भीष्म पितामह लगते हैं। बड़े मालिक को देखते ही छोटी जाति के लोग दूर सरक गये। शिकारी कुत्ते पूँछ हिलाने लगे। राजकुमारों ने उठ कर सम्मान प्रकट किया।

'जगन्नाथम्., किस खेत से तुम लोगों ने सूअर का पीछा किया?' बड़े मालिक ने पूछा।

जगन्नाथम् शिकार में छोटे मालिकों का सेनापति है। उसके अपने दो कुत्ते हैं। उनमें से एक जमीन सूँघ कर शिकार का पता लगाता था। शिकार जिस ओर जाता, उस ओर शिकारियों और शेष कुत्तों को भी अपने साथ ले जाता। इस विशेषता के कारण ही सब लोग उस कुत्ते को बहुत चाहते थे।

'एर्रवानी के खेत पर कुत्ते छोड़े गये थे।' जगन्नाथम् ने बड़े मालिक की सेवा में निवेदन किया - 'कुत्तों ने एक घंटे में ही इस जंगली सूअर को घेर लिया था। सब से पहले शंकरम ने इस पर भाला चलाया था।'

'जगन्नाथम, इस बात पर तो विश्वास करने का जी नहीं होता।' बड़े मालिक ने संदेह प्रकट किया।

'एक सूअर बहुत मोटा था। निशाना चूक गया, इसीलिए भाग गया, अन्यथा आपको गड़ी लेकर जंगल में आना पड़ता।' सुदर्शनम ने कहा।

'दादाजी, यह गप्प मारता है। गढ़े में छिपा बैठा था यह। मैंने जब कारण पूछा तो उसने बताया मैं अकेला ही सूअर को भगा लाया हूँ। वह सूअर झाड़ियों में छिपा बैठा है। जोर से मत बोलो अन्यथा भाग खड़ा होगा। झाड़ियों के निकट पहुँचकर मैंने देखा, वहाँ सुअर तो क्या सूअर का बच्चा भी नहीं था।' तातम्म ने कहा।

क्या? सूअर तुम लोगों का प्रहार ओटने के लिए झाड़ियों में

बैठकर प्रतीक्षा करेगा! क्षण भर में भाग जाता है। और यदि सूअर सामने हो जाये तो समझ लो साक्षात् शिवजी भी उसे नहीं रोक सकते।' बड़े मालिक ने अनुभव के आधार पर कहा।

'आप लोग मेरी बात पर विश्वास नहीं करते। तब क्या बताऊँ?' सुदर्शनम ने शिकायत के लहजे में कहा।

'तुम्हारी बात ठीक नहीं है।' बड़े मालिक मूँछ पर ताव देते हुए चौपाल के चबूतरे पर बैठ गये, उन्होंने चर्चा छेड़ते हुए कहा-'शिकार के पाँव छोटे मालूम होते हैं।'

'छोटे पाँवों से क्या होता है। उसका वजन तो देखिये दादाजी! चार आदमी नहीं ला सके! ढोते-ढोते हमारे कन्धे रह गये।' शंकरम ने शिकार की गुरुता बतानी चाही।

'अच्छा, जो होना था सो हो गया। नाई और धोबी को तो सूचना भेज दी है न?'

'अब देर क्यों की जा रही है। जरा सहारा लगाओ भाई। इसे चौपाल में ले चलो।' जगन्नाथम ने आगे का काम बताया।'

नाई तविटिय्या और धोबी बोडिगाड्डु पहुँच गये। उनके हाथों में तेज धार वाले छुरे थे।

सुदर्शनम, तातम्मा, बंगारम और नाई तविटिय्या सूअर को उठा कर चौपाल के पिछवाड़े पहुँचे। वहाँ उन्होंने बरामदे में बिछी चटाई पर वह सूअर पटक दिया।

बोडिगाड्डु, तविटिय्या, सुदर्शनम और जगन्नाथम ने पन्द्रह मिनट में सूअर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

'डाक्टर का हिस्सा उनके घर भिजवा दो।' बड़े मालिक स्नान के पश्चात् साफ-सुथरे कपड़े पहने चौपाल में दाखिल हुए। उन्होंने भीतर आकर लड़कों से कहा।

तविटिय्या ने चटाई पर हिस्से किये और फिर हरेक का हिस्सा ताड़ के पत्तों में बाँधा। गाँव के सभी प्रतिष्ठित लोग अपना-अपना हि

गये। घंटे भर पहले चौपाल में मेला लगा हुआ था, किन्तु अब वहाँ एक भी आदमी नहीं था।

गाँव के छोटे - बड़े सभी राजुओं ने सूअर का मांस बड़ी प्रसन्नता से खाया। खा - पीकर विश्राम किया। दोपहर में पाठशाला के लड़के चौपाल में निर्भय खेलते रहे। सन्ध्या को चार बजे के लगभग लोग जमा होने लगे। बड़े मालिक भी आये।

कल की शिकार के बारें में बात होने लगी। बड़े मालिक ने अपने अनुभव सुनाने शुरू किये। बड़े मालिक का विश्वासपात्र वेंकड्डू दो नवागन्तुकों के साथ पहुँच गया। एक नवागंतुक ने बड़े मालिक को नमस्कार किया। मालिक ने नमस्कार का उत्तर देते हुए प्रश्न किया - 'वेंकड्डू, ये लोग कौन हैं ?'

'पहाड़ की तहलटी में गोल्लपालेम गाँव है न, ये लोग उसी गाँव में रहते हैं, महाराज!'

'महाराज, मेरा नाम चन्द्रायड्डू' है। श्रीमान मुझे भूल गये हैं। आप जब हमारे यहाँ शिकार खेलने आये थे तो मैंने श्रीमान को ताड़ के पत्ते काट कर दिये थे।'

'ओह, तुम चन्द्रायड्डू हो ? तुम्हारे बाप अप्पिगाड्डू कुशल से हैं न ?' चंद्रायड्डू को पहचान कर मालिक ने कुशल - प्रश्न किया।

'नहीं श्रीमान, गत वर्ष मूँगफली की फसल के अवसर पर उनका देहान्त हो गया।' चंद्रायड्डू ने दुःखी स्वर में उत्तर दिया।

'हाँ, उनकी आयु भी बहुत हो चुकी थी। आयु में मुझसे बड़े थे। मैं भी लाठी के सहारे चलता हूँ। कुछ अधिक चलना पड़े तो थक जाता हूँ।'

'सरकार आपकी कृपा चाहिए।'

'क्या बात है। बताओ।' बड़े मालिक ने आश्वासन देते हुए कहा।

'भूल हो गई मालिक, आपके घर के राजकुमारों ने मेरा घर उजाड़

'हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? हमने क्या किया?' बीच में टोकते हुए जगन्नाथम ने कहा।

'मेरे भाई को सूअर पालने का शौक है। उसकी हठ के कारण पर-साल मैंने एक सूअर खरीद दिया था। वह सूअर कल घर नहीं लौटा। उसके लिये मैंने सारे खेत छान डाले। फिर मैंने सोचा संभवतः वह घर लौट गया हो, किन्तु मुझे मार्ग में पता चल गया कि आपके राजकुमारों ने वह सूअर मार डाला है और उसका शव अपने साथ ले गये हैं! तीन दिन पहले ही धोबी ने सत्तर रुपये में खरीदना चाहा था, किन्तु भाई ने नहीं बेचा। मेरी बात भी अनसुनी कर गया। जब मैं खेतों में सूअर की खोज कर रहा था, लोगों ने मुझे पूरी खबर सुनाई। जब ये लोग उसका शव लादे चले आ रहे थे, तब भी मैंने देखा था सरकार, किन्तु कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। मैं राजकुमारों से कैसे पूछता! पूछता तो ये लोग मेरी हत्या कर देते महाराज! दया कीजिये।' चंद्रायड्डू ने आँखों में आँसू भर कर निवेदन किया।

'अरे हमने तो जंगली सूअर का शिकार किया है। तुम उसे अपना पालतू सूअर बताते हो! इतनी हिम्मत कैसे हुई तुम लोगों को?' चंद्रायड्डू की आँखों में घूरते हुए शंकरम बोला।

'नहीं' महाराज। मुझे भूदेवी की शपथ। मैं अपने भाई के सिर पर हाथ रख कर कहता हूँ।'

'अभिनय मत करो हमारे सामने। इसे तो लातों से जवाब देना पड़ेगा। हमें मूर्ख बनाता है।' जगन्नाथम गरज उठा।

तातम्म नाटक के अभिनेता की तरह उठ खड़ा हुआ। उसने चंद्रायड्डू के गाल पर जोर से थप्पड़ मारा, जैसे पटाका चला हो।

'कुमारों ने मुझे मार डाला सरकार!' चंद्रायड्डू भूमि पर गिरगया।

पनघट पर जाने वाले वहीं रुक गये। ढोर जंगल से लौट रहे थे।

बड़े मालिक धीरे-धीरें चबूतरे से उतर आये। चंद्रायड्डू को

कर अपने साथ भीतर ले गये। उसके हाथ में पचास रुपये के नोट रखते हुए बोले - 'अब तुम घर चले जाओ।'

बड़े मालिक उसके साथ चौपाल में आये। कुँअर लोग क्या बोलते? स्तब्ध देखते रह गये।

'मुझे पहले ही सन्देह था। मुझे जंगली सूअर का एक चिह्न भी दिखाई नहीं दिया। तुम लोग कितने निकम्मे हो; शिकार खेलना नहीं जानते। तुम लोगों ने राजू वंश में जन्म लिया और खाया पालतू सूअर!' इतना कह कर बड़े मालिक तालाब की ओर चले गये।

'सन्देह तो मुझे भी था, भाई!' जगन्नाथम ने पाँव सीधे करते हुए कहा।

एक-एक करके दस मिनट में सब चले गये। चौपाल फिर सूनी हो गई।

एंकी टोकरा भर घास उठाये मटकती-मटकती चली गई। चिट्टी, मंगी, नरसी अपनी-अपनी गगरी लिये पनघट पर पहुँच गईं।

'मंगी बुआ, सुना तुमने, रात को कुँअर लोग जो सूअर लाये थे, वह जंगली नहीं था, पालतू था पालतू। वह भी चंद्रायड्डू का पालतू सूअर। बड़े मालिक का नौकर वेंकड्डू है न, उसी ने बताया है।' एंकी ने कहा।

'अरे रे, कैसा मजाक है यह!' मंगी ने दाँतों तले उँगली दबाते हुए कहा।

'अरी ये कुँअर लोग पालतू सूअर को नहीं मारेंगे तो क्या करेंगे? ये लोग जंगली सूअर का शिकार करना थोड़े ही जानते हैं?' नरसी ने मुस्कुराते हुए कहा। एंकी भी सिर खुजाती गाँव में चली गई, जैसे सारी बात समझ में आ गई हो।

नंदगिरि वेंकटराव

रंभा

'मेम साहब हैं?'

'जी हैं। अभी आई हैं।'

'अच्छा, यह चिट तो पहुँचाओ।'

चटर्जी ने चाँदी की सुन्दर डिबिया में से परिचय पत्र निकाल कर नौकर के हाथ में थमाया। नौकर लम्बे-लम्बे डग भरता भीतर चला गया। चटर्जी ने अपनी कार में बैठे-बैठे मकान को ध्यानपूर्वक देखा। चटर्जी ने सोचा था नलिनीदेवी का निवास-स्थान बहुत भव्य होगा। वही नलिनीदेवी जो अपने रूप-लावण्य, अभिनय-कौशल और कंठ-माधुर्य से पूरे देश को मंत्रमुग्ध किये हुए है। युवक लोग जिसके गाये हुए गीतों को उसी श्रद्धा से गाते हैं, जो श्रद्धा मंत्र पढ़ते समय वेदपाठी ब्राह्मणों में देखी जाती है। चटर्जी का विचार था कि प्रथम श्रेणी की अभिनेत्री माधुरी की भाँति नलिनी भी वैभव का जीवन व्यतीत करती होगी। किन्तु यह क्या! छोटा-सा आँगन, मामूली-सा घर और साधारण-सा नौकर। इन सब को देख कर चटर्जी विस्मित हुए बिना नहीं रहे। उन्होंने जैसे ही दीवार में लगे काले पत्थर पर तेलुगु लिपि में सफेद अक्षरों में नलिनीदेवी का नाम पढ़ा, तो एक-एक घटना याद आने लगी। उसकी कला-साधना, प्रभावशाली व्यक्तित्व और सबसे बढ़ कर उसका देश-प्रेम।

नौकर शीघ्र ही लौट आया। मोटर का दरवाजा खोल कर वह बगल में खड़ा हो गया। बोला - 'आइये, भीतर चलिये।'

चटर्जी मोटर से उतर कर भीतर गये। दीवारों से सटा कर रखे गये पौधे हरे-हरे पत्तों से शोभित हो रहे थे। कलात्मक ढंग से जमा

शिलाओं के दोनों ओर एक विशेष जाति के श्वेत पुष्प खिले हुए थे। बरामदे में दरवाजे के दोनों ओर बेंत की कुर्सियाँ बिछी थीं। एक संगमर्मर की तिपाई पर स्वर्ण की भाँति चमकने वाले गमले में सुन्दर पौधा लगा हुआ था। नौकर ने दरवाजे की ओर संकेत करते हुए कहा - 'आप यहाँ बैठिये। मेमसाहब नहा रही हैं, अभी आती हैं।' दरवाजे पर हाल ही में वार्निश की गई थी, इसीलिए चमक रहा था।

कमरे की गैरमामूली सफाई ने चटर्जी का ध्यान आकर्षित किया। दीवारें साफ और सुन्दर। बाईं ओर की फुलवारी पर दृष्टि गई तो एक बड़ी खिड़की दिखाई दी। पीले रंग का पर्दा गिरा था। खिड़की के बीचों-बीच एक पिंजरा लटक रहा था। उस पिंजरे में एक तोता था। तोते के गले में लाल रंग की रेखा थी। वह अमरूद का टुकड़ा खा रहा था, सामने दीवार के बीचों बीच सफेद चौखटे में आन्ध्र के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री दामेर्ल रामराव द्वारा चित्रित नटराज का चित्र था। चित्र में तीन रंगों का प्रयोग हुआ था। दाँईं ओर चित्रकार भगीरथ द्वारा अंकित सूर्यास्त का दृश्य है। दीवार से सट कर डेढ़ गज चौड़े सफेद गद्दे बिछे हैं और उन पर मखमल के तकिये लगे हैं। बीचों बीच एक सुन्दर कालीन है। कालीन पर छकोनी पीढा है, जिस पर नक्काशी का काम है। इस पीढे पर दूधिया पत्थर की तीन फुट ऊँची राधा की मूर्ति है। राधा नृत्य की भंगिमा में अंकित की गई है।

चटर्जी ने यह सब देखा तो निश्चेष्ट दरवाजे पर ही खड़े रह गये। कुछ क्षण पश्चात् राधा की मूर्ति के निकट गये और कालीन पर बैठ कर उस मूर्ति को ध्यानपूर्वक देखने लगे।

भीतर दरवाजे से नलिनी प्रवेश किया। स्नान के पश्चात् उसने माथे पर कुंकुम लगा रखा था। उस समय वह केसरिया रंग की बारीक साड़ी पहने हुई थी। ढीला होने के कारण जूड़ा गले तक आ गया था। चटर्जी की ओर देखते हुए उसने कहा - 'नमस्कार, क्षमा कीजिये। विलम्ब

चटर्जी ने उत्तर में खड़े होकर नमस्कार किया। वह पच्चीस वर्ष की युवती सफेद गद्दे पर एक-एक कदम रखते हुए आगे आई। उसने अपनी चप्पलें दरवाजे पर ही छोड़ दी थीं। चाल में काव्य की मधुरता समाई हुई थी। चटर्जी के सामने आकर वह मुलायम तकिये के सहारे बैठ गई। बोली-'प्रतीत होता है, आप इस मूर्ति को देखने में तल्लीन हो गये थे। आपको भला यह मूर्ति क्या पसंद आएगी, जब कि आप इससे भी हजारों गुना अच्छी मूर्ति बना सकते हैं।'

'मैं तो प्लास्टर से मूर्ति बनाता हूँ, किन्तु एक बात कहे देता हूँ, प्लास्टर में इतनी सजीवता लाने के लिए बहुत कुशलता चाहिए। मैं पन्द्रह वर्ष की आयु से मूर्ति बनाने लगा था। तब से अब तक पिछले पन्द्रह वर्षों में मैंने इस कला की साधना की है, फिर भी इस मूर्ति के निर्माता से मैं बहुत-सी बातें सीख सकता हूँ?'

'इस मूर्ति के रचयिता को कौन जानता है? दो वर्ष पूर्व मैं श्रीशैलम गई थी। वहाँ एक वटवृक्ष के नीचे कोई पहाड़ी लड़की मैले से कपड़े पर कई मूर्तियाँ जमाये बैठी थी। मैंने दो सेर चाँवल में यह मूर्ति खरीदी थी।

'कलकत्ता शहर में कोई भी कलाप्रेमी व्यक्ति इस मूर्ति के लिए दो हजार रुपये खर्च कर सकता है। हिंदोल नृत्य को पत्थर पर अंकित करना सरल नहीं है। उसके लिए असाधारण प्रतिभा चाहिए। उस अज्ञात कलाकार ने उस नृत्य की ऐसी भंगिमा अंकित की है कि पत्थर में प्राण पड गये हैं। वह शिल्पी वंदनीय है।'

'आपकी मूर्तियाँ किस प्रान्त में' बिकती हैं?' नलिनी ने पूछा।

'बंगाल में ही अधिक बिकती हैं। हाँ, पिछले साल बम्बई में कला की प्रदर्शनी हुई थी, उसमें सोलह मूर्तियाँ बिक गईं। शिमला में वाइसराय-भवन को सजाने के लिए मेरी दो मूर्तियाँ मँगाई गई हैं। इस वर्ष बम्बई में जो प्रदर्शनी होगी उसमें प्रथम पुरस्कार पाने के लिए मैं दिन-रात परिश्रम कर रहा हूँ। इस कार्य में मुझे आपकी सहायता चाहिए! मैं कलकत्ता से यहाँ, आया हूँ।'

'आज्ञा दीजिये। मैं अपकी क्या सेवा कर सकती हूँ?'

'आपने 'मोहिनी' नामक फिल्म में अभिनय किया था उस खेल ने सारे बंगाल को मुग्ध कर दिया। दरबारी कानडा प्रस्तुत करते हुए आपने जो भंगिमाएँ प्रदर्शित की थीं, मैं उन्हें अपनी कृतियों में व्यक्त करना चाहता हूँ। इस राधा की मूर्ति के अनुकरण पर उन मूर्तियों का निर्माण करूँगा। वे मूर्तियाँ प्रदर्शनी में भेजूँगा।'

चटर्जी ने अपनी जेब में से फिल्म का एक टुकड़ा निकाल कर दिया। नलिनी उसे प्रकाश में देखन लगी।

'केवल चित्र के आधार पर मूर्ति गढ़ना सरल कार्य नहीं है। यदि आप आपनी सुविधा से कुछ दिनों तक प्रतिमा की भाँति मेरे सामने खड़ी रहें तो मेरी बहुत सहायता होगी। इसी आशा से मैं कलकत्ता से आया हूँ।'

चटर्जी ने जेब से स्वर्ण निर्मित सिगरेट-केस निकाल कर नलिनी के सामने रख दिया। बोला- 'लीजिये।'

नलिनी ने हाथ जोड़ कर सविनय कहा-' सिगरेट पीने की आदत नहीं है।'

'क्षमा कीजिये' - कह कर चटर्जी ने अपनी सिगरेट जलाई। नलिनी ने चटर्जी की वेश। भूषा पर दृष्टि डाली - चमकती हुई सुन्दर कालर और टाई, अच्छी इस्त्री किया हुआ सिल्क का कोट, मूल्यवान अँगूठी कि जिसे देख कर आँखें चौंधिया जाएँ। कीमती छड़ी। नलिनी इन सब चीजों को एक ही दृष्टि में देख गई। उसने दरवाजे पर नजर डाली तो अच्छे चमड़े के काले जूते दिखाई दिये। चटर्जी भी भाँप गये कि नलिनी उसके वस्त्र आदि का निरीक्षण कर रही है।

'देखने से नहीं मालूम होता कि आप कलाकार हैं।'

'जी हाँ, कलाकार सामान्यतः दरिद्रता से घिरा रहता है किन्तु मैं इस अभिशाप से बचा हुआ हूँ।'

'धनी आदमी कला की उपासना करे, आश्चर्य है।'

चटर्जी हँस पड़ा। बोला-'अच्छा बताइये, आप मेरी मूर्ति के समय देंगी। दिन में एक बार आधा घण्टा दे सकें, तो काम बन

जाएगा। मैं एक घण्टे के लिए तीन सौ रुपये पुरस्कार दे सकता हूँ।'

'क्षमा कीजिये, मुझे अवकाश नहीं है।'

'क्यों? क्या अधिक चाहिए। पाँच सौ रुपये ले लीजिये।'

'मैं केवल धन को महत्व नहीं देती। धन कमाना चाहती तो मैं बम्बई चली जाती। धन के साथ-साथ यश भी मिलता।'

'तब आप मेरी सहायता क्यों नहीं करना चाहतीं?'

'यदि आप कारण न पूछें तो बहुत कृपा होगी।'

नलिनी खड़ी हो गई। चटर्जी भी विवश खड़ा हो गया।

'शीघ्रता मत कीजिये। मैं एक मास तक इसी नगर में रहूँगा। आप मेरा परिचय-पत्र रखिये। यदि आपका विचार बदल जाए तो मुझे सूचित कर दीजिए। मैं सफल हो जाऊँगा। नमस्कार!'

मोटर चली गई तो नलिनी ने परिचय-पत्र देखा। ओह ये सज्जन स्पेन्सर होटल में ठहरे हैं। उसने परिचय-पत्र फाड़ कर बाहर फेंक दिया।

[२]

नलिनी एक फिल्म में काम कर रही है।

आज सवेरे से ही अभिनय करती रही। बेचारी थक गई। चार बजे लगभग स्टूडियो से बाहर निकली। मोटर तैयार खड़ी थी। वह मोटर में बैठी ही थी कि द्वार के निकट छाया में खड़ा एक बीसेक वर्ष का युवक हाथ मलता नलिनी की कार की ओर बढ़ा। युवक ने कुछ बोलना चाहा, किन्तु मुँह से आवाज़ नहीं निकल सकी। बस, हथेली मलता और ओठ चबाता खड़ा रहा। युवक के बाल इधर-उधर बिखरे हुए थे, कपड़े भी अस्त-व्यस्त थे। चेहरा फीका, कान्तिहीन। यह सब होते हुए भी वह भिखारी प्रतीत नहीं हुआ। आँखों में कान्ति थी। प्रतीत होता था, जैसे कलाकर हो। नलिनी ने क्षण भर उसकी ओर देखा। उसे गुमसुम खड़ा देख कर नलिनी ने प्रश्न किया-'कौन हो तुम? क्या चाहते हो?'

उस युवक ने प्रयत्न करके अपना सिर उठाया। उसके नेत्र डबडबा दीनता के साथ बोला-'आप एक मास तक मेरे सामने प्रतिमा की

बैठ सकती हैं?' कुछ क्षणों तक वह फिर ओठ चबाता रहा। फिर कहने लगा - 'आपको देने के लिए मेरे पास पैसा नहीं है। कनकगिरि के राजा ने रंभा की मूर्ति बनाने के लिए बीस हजार रुपये के पुरस्कार की घोषणा की है। यदि वह पुरस्कार मुझे मिल गया तो आप जितना चाहें, ले लीजिये। चाहें तो आप पूरे रुपये रख सकती हैं।'

'तुम मूर्तिकार हो?' नलिनी ने प्रश्न किया।

'जी हाँ, प्लास्टर से मूर्ति बनाता हूँ।'

नलिनी कलाकार के मुँह की ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी रही।

'आप मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगी?' कलाकार का निचला ओठ फड़क उठा। आँखों में आँसू भर आये।

नलिनी मोटर का दरवाजा खोल कर दूर सरक गई। 'भीतर आ जाइये।'

'मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी?' कलाकर ने अपार हर्ष के साथ पूछा।

'सोचना पड़ेगा। पहले आपकी चित्रशाला तो देखूँ। ड्राइवर को रास्ता बताइये, कहाँ चलना है।'

मोटर में बैठ कर कलाकार ने ड्राइवर को मार्ग बताया। जब मोटर चलने लगी तो मूर्त्तिकार ने पीछे सरक कर नलिनी की ओर देखा। नलिनी की रेशमी साड़ी, भुजाओं पर कुहनी तक चोली और गालों पर मेकप की लालिमा देख कर कलाकार ने अपनी कालर ठीक की।

उसकी इस चेष्टा को देख कर नलिनी मुस्करा दी।

'आपका नाम?'

'किशोर।'

'बंगालियों के अनुकरण पर आपका नाम रखा गया है?'

'मेरे पिताजी ने प्यार से यह नाम रखा था।'

कई गलियाँ पार करके मोटर एक दोमंजिले मकान के सामने रुक गई। पुरानी खिड़कियों को पार करने के बाद दूसरी मंजिल के एक कमरे ेर दाखिल हुआ, उसने खिड़कियाँ खोल कर नलिनी को भीतर

बुलाया चारपाई पर फैली हुई पुस्तकें हटा कर धूल पोंछी और नलिनी के बैठने योग्य जगह बना दी। नलिनी ने कमरे में चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। सारा कमरा कूड़े करकट से भरा था। पेन्सिल से खींचे हुए अनेक चित्र इधर - उधर पड़े थे। इन चित्रों में कोई तो कृष्णदेवराय का था, कोई तिक्कन्ना का और कोई वरूथिनी का। कोई चित्र अधूरा था और कोई पूरा हो चुका था।

'आप इसी कमरे में रहते हैं ?'

'जी हाँ, क्षमा कीजिये, कल आपके आने से पहले कमरा साफ कर दूँगा।' किशोर फलक पर कागज लगाने में तल्लीन हो गया। नलिनी खड़ी हो गई और इधर - उधर पड़े चित्रों को देखती हुई टहलने लगी। खिड़की के निकट कपड़े से ढकी हुई एक मूर्ति दिखाई दी। उसने मूर्ति के पास पहुँच कर कपड़ा हटा दिया। वह अहल्या की मूर्ति थी। कटि पर अहल्या ने जहाँ हाथ रख रखा था, वहीं मकड़ी ने जाला बुन दिया था। नलिनी ने मूर्ति की धूल साफ की। अहल्या के बगल में ही रानी रुद्रमदेवी की मूर्ति थी। नलिनी ने उसकी भी धूल झटकी। उस कतार में जितनी मूर्तियाँ थीं, बारी - बारी से सभी की धूल हटा दी। खाट पर पड़ी पुस्तकों की धूल झाड़ कर उसने उन्हें सलीके से जमा दिया।

'आप खड़ी हो सकती हैं।'

किशोर फलक के पास पेन्सिल लिये तैयार खड़ा था। किशोर की बात सुन कर नलिनी कुछ चौंक गई। उसके हाथ में इस समय भी धूल झटकने का मैला कपड़ा था। नलिनी कुछ लजा गई। मैला कपड़ा फेंक कर वह खाट पर बैठ गई।

'आज बहुत थक गई हूँ। कल से खड़ी रहूँगी।'

'अच्छा! ऐसा ही सहीं। कल आप अवश्य आएँगी न ?'

'यह आपको कैसे पता चला कि रंभा की मूर्ति के लिए राजा तुम्हें ही पुरस्कृत करेगा ? और भी बहुत से कलाकार हैं। भारत के अनेक मूर्तिकार उस प्रतियोगिता में सम्मिलित होंगे।'

'वह पुरस्कार मुझे मिलेगा, अवश्य मुझे मिलेगा। आप एक मास तक मेरे लिए कष्ट उठाइये। यदि किसी कारण से मुझे राजा साहब ने पुरस्कृत नहीं किया तो आप विश्वास कीजिएगा कि मेरे जीवन की यह अंतिम पराजय होगी। मेरी आकांक्षा का भवन धराशायी हो जाएगा।'

नलिनी ने कलाकार के मुख को परखना चाहा। बोली - 'अच्छा, मैं अभी चाय बनाये देती हूँ।'

किशोर ने ट्रंक के पीछे से स्टो निकाला और उसे जलाने का प्रयत्न करने लगा। उसकी तल्लीनता पर नलिनी हँसने लगी। स्टो प्रयत्न करने पर भी नहीं जला। देखा तो पता चला स्टो में तेल ही नहीं है।

नलिनी खिलखिला कर हँस दी। किशोर ने सिर उठा कर उसकी ओर ताका।

'तुम्हारे जैसे कला के उपासक केवल हवा पर जी सकते हैं। देखिये, कोयल आम के नव पल्लव पर जीवन बिताती है। किन्तु मैं तो कलाकार नहीं हूँ। चलिये, कहीं कुछ खा आयें।'

किशोर नलिनी के साथ चला गया। चलते समय वह दरवाजे पर ताला लगाना भूल गया। नलिनी ने याद दिलाया।

[३]

दूसरे दिन दोपहर में ठीक दो बजे नलिनी किशोर के यहाँ पहुँची। आज किशोर ने प्रातःकाल ही कमरा साफ कर दिया था। कमरा साफ करके उसने दाढ़ी बनाई थी। नहा-धोकर कपड़े बदले। उसके पास केवल चार रुपये बचे थे। इन रुपयों से उसने चित्र का कागज तथा अन्य आवश्यक सामग्री खरीदी। जैसे ही नलिनी कमरे में आई, किशोर फलक के पास चला गया। बोला - 'जाइये, इस परदे के पीछे कपड़े उतार आइये।'

नलिनी चौंक पड़ी। उसने किशोर की ओर देखा, वह बड़े उत्साह तैयारी में लगा हुआ था।

किशोर ने बोर्ड के निकट पहुँच कर एक तिपाई लगाई। उस पर

एक सफेद तौलिया बिछा दिया। फिर उसने नलिनी की ओर देखते हुए कहा - 'उठिये, आप तो देर कर रही हैं।'

नलिनी ने किशोर की आँखों में देखा। उसकी आँखों से भोलापन प्रकट हो रहा था। नलिनी को प्रतीत हुआ, जैसे वह भावनाओं में खो चुका है। धीरे-धीरे वह पर्दे के पीछे चली गई। कुर्सी पर बैठ कर उसने अपने सारे कपड़े उतार दिये और फिर उसने वहाँ रखे हुए एक काले कपड़े से अपनी गोरी देह ढँक ली। कण्ठ और कमर के पास उसनें कपड़ा कुछ कस कर पकड़ा था। धीरे-धीरे बोर्ड के पास आकर खड़ी हो गई।

'उस स्टूल पर खड़ी रहें .... आ .... मेरी ओर घूमिये। मुँह को खिड़की की ओर ले जाइये। .... आ .... बस, इसी तरह .... अब उस काले कपड़े को हटा दीजिये।'

नलिनी ने उस कपड़े को अपने शरीर के अधिक निकट करते हुए किशोर को देखा। उसे प्रतीत हुआ, इस बार किशोर भी कुछ संकोच अनुभव कर रहा है।

'ऊँ .... कपड़ा हटा दीजिये।'

नलिनी ने साहस करके सिर ऊपर उठाया और फिर आँखें बन्द कर धीरे से कपड़ा छोड़ दिया।

'ओह, कितना अद्भुत है, कैसी सुन्दरता है! सिर मत हिलाइयेगा।'

किशोर ने दस मिनट लिये होंगे। पेन्सिल से चित्र तैयार कर लिया। फिर प्लास्टर को मूर्त्ति में बदलने लगा। नलिनी अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से किशोर की ओर देखने लगी। और किशोर रह-रह कर नलिनी की देह पर दृष्टि डालता और अपने काम में लग जाता। किशोर ने जब प्लास्टर की मूर्त्ति की भुजाएँ तैयार कीं और उन भुजाओं पर हाथ फेरने लगा तो नलिनी ने अनुभव किया जैसे वह उसकी भुजाओं को छू रहा है। जिस समय किशोर नलिनी की देह का अवलोकन करते हुए मूर्त्ति के अव

सुगठित करने लगा तो नलिनी पुलकित हो गई। उसने देखा - मूर्त्तिकार उसके शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म विशेषता को मूर्त्ति के अवयवों में व्यक्त कर रहा है तो प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। नलिनी की सुन्दर देह देख कर भी किशोर के मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ, किसी प्रकार की उद्विग्नता दिखाई नहीं दी। वह शान्त मन से मूर्ति बनाने में तल्लीन था। नलिनी ने अनुभव किया, जैसे किशोर मनुष्य न होकर देवता है। हाथों में गोलाई लाने के बाद कलाकार जाँघ बनाने लगा। नलिनी की जाँघों को देख-देख कर किशोर मूर्ति की जाँघों को भी सुन्दर से सुन्दर बनाता जा रहा था। नलिनी इस समय लजा गई और उसने एक कपड़े से अपना शरीर ढँक लिया।

किशोर चकित हो गया, अपलक देखता रहा।

'क्या बात है, इतनी जल्दी!'

'बस कीजिये, अब मैं खड़ी नहीं रह सकूँगी। बहुत थक गई हूँ।'

नलिनी तेजी से पर्दे के पीछे चली गई। कपड़े पहन कर क्षण भर बैठी रही। जब वह जाने लगी, तो दरवाजे पर किशोर खड़ा था। उसने पूछा - 'कल इसीं समय आएँगी न?'

'अवश्य! क्यों नहीं?'

दूसरे दिन से नलिनी उस समय तक आँखें बन्द किये स्टूल पर खड़ी रहती थी, जब तक किशोर उसे बैठने को न कहता।

बीस दिन बीत गये। देखने वाला यही कहेगा कि मूर्त्ति तैयार हो गई है, किन्तु वास्तविकता यह थीं कि उस मूर्त्ति में प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। किशोर का विचार है कृति को सजीव बनाने में ही कला की सफलता है। इन बीस दिनों में किशोर और नलिनी का परिचय घनिष्ट होता गया। किशोर का पिता धनी था। बचपन से ही किशोर कला से प्रेम करने लगा। पढ़ाई में उसका मन नहीं लगा। पिता को यह बात पसंद नहीं आई। इसीलिए किशोर घर से भाग खड़ा हुआ। तब से अब तक अनेक प्रकार का सामना करते हुए कला की आराधना करता आया है।

नलिनी जब बच्ची ही थी, उसके पति का देहान्त हो गया था। ससुराल बहुत धनी था, किन्तु वहाँ का पैसा उसे नहीं मिला। पीहर में केवल माँ थी, उसका भी जल्दी देहान्त हो गया, तब उसने फिल्मों में अभिनय करना प्रारंभ किया। धीरे - धीरे उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति अभिनय - कला की आराधना में लगा दी। आन्ध्र में उसे कम पैसा मिलता था, फिर भी बम्बई या अन्यत्र किसी खेल में अभिनय करने नहीं गई। वह आन्ध्र प्रदेश में अभिनय - कला का विकास करना चाहती थी।

एक दिन दोपहर के समय नलिनी किशोर के कमरे पर पहुँची। उसने देखा दरवाजे पर लोगों की भीड़ लगी हुई है और कमरे में शोर मचा रहा है। उसने भीतर जा कर देखा, किशोर उदास मुँह किये कोने में बैठा है। उसने नलिनी को देखा तो मारे लज्जा के सिर झुका लिया। कोई सरकारी आदमी आराम कुर्सी पर बैठा सिगार पी रहा था। उसके हाथ में कागजों का पुलिंदा था। नलिनी समझ नहीं पाई कि आखिर मामला क्या है। उसने किशोर के निकट जाकर उसकी भुजा पर हाथ रखा। प्रश्न किया - 'बता क्या है किशोर?' किशोर ने उत्तर में अपनी दोनों हथेलियों से मुँह छिपा लिया।

बात सरकारी अदमी ने बताई - 'किशोरने एक मारवाड़ी से दो सौ रुपये उधर लिये थे। ब्याज और असल मिला कर पाँच सौ हो गये। मारवाड़ी ने दावा कर दिया। अदालत ने गिरफ्तार करने का वारंट काटा है।'

'मरवाड़ी के रुपये मैं दूँगी। आप मेरें साथ चलिये।'

कमरे में बैठा मारवाड़ी सरकारी कर्मचारी के साथ खड़ा हो गया। किशोर आश्चर्यचकित देखने लगा, देखता ही रह गया।

उस समय नलिनी के पास पाँच सौ तो बड़ी बात पाँच रुपये भी नहीं थे। सोचने लगी - क्या करूँ? कहाँ से रुपया लाऊँ? मेरे पास कोई ऐसी चीज भी तो नहीं जिसे बेच कर यह कर्ज चुका दूँ। कुछ क्षण बाद वह किसी निश्चय पर पहुँच गई।

मारवाड़ी और सरकारी कर्मचारी को अपने घर उतार कर व स्पेन्सर होटल पहुँची। चटर्जी के पास अपना परिचय - पत्र भेजा

रेशमी चोगा पहने, मुँह में सिगरेट दबाये बाहर आये। विनम्रता के साथ आदरपूर्वक नलिनी को कमरे में ले गये।

'मैं जानता था, आप अपना विचार अवश्य बदलेंगी और मेरी सहायता के लिए आएँगी।'

'मैं एक शर्त पर आपकी कृति के लिए अनुकार्य बन सकती हूँ।'

'क्या शर्त है?'

'कनकगिरि के राजा ने रंभा की मूर्ति बनाने के लिए प्रतियोगिता अयोजित की है। इस प्रतियोगिता में आप भाग नहीं लेंगे।'

'मैं बड़ी प्रसन्नता से यह शर्त पूरी करूँगा।' उसने मेज के खाने से एक हजार के नोट नलिनी के हाथ में थमा दिये। बोले- 'आपका अधिक समय नहीं लूँगा। दस दिन तक आधा-आधा घंटा बैठने से काम चल जाएगा।'

'संध्या के पाँच बजे आऊँगी।'

'ठीक है।'

नलिनी ने घर पहुँच कर मारवाड़ी को पाँच सौ रुपये चुका दिये। मारवाड़ी को बिदा करने के बाद उसनें सोचा, किशोर आज सवेरे से भूखा होगा। नलिनी ने तुरन्त भोजन तैयार किया। तोशादान में भोजन लेकर किशोर के पास पहुँची। कमरे का दरवाजा खुला था, किन्तु किशोर सामने दिखाई नहीं दिया। उसने भीतर जाकर देखा। किशोर का शरीर खिड़की के नीचे एक पेटी के पास पड़ा था। मुँह से खून बह रहा था। नलिनी ने उसका मुँह साफ किया। उसने किशोर का सिर अपनी जाँघों पर रख लिया और फिर उसे वक्षस्थल से लगाने लगी। कुछ समय बीतने पर किशोर ने आँखें खोलीं। नलिनी ने उसका हाथ दबाते हुए पूछा- 'थोड़ा पानी दूँ?'

नलिनी ने गिलास से पानी पिला कर उसे कुर्सी पर बिठा दिया। किशोर ने क्षण भर धरती की ओर देखा और फिर सिर पकड़ कर रोने लगा।

नलिनी ने धैर्य बँधाया। 'क्यों रोते हो? यदि हम एक-दूसरे की न करें तो न जाने इस संसार का क्या हो?'

'नलिनी, आज तक मैं जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जीवित रहा हूँ, जिस ध्येय को पाने के लिए मैंने अनेक यातनाएँ सही हैं, उसे अब मैं प्राप्त नहीं कर सकूँगा।'

'क्या कहते हो किशोर? मैं तुम्हारी बात नहीं समझ पा रही हूँ।'

'आज तक मैं आपसे एक बात छिपाता आ रहा हूँ। सरसम मेरे मामा की बेटी है। उसके बिना यह संसार मेरे लिए अंधकारपूर्ण है। हमारे सभी संबन्धी इस बात को जानते हैं। मैं मामा की इच्छा के अनुसार जीवन नहीं बिता सका, और कला-साधना में लग गया। मेरे मामा को मेरी कला-साधना बिल्कुल पसंद नहीं है। मैंने इतनी यातनाएँ क्यों सही हैं। इसीलिए तो कि कला द्वारा ही मैं यश तथा धन दोनों प्राप्त करना चाहता था। अपनी कला से संसार को चकित कर देना चाहता था। मेरा विचार था, मैं कला की साधना से ही सरसम को पा सकूँगा। सरसम को अपनी बनाने के लिए मैंने इतनी यातनाएँ सहीं। भूख-प्यास से पीड़ित रहा, किन्तु आज वह कहानी समाप्त हो गई। एक मित्र ने पत्र लिखा है कि सरसम का विवाह किसी बैरिस्टर के साथ हो गया। आज अब मैं इस संसार में क्यों जीवित रहूँ, किसके लिए जीवित रहूँ!'

'किशोर अधीर मत बनो, अपने देश के लिए जीवित रहो। धैर्य धारण करो। अपने देश के मस्तक को ऊँचा करने का दायित्व तुम जैसे युवकों पर है। इतने महान उत्तरदायित्व को भूल कर एक साधारण नारी के लिए अपने को इतना अकिंचन मान बैठना तुम्हें शोभा नहीं देता।'

'देश! देश!! देश के साथ मेरा क्या रिश्ता है? मैंने अपने देश का मस्तक ऊँचा करने के लिए कला की साधना नहीं की। मैंने कला की साधना की है अपने प्रेम से प्रेरित होकर, अपनी प्रेमिका को पाने के लिए।'

नलिनी स्तब्ध रह गई। उसने कभी नहीं सोचा था कि इस कलाकार के हृदय में भी अविचल प्रेम निवास कर सकता है। उसने तुरन्त का सिर अपनी ओर खींचा, फिर अपना मुँह उसके सिर पर र

बोली- 'किशोर नारी में भी हृदय होता है, वह भी किसी को प्रेम कर सकती है।' उसने नेत्र खोल कर किशोर की ओर देखा, फिर बोली- 'मेरे हृदय को खण्ड-खण्ड होने से बचाओ किशोर।'

कुछ क्षण उसने किशोर के उत्तर की प्रतीक्षा की। उसने एक हाथ से किशोर का सिर ऊपर उठाया, दूसरी भुजा उसके गले में डाल दी। किशोर ने उसे आलिंगन में बाँध लिया।

[४]

उस जोड़ी के लिए आठ दिन आठ क्षण की भाँति बीत गये। दोनों में संसार के प्रति विराग था, यह विराग अब अनुराग में बदल गया। नलिनी एक नये प्रकार का आनन्द अनुभव करने लगी। प्रत्येक वस्तु आकर्षक लगने लगी। उसके अभिनय में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। उसका अभिनय देख कर दर्शक चकित हो जाता था। दूसरे मास से उसका वेतन बढ़ा दिया गया।

किशोर भी प्रसन्न रहने लगा। रंभा की मूर्ति तैयार हो गई। मूर्ति को देखने पर ज्ञात होता, जैसे स्वर्गलोक की रंभा साक्षात् पृथ्वी पर अवतरित हुई है। मूर्ति का प्रत्येक अंग जीवन से ओत-प्रोत हो चुका है, फिर भी किशोर उसे अधिक प्रभावशाली बनाने में लगा हुआ है।

प्रतियोगिता में मूर्तियों के लिए तीन दिन बचे हैं। नलिनी ने किशोर को एक रेशमी वस्त्र दिया। किशोर ने उस रेशमी वस्त्र से मूर्ति को ढँक दिया, बोला- 'यह मूर्ति पूरी हो गई। अब मैं कुछ नहीं करूँगा।'

पूर्णिमा थी उस दिन। नलिनी ने सोचा आज रात वह मोटर में बैठा कर किशोर को समुद्र तट के नारिकेल-उपवन में ले चलेगी। वह स्थान सात मील तो है। चाँदनी रात में दोनों वहाँ गन्धर्वों की भाँति विहार करेंगे। दूसरा दिन भी वहीं बिताना चाहती थी। इस यात्रा के लिए नलिनी ने बहुत-सी चीजें एकत्रित कीं। कुछ नई चीजें खरीदीं। सब सामान लेकर वह सन्ध्या को छह बजे किशोर के घर पहुँची। सीढ़ियों पर

हो चुका था। किसी तरह सीढ़ियाँ पार करके वह कमरे के सामने

आई। भीतर से किवाड़ बन्द थे। भीतर बातचीत हो रही थी। किशोर और किसी स्त्री की आवाज़ सुनाई दी। स्त्री का स्वर भीगा हुआ - सा लगा। नलिनी को रोमांच हो आया। हृदय वेग से धड़कने लगा। वह बाहर खड़ी - खड़ी दोनों की बात सुनने लगी।

'जाओ सरसम, तुम चली जाओ। उसी के साथ रहो तुम। वह तुम्हें सुखी रखेगा ?'

'तुम ऐसी बातें करते हो? तुम्हें याद होगा। एक रात तुमने मुझे आलिंगन में समेट कर प्रतिज्ञा की थी कि यदि मैं तुम्हारी नहीं बन सकी तो तुम एक क्षण भी जीवित नहीं रहोगे। अब क्या कह रहे हो? तुममें इतना परिवर्तन कैसे हुआ ?'

'सरसम तुम मुझे पागल मत समझो। मैं तुमसे कोई बात छिपाऊँगा नहीं। मेरे जीवन में एक अन्य नारी प्रवेश कर चुकी है।'

'मैं जानती हूँ। उसके बारे में मुझे आज ही मालूम हुआ। मैं तुम से एक प्रश्न का उत्तर चाहती हूँ, सच - सच बताना, मैं उत्तर सुन कर चली जाऊँगी। क्या तुमने उस नारी को हृदय सौंप दिया है? क्या तुम उसके बिना जीवित नहीं रह सकते ?

नलिनी साँस रोके वहीं द्वार पर किशोर के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगीं। जैसे हत्या का अपराधी न्यायाधीश के निर्णय की प्रतीक्षा करता

'नहीं सरसम! मेरे पास एक ही हृदय है। वह मैंने तुम को दिय था। हृदय एक बार ही दिया जाता है।

नलिनी अपने मुँह में आँचल दबा कर चल दी वहाँ से। बड़ी कठिनाई से वह कार चला सकी। किसी तरह स्पेन्सर होटल में पहुँची।

नलिनी ने परिचय - पत्र नहीं भेजा। वैसे ही चटर्जी के कमरे में चली गई। चटर्जी मेज के पास हरे रंग की रोशनी में लिखने में तल्लीन थे। नलिनी को इस तरह अचानक खड़ा देख चटर्जी आश्चर्य से खड़े हो गये चटर्जी स्वागत में कुछ कहे, इससे पहले नलिनी सोफे पर बैठ गई।

में नलिनी की चमकती आँखों और विशेष प्रकार की मुख-मुद्रा को देखकर चटर्जी स्तब्ध रह गये।

'अचानक यहाँ आने का कारण जान सकता हूँ?'

'राजासाहब की प्रतियोगिता में मूर्ति भेजने के तीन दिन शेष हैं। मैंने आपसे प्रतिज्ञा कराई थी कि आप उस प्रतियोगिता में मूर्ति नहीं भेजेंगे।'

'मैंने वचन-भंग तो नहीं किया।'

'नहीं, आपको उस प्रतियोगिता में भाग लेना पड़ेगा। आप रंभा की मूर्ति गढ़ना इसी क्षण प्रारंभ कीजिये।'

'इसकी मुझे लालसा नहीं है। आपने मना भी किया था।'

'यह नहीं होगा। आपको प्रतियोगिता में भाग लेना होगा।'

'समय भी तो नहीं बचा।'

'मैं रात-दिन चौबीसों घंटे आपके सामने खड़े रहने को तैयार हूँ। आप मेहनत कीजिये। मुझे पारिश्रमिक भी नहीं चाहिए।'

चटर्जी ने नलिनी की आँखों में देखा। मन का भाव क्या है, यह जानने का प्रयत्न किया। नलिनी को यह समझने में देर नहीं लगी कि चटर्जी उस पर सन्देह कर रहे हैं।

'मुझमें जो परिवर्तन देख रहे हैं, उसका एक कारण है। आप किशोर को जानते ही हैं। वे आन्ध्र प्रदेश के प्रसिद्ध मूर्तिकार हैं। मैं चाहती हूँ कि किसी तरह उनकी रंभा को पुरस्कार न मिले।'

'आप यह चाहती हैं कि मुझे राजा का पुरस्कार अवश्य प्राप्त करना चाहिए? पुरस्कृत होने का गौरव मुझे मिले?'

'जी हाँ। एक बार नहीं, सौ बार।'

चटर्जी ने नलिनी को अपने साथ चलने का संकेत दिया। नलिनी संकेत समझ गई। वह पीछे-पीछे चलने लगी। चटर्जी ने दाँई ओर कोने में टँगे हुए पर्दे को हटाया। नलिनी ने देखा, वहाँ जो मूर्ति थी.

की मूर्ति से कहीं अधिक भव्य थी। इस मूर्ति में किशोर की

मूर्ति से कई गुना अधिक आकर्षण था। लगता था, जैसे बोलने के लिए अपने ओठ खोला चाहती है। नलिनी ने चटर्जी की ओर देखा। चटर्जी ने सिगरेट पीते हुए कहा - 'उस समय यदि मैं यह मूर्ति दिखाता तो संभवत: आप इसकी विशेषता स्वीकार न करतीं।'

नलिनी ने दुबारा उस मूर्त्ति की ओर देखा। उस ने तुरन्त पास में पड़ा हुआ हथौड़ा उठा लिया। फिर वह पागल की भाँति मूर्त्ति पर प्रहार करने लगी। हथौड़े की चोट खा-खा कर मूर्त्ति के टुकड़े-टुकड़े हो गये, तब नलिनी अपनी कमर पर हाथ रख कर खड़ी हो गई। चटर्जी की ओर उपेक्षा प्रकट करने के लिये खिलखिल कर हँसी, फिर बोली - 'आप पुलिस को बुलाइये।'

चटर्जी ने फोन उठाया।

× × × ×

छह मास पश्चात् उस छोटे से घर का फाटक खुला। पत्थरों पर जमी हुई काई उतारी गई। मुरझाये पेड़ हरे हो गये। खिड़की के बीचों बीच लटकनेवाले पिंजरे में तोता अमरूद खाने लगा।

००००००००

पाल्गुम्मी पद्मराजू

तूफ़ान

घर के सामने खड़ा हुआ नारियल का पेड़ स्पष्ट दिखाई दे रहा है। उसके लम्बे-लम्बे पत्ते हिल रहे हैं। घने अंधकार के कारण आकाश धुँधला-धुँधला लगता है। कमरे में गहन अन्धकार है। वहाँ बैठे लोग ठंड अनुभव करते हैं। पता नहीं चला कि सूर्यास्त कब हुआ। रात कब हो गई इसका ज्ञान भी किसी को नहीं है। दोपहर से ही अँधेरा छा गया था। तभी से वर्षा हो रही है। सामने जो घर है उसके कँगूरों से टप-टप करती वर्षा की बूँदों में वृद्धि होती जा रही है। रह रह-कर बादल गरज उठते हैं। बिजली कड़क उठती है तो नारियल के पत्ते चमक जाते हैं। कहते हैं यदि कौआ काँव-काँव पुकारे तो वर्षा थम जाती है, किन्तु ऐसे में न तो वर्षा रुकती है और न कहीं कोई कौआ चिल्लाता है।

मैं अपने कमरे में दुपट्टा ओढ़े खिड़की के पास बैठा हूँ। उठकर दीपक लगाने की इच्छा हुई किन्तु कुछ क्षणों में ही वह इच्छा समाप्त हो गई। मेरी चेतना अन्तर्मुखी होती जा रही है। सामने के कँगूरो से टपकने वाली बूँदों को अपलक देख रहा हूँ। कुछ ही क्षणों में कँगूरे से टपकने वाली बूँदें अदृश्य हो गईं। सामने जो घर है, उसके कँगूरों के नीचे गहरा अन्धकार फैलता जा रहा है।

सामने वाले घर में किसी ने दीपक जलाया। हलके प्रकाश में वर्षा की बूँदें और धुँधला गईं। कोई इधर से उधर चलता हुआ सामने के मकान की खिड़की पर आया, साथ ही कुछ ध्वनियाँ उभरने लगीं। कोई आदमी बेचैनी के उस ओर इधर उधर घूम रहा है। मैं उस घर के मालिक

और उसकी पत्नी की आवाज पहचानता हूँ। उस दिन शहनाई की तरह मधुर तीसरा कंठ सुनाई दिया।

कौआ फिर काँव - काँव चिल्लाने लगा। मैंने सोचा कोई सम्बन्धी आने वाला है। मुझे अपना एकाकीपन अखरने लगा। मैंने अपना दुपट्टा अधिक कस कर ओढ़ लिया। ठंड कोई अधिक नहीं थी, किन्तु साँय - साँय करती सर्द हवा चल रही थी। पानी की बौछार खिड़की से आने लगी।

घर के सामने जो गली है, उसमें डिग - डिग करती बैलगाड़ी जा रही थी। बैलों के पाँव से छप - छप की आवाज़ आ रही थी। सामने का दरवाजा खुला। रोशनी गली में चमक उठी। कँगूरों का पानी छतरी पर टपकने लगा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सामने के दरवाजे पर किसी ने मसहरी बाँध दी है।

'ऐ गाड़ी वाले!'

'बाबूजी!' गाडीवान ने उत्तर दिया।

'जगान्नाथपुरम चलोगे?'

'नहीं बाबूजी!'

'किराया मुँह माँगा मिलेगा।'

'चाहे जितना किराया दो, मैं नहीं चल सकता। इस ठंडी हवा और मूसलाधार वर्षा में....आज तो....' - डिग - डिग....गाड़ी चली गई।

भर्राई आवाज में बोलने वाला व्यक्ति कुछ क्षण द्वार पर खड़ा रहा। फिर भीतर जाकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया।

'अब कैसे जाओगी। गाड़ी ही नहीं मिलती।' भर्राई आवाज ने कहा।

'समझ में नहीं आता। क्या करूँ?' शहनाई जैसी मधुर आवाज ने कहा - 'किन्तु मुझे जाना है।'

'जाओगी कैसे?'

'मेरा जाना आवश्यक है। यदि मैं न जा सकी, तो - तो ...'

बारीक आवाज ने समझाया - 'मैं इस तरफ कोने में तुम्हारा लगवाती हूँ, आज की रात यहीं बिता दो।'

शहनाई जैसी मधुर आवाज ने कहा - 'नहीं, नहीं।'

'मैं रसोई में बिस्तर करूँगी।' बारीक आवाज ने कहा।

भर्राई हुई आवाज ने कहा - 'रसोई की छत तो टपकती है। जहाँ देखो वहाँ पानी। सारा मकान टपक रहा है। मकान की मालिकिन हर महीनें की पहली तारीख को किराया लेने के लिए आ धमकती है, किन्तु मकान की मरम्मत कराने का नाम नहीं लेती। डाइन है डाइन।' भारी आवाज बड़बड़ाई।

'तब क्या करें?'

'क्या होगा?'

पानी है कि थमने का नाम नहीं लेता।

कुछ क्षण पश्चात् मुझे अनुभव हुआ, जैसे मेरें घर के चबूतरे पर कोई चल रहा है। ऐसे समय कौन मेहमान आ रहा है?

किसी पुरुष ने गुर्रा कर कहा - 'अरे सँभलके, सँभलके।'

किसी स्त्री ने उत्तर दिया - 'नहीं नहीं, मैं गिरी नहीं! जमीन बराबर है। चले आओ।'

पुरुष की गुर्राती और स्त्री की चहचहाती बारीक आवाज निकट होती गई।

मुझे प्रतीत हुआ, दोनों चबूतरें के ढालिये के नीचे आ खड़े हुए।

'बच्चा सो गया।'

'हाँ, सो गया।'

'घर में अँधेरा है। संभवत: कोई भीतर नहीं है।'

स्त्री ने कहा - 'हम लोगों को क्या? नहीं होगा कोई।'

'बच्चे को एक ओर सुला दो।'

'हाँ, सुलाती हूँ।'

पुरुष ने दाँत पीसते हुए वर्षा को गाली दी, 'जाने कब रुके। हम भिखारियों के तो प्राण नहीं बचेंगे।'

आज मुसाफिरखाने तक नहीं पहुँच सकते।'

'न सही। आज रात यहीं पड़े रहेंगे।'

पुरुष ने एक लम्बी साँस ली।

उस ओर वर्षा की आवाज को चीरती हुई शहनाई जैसी मधुर ध्वनि सुनाई दी - 'मैं तो यहाँ आकर फँस गई।'

जाने कहाँ से एक कौआ आकर अलगनी पर बैठ गया। वह अपने पंख फड़फड़ाने लगा।

बाहर चबूतरे के ढालिये के नीचे ठहरी हुई स्त्री ने चहचहाते स्वर में पूछा - 'किसकी आवाज है?'

पुरुष ने कहा - 'कौआ है।'

'क्या कौए को भी ठंड लगती है?'

'अरे, कौए को हमारी तरह ठंड लगती तो मर ही जाता।'

अचानक स्त्री ने कहा - 'अरे रे, क्या कर रहे हो?'

पुरुष ने हाँपते हुए कहा - 'फिर ठंड कैसे दूर होगी?'

मुझे झुरझुरी-सी आ गई। मैंने अपना दुपट्टा अच्छी तरह ओढ़ लिया।

न जाने किस ओर से वर्षा की बूँदें टप-टप करना छोड़कर ताल-सुर में सुनाई देने लगी थीं।

कुछ क्षण मौनता रही।

बाहर चबूतरे पर पुरुष ने शान्ति की एक साँस ली।

'भूख तो नहीं लगी तुझे?'

स्त्री ने कहा - 'नहीं।'

'अच्छा?'

'हाँ।'

'उस मोटी, भैंगी औरत ने थोड़ा-सा भोजन दिया था मुझे।'

'ले यह पुराना कपड़ा बच्चे को उढ़ा दे।'

'सुनो।'

'आज बाबू ने मुझे एक बड़ी चादर दी थी।'

'बड़ी चादर दी थी? किस बाबू ने दी थी?'

'वही जो ऊँचे बँगले में सोता है। ऐनकवाला —।'

'ऐनकवाले बाबू ने दी थी?'

'हाँ।'

'पुरुष ने एक लम्बी साँस ली 'हूँ।'

'क्या बात है?' स्त्री ने पूछा।

'तूने बाबू से चादर क्यों ली? विद्यार्थियों से कुछ नहीं लेना चाहिए।'

स्त्री चुप रही।

'तू उस बाबू को कितने दिनों से जानती है?'

'चलो, तुम बहुत शक्की हो।'

'क्या?'

'और क्या? जब भी कोई मेरी ओर देखता है, तुम्हें क्रोध अ जाता है।'

'तू नहीं जानती पागल।'

'क्या नहीं जानती?'

'मुझे क्रोध क्यों आता है?'

'मैं सब जानती हूँ।'

'सब लोग तेरी मस्त जवानी को ताकते हैं। लोगों से सावधा रहना चाहिए।' पुरुष कुछ समय तक खाँसता रहा और जब खाँसी रु गई तो बोला —

'लोग तुझे ज्यादा भीख क्यों देते हैं, मालम है तझे?'

स्त्री ने पूछा - 'क

'हाँ।'

'बहुत ठण्ड है।

हूँ [illegible]।'

उधर सामने के घर में भर्राई आवाज ने कहा - 'तुम दोनों कमरे में सो जाओ, मैं बाहर सोऊँगा।'

बारीक आवाज ने पूछा - 'बाहर कहाँ?'

'दरवाजे के पास।'

शहनाई जैसी मधुर आवाज ने ठण्डी साँस ली 'ओह, मैं यहाँ आकर आफ़त में फँस गई।'

वर्षा ने फिर जोर पकड़ लिया।

इधर चबूतरे के ढालिये में दोनों हँस रहे थे। हँसते - हँसते सहसा चुप हो गये।

स्त्री ने कहा - 'इस ओर पानी की बौछार आ रही है!'

पुरुष ने कहा - 'तो चल, उस तरफ सरक जाएँ। उधर कोने में, वहाँ तक बौछार नहीं आएगी।'

'हाँ चलो।'

'अब ठीक है?'

'हाँ! पेट भरा हो तो ठंड भी नहीं लगती।'

और मैंने अचानक अपना गला रुँधा हुआ पाया। मुझे भी जोर से भूख लग रही थी। मैंनें जल्दी-जल्दी स्लीपर पहने, छतरी लेकर धोती ऊपर उठाई। बाहर चबूतरे पर आया तो पुरुष ने धीमे से कहा - 'बाबूजी घर पर ही हैं।'

मैंने दरवाजे को ताला लगाया, छतरी खोली और सडक पर पहुँच गया।

सारा रास्ता कीचड़ से कचपच कर रहा था। मैं सँभल - सँभल कर चल रहा था।

एक घर के आधे खुले दरवाजे से सिलाई की मशीन की आवाज आ रही थी, ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे सिलाई की मशीन और वर्षा की मशीन दोनों एक ताल पर चल रही थीं। दो आदमी अँगोछे से सिर ढके मेरे पास से निकल गये। मैं गिरता - गिरता बचा।

होटल के दरवाजे पर पहुँच कर मैंने छतरी बन्द कर ली। मेरे

होटल का फर्श भीग गया। बिजली के गोलों पर पतंगे चक्कर लगा रहे थे। मैं एक टेबल के पास जा बैठा। पास बैठे हुए आदमी ने साथी से पूछा - 'क्या आपकी पत्नी अब तक नहीं आई?'

'यदि पत्नी आ जाती तो ऐसे समय होटल में भोजन करने क्यों आना पड़ता?'

'अब तो मौसम बदल गया। बुलवा लो न!'

दोनों हँसने लगे।

सामने की पंक्ति में दो विद्यार्थी बैठे थे। एक तो प्रश्न हल कर रहा था और दूसरा हूँ - हाँ करता भोजन कर रहा था। भोजन समाप्त करके दूसरा विद्यार्थी बोला 'अपने यहाँ तो पानी ही पानी है। न जाने रात कैसे बीतेगी?'

'कैसे गुजरेगी! सिनेमा का दूसरा खेल देखने चले जाएँगे।'

'दूसरा खेल? अच्छा, कौन - सा खेल चल रहा है'

'कोई अच्छा-सा खेल है।'

'नाम याद नहीं है?'

'नहीं, कोई टार्जन का खेल है।'

मैंने जल्दी - जल्दी भोजन किया। दोनों विद्यार्थी भी मेरे साथ ही उठे। मैं नल के पास हाथ धो रहा था। दोनों विद्यार्थियों में से एक ने कहा - 'होटल का भोजन करते - करते मैं तो तंग आ गया भाई। इस बार दशहरे पर घर जाना ही पड़ेगा।'

'जरूर जाना पड़ेगा भाई। मैं स्वयं भी यही सोच रहा हूँ।'

होटल के भोजन से मेरा पेट भरा नहीं था, फिर भी मैंने संतोष की साँस ली। दही अच्छा था। पेट में पहुँच कर ठंडे दही ने न जाने क्यों सर्दी कुछ कम कर दी थी?

मुझे चबूतरे के ढालिये में लेटी स्त्री की बात याद आई - 'पेट भरा हो तो ठंड कुछ कम लगती है।'

मैं भोजन करके उसी सड़क से लौटा, जिस सड़क से सदा

तहसील की घड़ी ने आठ बजने की सूचना दी। घण्टा बजने की आवाज़ ऐसी लगी, जैसे किसी दूसरी दुनिया से आ रही हो।

मैंने कीचड़ से बचने के लिए एक तरफ हटना उचित समझा। उस ओर कुछ बकरियाँ बार-बार उठ-बैठ रही थीं। उनसे बचने की कोशिश की तो सामने एक आँख खोले मोटर आती दिखाई दी। मोटर के गन्दे पहियों से कीचड़ उछल रहा था, जो इधर-उधर चलने वाले लोगों को सराबोर कर देता था। मैं लपक कर एक घर की सीढ़ियों पर चढ़ गया, फिर भी मोटर की कृपा से वंचित न रह सका। छत से गिरने वाला पानी छतरी पर इतनी जोर से पडा कि मैं छतरी सहित फिसल गया। यह तो गनीमत थी कि मैंने गिरते-गिरते आगे की ओर निकली हुई छत की नाट पकड़ ली। मोटर के जाते ही सड़क पर फिर अँधेरा छा गया। मैंने वहीं खड़े-खड़े जेब से सिगार निकाल कर जलाया। दो-तीन घूँट ली थी कि शरीर में गरमाई आ गई। सिगार और वर्षा में घनिष्ट संबन्ध दिखाई देता है। जैसे ही मैं घूँट लेता, सिगार का मुँह सहृदय मित्र की भाँति लाल हो उठता था। इस प्रकार की मूसलाधार वर्षा में भी रात के आठ बजे बच्चे खेल रहे थे। सहसा मेरा भी विचार हुआ कि मैं बुजुर्गी का चोगा उतार कर उन बच्चों में जा मिलूँ। किन्तु ऐसा नहीं कर सका।

अपने चबूतरे पर चढ़ कर मैंने जल्दी-जल्दी में ताला खोला। बिना बुलाये सन्ध्या को आने वाले अतिथियों पर दृष्टि डाली, बच्चा अँगूठा मुँह में डाले सिसक रहा था। पुरुष खर्राटे भर रहा था। स्त्री को भी नींद आ चुकी थी। सारांश यह कि तीनों एक दूसरे के निकट दुनिया से बेखबर पड़े थे। मैंने छतरी बन्द कर के दियासलाई जलाई। बन्द छतरी से पानी की धारा बह चली, जो दियासलाई के प्रकाश में शीशे की तरह चमकने लगी। क्षण भर बाहर रह कर मैं अन्दर चला गया। मैं भीतर आते-आते उस जवान औरत का मुँह देखना चाहता था, किन्तु देख नहीं सका। अन्दर आकर मैंने बिस्तर के पास रखा लैंप सिलगाया तो टेढ़ी-मेढ़ी परछाइयाँ दीवार पर हिलने-डुलने लगीं।

गीले कपड़े उतार कर मैंने सूखे कपड़े पहन लिये। अचानक दरवाजा खुल गया। मैंने सोचा, हवा के कारण खुला होगा। किन्तु ऐसा नहीं था। सामने मकान में रहनेवाला पडौसी था।

'गुडनाइट सर।'

'गुडनाइट।'

'वह भीतर आ गया। बोला, 'कितनी भयानक वर्षा है। यह वर्षा तो हम लोगों को मार कर ही दम लेगी।'

'हूँ।'

भर्राई आवाज से बोलने वाले इस मनुष्य से बातचीत करने का पहला या दूसरा अवसर था। यद्यपि हमारा घर आमने-सामनें है, किन्तु पड़ौस का यह नाता केवल स्त्रियों तक सीमित था। वह अपने आने का उद्देश्य बताना चाहता था, किन्तु हिचक थी।

अन्त में भूमिका बाँधते हुए बोला - 'भाई क्या बताऊँ, एक संकट में फँस गया हूँ।'

'संकट!'

'हाँ।'

'कैसा संकट?'

'मेरी पत्नी की एक सहेली है, दोनों में बचपन से मित्रता है। जगन्नाथपुरम में रहती है। मिलने आई थी।'

'हूँ, तब?'

'जब से आई है, वर्षा कम होने के बजाय बढ़ती जा रही है। सन्ध्या से वह जाने के लिए तैयार है, किन्तु कोई सवारी नहीं मिल रही है। इसीलिए नहीं जा सकी।'

इतना कह कर उसने जेब से डब्बी निकाल करनास की चुटकी भरी। जरा-सी नास नाक में घुसेड़ी, हाथ झटक कर अपने कपड़े झटके। फिर बोला: 'एक-दो गाड़ीवालों को मैंने ठहराना चाहा, किन्तु कोई चलने के तैयार नहीं हुआ।'

'हाँ, अधिक वर्षा के कारण कोई जाना नहीं चाहता होगा।'

'हमारा कमरा टपक रहा है। रसोईघर पानी से भर गया है। समझ में नहीं आता कि यह रात कैसे कटेगी।' हमारा पड़ौसी टहलते-टहलते बात कर रहा था। उस आदमी से कई गुना मोटी छाया दीवार पर इधर-उधर घूम रही थी। मैंने अपने बिस्तर की चादर साफ की। शाल तहा कर पगाँयते रख लिया। फिर मैं पलँग पर बैठ गया।

'बैठिये न?' मैंने अनुरोध किया।

किन्तु वह खड़ा रहा, जेब से डिबिया निकाल कर उसने एक बार फिर नास ली। हाथ झटक कर कपड़े साफ किये और फिर मेरे पास आकर बैठ गया।

'मेरी पत्नी अपनी सहेली के साथ एक कमरे में सो जाएगी। यदि रात भर मैं यहाँ ....।'

'हाँ, हाँ, जरूर सोइये। जाइये, अपना बिस्तर ले आइये।'

'ले आऊँगा भाई, ले आऊँगा।'

'तब जाइये। ले आइये।' मैंने बेचैनी से कहा। वर्षा के साथ-साथ मेरी बेचैनी भी बढ़ती जा रही थी। एक दृष्टि मुझ पर डाल कर वह बिस्तर लाने चला गया। मैं पलँग पर लेट गया। पाँव से शाल खींच कर मैंने पूरा शरीर ढँक लिया। दोनों कान भी बाँध लिये। बरसते पानी की आवज मैं सुनना नहीं चाहता था, फिर भीं सुन रहा था।

पड़ौसी ने पलँग के पास अपना बिस्तर लगा लिया।

'क्या दरवाजा बन्द कर दूँ?'

मैंने धीमे से कहा - 'हाँ, बन्द कर दो।'

वह दरवाजा बन्द करके बिस्तर पर लेट गया। कुछ समय तक 'हरे राम, हरें राम' की रट लगा कर बोला - 'और सुनाओ, युद्ध का क्या हालचाल है? क्या जापान भारत पर अधिकार कर लेगा? समझ में नहीं आता यह लड़ाई कब समाप्त होगी। जो लोग युद्ध के कारण रुपया कमा रहे हैं, उनकी बात छोड़ो, हमारी तो जान पर बन आई है। हे राम

मेरी इच्छा हो रही थी कि इस आदमी को बिस्तर में लपेट

फेंक दूँ। किन्तु ऐसा नहीं कर सका। मैं आँखें बन्द कर के इस तरह लेट गया, जैसे गहरी नींद में सो रहा होऊँ। पड़ौसी लगातार बोलता जा रहा था। और नहीं तो अपने जीवन की बीती बातें दुहराने लगा।

'शम्भू, शम्भूजी।' उसने मेरा नाम लेकर आवाज लगाई।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

बातें करते-करते वह मुझसे पहले सो गया।

अब केवल पानी बरसने की आवाज सुनाई दे रही थी। बीच-बीच में शहनाई जैसी मधुर आवाज की उद्विग्नता और बाहर चबूतरे के ढालिये में लेटी हुई स्त्री की हँसी सुनाई दे जाती थी।

एक बार फिर मेरे मन में लालसा जागी कि मैं चबूतरे के ढालिये में लेटी हुई युवती का मुँह देख आऊँ। मेरी कल्पना ने मेरे सामने एक विचित्र प्रकार की, किन्तु सुन्दर आकृति उपस्थित कर दी।

पड़ौस में शहनाई जैसी मधुर आवाज वाली युवती ने अँगड़ाई ली। उसके मुँह से निकल गया-' काश, इस समय मैं अपने घर पर होती!'

कल्पना ने मेरी आँखों के आगे एक दूसरा चित्र अंकित कर दिया।

रेलगाड़ी गडगड़ाहट के साथ चली जा रही है। एक डब्बे में मैं और मेरी पत्नी घर लौट रहे हैं, सहसा डब्बे में एक भिखारिन आ गई। उस भिखारिन को देख कर मेरी पत्नी कुछ परेशान दिखाई दी। मुझे आभास हुआ जैसे उस भिखारिन और मेरी पत्नी में कोई संबन्ध है, कोई पुराना संबन्ध। शहनाई जैसी मधुर स्वरवाली लड़की मेरी पत्नी है और वह भिखारिन? वही भिखारिन है जो मेरे चबूतरे के ढालिये पर सो रही है।— अचानक मेरे गाल पर किसी ने एक थप्पड़ लगाया। मैं चौंक कर बैठ गया। रात बीत चुकी थी। दिन का प्रकाश फैला हुआ था।

मैंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। मेरे पड़ौसी का कमरे में कहीं पता नहीं था। मैंने दरवाजा खोल, बाहर निकल कर चबूतरे पर दृष्टि डाली, वहाँ भी कोई नहीं था।

और वर्षा थी कि पूर्ववत् मूसलाधार बरस रही थी।

पोतकूचि साम्बशिवराव

भले की बुराई

गाँव में जब पापाराव नया - नया आया था तो वहाँ के निवासियों ने समझा इतना अच्छा आदमी ढूँढ़े भी नहीं मिल सकता। अड़ौस-पड़ौस में किसी पर आफत आती तो सबसे पहले पापाराव उपस्थित रहता। वह पड़ौसियों के कष्ट में हाथ ही नहीं बँटाता, उनकी भरसक सहायता भी करता था। कोई अतिथि अथवा भिक्षुक उसके घर से खाली हाथ नहीं लौटता था। सभी लोग उसके स्नेह और सहानुभूति की प्रशंसा करते थे।

विश्वनाथम को आशा थी कि पापाराव के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उसकी सहायता नहीं कर सकता, इसीलिए वह उसके पास गया था। पापाराव ने उसका प्रेमपूर्वक स्वागत किया। कुर्सी पर आदर सहित बैठाकर पीने को काफी दी।

अपने हृदय में उमड़ते हुए दुःख पर निमंत्रण रख कर विश्वनाथम ने कहा - 'मैं आपके पास सहायता लेने आया हूँ।'

'बेटा कहो, मुझ से जो बन पड़ेगा, सहायता करूँगा।' पापाराव ने कहा।

'मेरे पिताजी ने घर से निकाल दिया है' - गद् - गद् कण्ठ से विश्वनाथम ने कहा।

'क्या कह रहे हो बेटा? क्यों निकाल दिया तुम्हारे पिता ने?'

'आप तो सारी बातें जानते हैं। मेरी सौतेली माँ बहुत सताती है। छोटी-छोटी शिकायतें करके पिताजी से पिटवाती है। भोजन अच्छा नहीं देती। कोई न कोई काम बता कर मेरी पढ़ाई में बाधा उपस्थित करती है। इसीलिए मैं इस वर्ष बी. ए. में अनुत्तीर्ण हो गया।

मुझ पर आरोप लगाया कि पढ़ने में मेरा मन नहीं लगता और यों ही रुपये बर्बाद हो रहे हैं। पिताजी मुझ पर बिगड़ पड़े, उन्होंने मुझे बुरी तरह पीटा। पिटते-पिटते बेदम हो गया। मैंने पिताजी से सौतेली माँ की शिकायत की कि वह मुझे अनेक प्रकार की यातनाएँ देती है। इस पर सौतेली माँ और भी नाराज हो गई। उसने पिताजी से शिकायत की कि मैं उसे बुरी नजर से देखता हूँ। उसका सतीत्व नष्ट करना चाहता हूँ। फिर तो पिताजी का पारा और भी चढ़ गया। उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया।' विश्वनाथम ने फफक-फफक कर अपनी कथा सुनाई।

पापाराव ने सहानुभूति प्रकट की - 'घबराओ मत, हम लोग हैं न तुम्हारे ऊपर।'

'आप मुझे दो सौ रुपये दे दीजिये। मैं पढ़ाई समाप्त करके कहीं नौकरी कर लूँगा। पाई-पाई चुका दूँगा।' विश्वनाथम ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

विश्वनाथम की स्थिति पर पापाराव को दया आ गई। उनका मन पिघल गया। विश्वनाथम और उसके पिता को पापाराव बहुत दिनों से जानता है। उन्हें पता है कि विश्वनाथम बुद्धिमान लड़का है। उन्होंने कई लोगों से सुना है कि कृष्णराव की तीसरी पत्नी अपने सौतेले पुत्र विश्वनाथम को बहुन सताती है, किन्तु उन्होंने कभी स्वयं कुछ नहीं देखा था। आज विश्वनाथम के मुँह से पूरी बातें सुन कर उन्हें प्रतीत हुआ कि लोगों की बातों में पूरी - पूरी सचाई है.

'कृष्णराव जैसा भला आदमी अपने बेटे को घर से निकाले, यह कोई अच्छी बात नहीं है।' पापाराव ने अपना मत व्यक्त किया।

'औरत की बात सुनने वाला प्रत्येक पुरुष यही करता है। जब तक भले - बुरे का ज्ञान नहीं होता, आदमी अच्छा - बुरा कैसे समझ सकता है? इसीलिए पिताजी को दोष देना निरर्थक है। आप मेरी सहायता कीजिये, जीवन भर ऋणी रहूँगा। आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा।'

म ने प्रार्थना की।

पापराव बोले - 'पिताजी से बात करके तुम्हारी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करूँ?'

'जो पिता अपने विवेक से भ्रष्ट होकर औरत की गुलामी कर रहा है, उसके सम्बन्ध में मैं बात करना नहीं चाहता। उनसे कोई आशा नहीं है। मैं अपना बोझ स्वयं उठाऊँगा।' विश्वनाथम ने अपना क्रोध प्रकट किया।

पापाराव को भी यह उचित लगा कि घरेलू मामलों में हस्तक्षेप किये बिना उन्हें विश्वनाथम की सहायता करनी चाहिए।

पापाराव से रुपये पाकर विश्वनाथम बहुत प्रसन्न हुआ। उसने बार-बार यही बात दुहराई कि वह यथासंभव शीघ्र ही पूरी रकम लौटा देगा। उसने यह बात भी कही कि वह इस नगर में एक दूर के रिश्तेदार के यहाँ रह कर पढ़ेगा।

पापाराव ने विश्वनाथम की सहायता की है, यह बात फैलते-फैलते कृष्णराव की पत्नी के कानों में भी पहुँच गई। काले नाग की तरह फुफकार कर उसने पति से कहा - 'सुनते हो जी? तुमने तो अपने लड़के को गलती के लिए डाँटा था। तुम्हारा विचार था कि घर से बाहर निकाल देने पर आज नहीं तो कल उसकी बुद्धि ठिकाने आ जाएगी और वह घर लौट आएगा, किन्तु सुना है पापाराव रुपये पैसे से उसकी सहायता कर रहा है। यदि इस तरह उसे लोगों की सहायता मिलती रहे, लोग उसे सहारा देने लगें और उसकी पीठ ठोकें तो काम कैसे चलेगा! इस स्थिति में तो वह तुम्हारी बात मानने से रहा। वह सिर पर चढ़ेगा ही। ये कैसे बड़े-बूढ़े हैं जो परिवार के पारिवारिक झगड़ों में दखल देते हैं और बाप-बेटों में फूट डालते हैं?'

कृष्णराव तो पत्नी की बात को वेद-वाक्य मानते हैं। इसीलिए इन सब बातों को सुनकर उन्हें पापाराव के व्यवहार में द्वेष की गन्ध आई। जो लड़का अपनी माँ का सतीत्व लूटना चाहे उसे पापाराव ने आश्रय दिया है, इस बात से कृष्णराव के मन में पापाराव के आचरण पर भी
हुआ। उस दिन से उसने पापाराव के साथ बोलचाल बन्द

पापाराव ने बात करनी चाही तब भी वह चुप्पी साध गया। पापाराव को इस बर्ताव पर आश्चर्य हुआ, किन्तु उनके लिए यह बात सन्तोषजनक थी कि पुत्र के साथ क्रूरता का व्यवहार करने वाले पिता से उनका सम्पर्क टूट गया। धीरे - धीरें पापाराव और कृष्णराव में विरोध बढ़ता गया। उनमें बोल चाल, रोटी - व्यवहार सभी बातें समाप्त हो गईं।

विश्वनाथम परीक्षा में उत्तीर्ण होगया। पापाराव ने उसे एक जगह नौकर रखा दिया। वेतन से बचा - बचा कर विश्वनाथम ने पापाराव का रुपया चुका दिया। पापाराव के लिए यही सन्तोष की बात थी कि उन्होंने समय पर एक युवक की सहायता की। उसका भविष्य सुधर गया। कुछ समय पश्चात् एक अच्छी लड़की देख कर पापाराव ने विश्वनाथम का विवाह करा दिया। इस सहायता के लिए भी उसने अपनी कृतज्ञता व्यक्त की।

समय बीतता गया। दिन पर दिन और मास के बाद मास बीत गये। बाप - बेटे की दूरी बढ़ती गई। बेटा घर नहीं लौटेगा इसी प्रतीति के कारण कृष्णराव और उसकी पत्नी में पापाराव के विरुद्ध द्वेष भाव उग्र होता गया। जो मिलता, उसी से कहती - 'पापाराव जैसा दुष्ट, मित्र-द्रोही, स्वार्थी और बदमाश व्यक्ति इस संसार में नहीं मिल सकता। इसने विश्व-नाथम की आर्थिक सहायता इसलिए की थी कि विश्वनाथम पापाराव के रिश्तेदार की लड़की से विवाह कर लेगा। बाप - बेटे में दुश्मनी करा दी।' आदि - आदि। पापाराव कें कान तक सारी बातें पहुँच गयीं, किन्तु उन्होंने उत्तर में कुछ नहीं कहा। उनका विचार था, आज नहीं तो कल सचाई प्रकट होकर रहेगी।

पापाराव ने प्रतिवाद नहीं किया, इसलिए लोग कृष्णराव की बात सच समझने लगे। लोग भी समझ गये सचमुच पापाराव जैसा व्यक्ति संसार में दूसरा नहीं है।

कुछ वर्ष और बीत गये। कृष्णराव ने सोचा चलो पत्नी के साथ तीर्थ - यात्रा कर आयें। काशी गये। वहाँ विश्वनाथजी के दर्शन करके
ली के साथ बाजार में घूम रहे थे। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर

उनको पत्नी की आहट नहीं मिली। घूम कर देखा तो पत्नी कहीं दिखाई नही दी। बहुत घबराया। उसने सोचा - कहीं भीड़ में बिछड़ गई है। वह इधर - उधर ढूँढ़ने लगा। संध्या तक ढूँढ़ता रहा। अन्त में थक कर पुलिस में रपट लिखाई। पुलिस भी कहीं पता नहीं चला सकी। गली - गली छान डाली। काशी में उसने दस दिन तक पत्नी की खोज की। ग्यारहवें दिन पत्नी की चिट्ठी मिली। चिट्ठी देखते ही हृदय मारे खुशी के उछलने लगा। चलो पत्नी का पता तो मिला। किन्तु जैसे ही चिट्ठी पढ़ी उसका चेहरा उतर गया। पत्र में लिखा था - 'बूढ़े पति के साथ निर्वाह नहीं हो सका, इसीलिए मैंने एक युवा पति ढूँढ़ निकाला है। मुझे खोजने का प्रयत्न मत करो।'

कृष्णराव ने क्या स्वप्न में भी सोचा था कि उसकी पत्नी ऐसा अनर्थ करेगी। और अनर्थ करके वह इस प्रकार की चिट्ठी लिखने की धृष्टता कर सकती है इसकी तो उसे कल्पना भी नहीं थी। उसे इस बात का बहुत दु:ख था कि एक सुन्दर स्त्री उसके हाथ से निकल गई। इसके बाद इस बात का पछतावा हुआ कि पत्नी पर विश्वास करके उसने अपने योग्य पुत्र को घर से निकाल दिया।

अपनी करनी पर पछताता हुआ कृष्णराव काशी से सीधे विश्वनाथम के घर पहुँचा। विश्वनाथम ने प्रतिज्ञा की थी कि वह इस जन्म में अपने पिता का चेहरा नहीं देखेगा। पिता को अपने दरवाजे पर देख कर उसे यह प्रतिज्ञा याद आई। उसने पिता को चले जाने के लिए कहा। अपने पुत्र से अपमानित होकर कृष्णराव घर लौटा।

अपने पुत्र को लेकर कृष्णराव ने पापाराव से बैर बाँधा था, इस बैर पर भी उसे पछतावा हुआ। क्षमा माँगने के लिए वह पापाराव के घर गया।

अपने घर पर कृष्णराव को देख कर पापाराव चकित रह गया, किन्तु उन्होंने आश्चर्य व्यक्त न होने दिया। पुराने ढंग से कृष्णराव का स्वागत किया। कृष्णराव ने पूरी कहानी सुनाई। अपने किये पर पछताता रहा

कृष्णराव पर बुढ़ापे में विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था।

पापाराव को दया आ गई। बोला - मैं बाप - बेटे को निकट लाने का प्रयत्न करूँगा।

पापाराव ने विश्वनाथम के घर पहुँच कर परामर्श दिया - 'बेटा, तुम्हारे पिता अपने किये पर पछता रहे हैं। तुम्हारी सौतेली माँ काशी में किसी के साथ भाग गई। बुढ़ापे में तुम बाप की सेवा करो। पुरानी बात भूल जाओ।'

विश्वनाथम को यह सलाह उचित प्रतीत नहीं हुई। उसने कहा - 'पिता ने मुझे अनेक कष्ट दिये हैं। उन्हें बुढ़ापे में करनी का फल भोगना ही चाहिए।' उसने पापाराव के व्यवहार की भी आलोचना की। बोला - 'आप हमारे घरेलू मामलों में दखल न दें।'

विश्वनाथम के बर्ताव पर पापाराव को बहुत दुःख हुआ। पापाराव को यह उचित नहीं लगा कि घर में सगे बाप को भोजन कराने वाला कोई नहीं है, और बेटा उससे प्रतिशोध लेना चाहता है। घर लौटते समय पापाराव बहुत निराश थे।

पापाराव ने कृष्णराव को पूरी कहानी सुना दी। बोले- 'मैंने आप दोनों का मेल कराने का भरसक प्रयत्न किया है, किन्तु सफलता नहीं मिली। आपकी स्थिति पर मुझे बहुत दया आती है। इस बुढ़ापे में आपकी देख-रेख मैं करूँगा। आज से आप मेरे घर में रहिये।'

पापाराव के स्नेह-सिंचित शब्दों से कृष्णराव अभिभूत हो गया। उसने सोचा - पापाराव कितने अच्छे आदमी हैं। उस दिन से वह पापाराव के घर में परिवार के एक सदस्य के नाते रहने लगा।

विश्वनाथम ने जब समाचार सुना कि उसका पिता पापाराव के घर रहने लगा है तो उसे बहुत क्रोध आया। इच्छा हुई कि चल कर पापाराव का गला घोट दे, किन्तु किसी तरह क्रोध पर काबू पा कर घर में बैठा रहा। मिलने-जुलने वालों से पापाराव की बुराई करता कि वह बाप-बेटे में फूट डाल रहा है। दोनों में बैर बँधा दिया है उसने। बुढ़ापे में सेवा करके राव कृष्णराव की जमीन हड़पना चाहता है। आदि-आदि।

विश्वनाथम का प्रचार चलता रहा। लोगों में पापाराव के विरुद्ध विचार उत्पन्न हुए। पापाराव ने अपने स्वभाव के अनुसार इस प्रचार का खंडन नहीं किया। उन्होंने स्पष्टीकरण भी नहीं दिया। इससे लोग सोचने लगे - पापाराव जैसा दुष्ट आदमी संसार भर में नहीं होगा, किन्तु पापाराव सोचता था - 'सत्य कभी नहीं जीतेगा।'